अंक-20

ISSN 0975-5217

UGC-Care list (Group-I)

वर्ष 2021

भैरवी

संगीत शोध पत्रिका

मिथिलांचल संगीत परिषद्

स्नातकोत्तर संगीत एवं नाट्य विभाग

ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय

कामेश्वरनगर, दरभंगा (बिहार)

Scanned with OKEN Scanner

ISSN 0975-5217
UGC-Care list (Group-I)

भैरवी

(दृश्य एवं प्रदर्शनकारी कला की शोध-पत्रिका)

(वर्ष 2021 अंक 20)

मिथिलांचल संगीत परिषद्
स्नातकोत्तर संगीत एवं नाट्य विभाग
ललित कला संकाय
ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय,
कामेश्वरनगर, दरभंगा 846 004

भैरवी (दृश्य एवं प्रदर्शनकारी कल की शोध-पत्रिका)

ISSN 0975-5217

UGC-Care list (Group-I)

वर्ष-2021, अंक : 20

प्रधान सम्पादक

प्रो. (डॉ.) पुष्पम नारायण

प्रकाशक : मिथिलांचल संगीत परिषद्

स्नातकोत्तर संगीत एवं नाट्य विभाग
ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय,
कामेश्वरनगर, दरभंगा 846 004
मो. - 09430063265
ईमेल - npushpamji@gmail.com

मूल्य

इस अंक का मूल्य : 400/- रुपये

व्यक्तियों के लिए :

वार्षिक : 800/- रुपये / त्रैवार्षिक 2400/- रुपये

पंचवार्षिक 4000/- रुपये / आजीवन : 15000/- रुपये

संस्थाओं के लिए :

वार्षिक : 850/- रुपये / त्रैवार्षिक 2500/- रुपये

पंचवार्षिक 4500/- रुपये / आजीवन : 16000/- रुपये

(केवल मनी आर्डर / चेक / बैक ड्राफ्ट से)
(दरभंगा से बाहर के चेक में 40 रुपये अधिक जोड़ें)

''भैरवी'' विश्वविद्यालय अनुदान आयोग नई दिल्ली द्वारा अनुमोदित एवं UGC-Care list (Group-1) में शामिल है। साथ ही यह Peer Reviewed Refereed Visual and Performing Arts Research Journal है।

सर्वाधिकार सुरक्षित
प्रकाशित सामग्री के उपयोग हेतु लेखक, प्रकाशक की अनुमति आवश्यक है।
प्रकाशित रचनाओं के विचार से सम्पादक व प्रकाशक का सहमत होना आवश्यक नहीं।
समस्त विवाद दरभंगा न्यायालय के अन्तर्गत विचारणीय।

मुद्रक : विकास कंप्यूटर एंड प्रिंटर्स, ट्रोनिका सिटी, लोनी, गाजियाबाद-201 102

Patron

Prof. Chaman Lal Verma
Ex. Dean and Head
University Department of Music
Himachal Pradesh University, Shimla

Prof. Pt. Ritwik Sanyal
Top Grade Dhrupad Artist
Ex. Dean, Faculty of Performing Arts
Banaras Hindu University, Varanasi

Prof. Pt. Sahitya Kumar Nahar
Vice-chancellor
Raja Maan Singh Tomar Sangeet Vishwavidyalaya
Gwalior, Madhya Pradesh

Editorial Board

Chief Editor

Prof. Pushpam Narain
Ex. Dean, Faculty of Fine Arts
Head, University Department of Music and Dramatics
Lalit Narayan Mithila University, Darbhanga, Bihar

Editorial/ Advisory Board

1. Prof. K. Shashi Kumar
   Dean, Faculty of Performing Arts
   Banaras Hindu University, Varanasi
2. Prof. Snehashish Janpriya Das
   Head. Department of Music
   Women's College Jag Chowk, Amarawati, Maharashtra
3. Dr. Ashwani Kumar Singh
   Associate Prof, Department of Music
   Faculty of Performing Arts. M.S. University, Baroda, Gujrat
4. Dr. Shobhit Kumar Nahar
   Asst. Prof. Instrumental Music
   Women's College
   Banaras Hindu University, Varanasi

Peer Review Committee

1. Prof. Om Prakash Bharti
   Head, Department of Performing Arts
   Mahatma Gandhi Antarrashtriya Hindi Vishwavidyalaya,
   Wardha, Maharashtra
2. Dr. Rajesh Kelkar
   Dean, Faculty of Performing Arts
   Maharaja Siyaji Rao University, Baroda, Gujrat
3. Prof. Umesh Kumar
   Head, Department of Hindi
   B.M.A Callege Baheri, Bihar
4. Dr. Amar Kant Kuwar
   Head, Department of Hindi
   M.L.S.M College, Darbhanga, Darbhanga, Bihar
5. Dr. Santosh Dattatrayrao Parchure
   Head, Department of Music
   S.P.H. Women's College, Malegaon, Nashik, Maharashtra
6. Dr. Shashank S. Maktedar
   Associate Prof. and Officiating Principal
   Goa College of Music, Panji, Goa
7. Dr. Ved Prakash
   University Department of Music and Dramatics
   Lalit Narayan Mithila University, Darbhanga, Bihar
8. Dr. Ramshankar
   Faculty of Music and Performing Arts
   B.H.U., Varanasi
9. Dr. Pallavi Shailesh Meshram
   Associate Prof. In Applied Arts
   Bharti Vidyapeeth' Collge of Fine Arts, Pune, Maharashtra

जपात्कोटि गुणं ध्यानं ध्यानात् कोटि गुणं लय।
लयात्कोटि गुणं गानं गानात् परतरं नाहि।।

(जप से करोड़ों गुणा प्रभावी ध्यान है, ध्यान से करोड़ गुणा लयात्मकता प्रभावशाली है। लय प्रधान जप से करोड़ गुणा प्रभाव गान का है और साधना के लिए गान अर्थात् संगीत से उत्तम उपाय अन्य कोई नहीं।)

'Music is the bridge of peace and love'

‘संगीत दो देशों के बीच शान्ति और प्रेम का सेतु है।’

ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

संपादक की कलम से ...

शिक्षा जन्मजात शक्तियों का विकास करने का नाम है। इस शब्द का प्रयोग 'सीखना' एवं प्रगति की इच्छा से की गई क्रियाओं के अर्थ में किया जाता है। प्राचीनकाल में जब मनुष्य समाज में शिक्षा नाम की कोई वस्तु नहीं थी तब मनुष्य पशु के समान ही था। उस समय भी मनुष्य में अनेक नैसर्गिक गुण व शक्तियाँ विद्यमान थीं जिन्हें वह विकसित नहीं कर पाता था। यह शिक्षा ही है जिसने मानव को सभ्य बनाकर पृथ्वी के अन्य प्राणियों से श्रेष्ठ बना दिया। भारतीय परम्परा में शास्त्रों अर्थात वेद, आरण्यक, ब्राह्मण, महाकाव्य, पुराण आदि को शिक्षा की विषय-वस्तु माना गया है। शिक्षा के आवश्यक तत्त्वों की चर्चा महाकाव्य 'महाभारत' में इस प्रकार किया गया है–

अद्रोहः सर्वभूतानोकर्मणा मनसा गिरा।
अनुग्रहश्च दानं च शीलमेतत् प्रशस्यते॥

अर्थात् व्यक्ति के आंतरिक गुणों में शील तथा विनय अर्थात् मन, कर्म, वचन से द्वेष न रखना, सब प्राणियों के प्रति प्रेम व अनुग्रह रखना तथा त्यागी व दानी होना आदि शिक्षा के वांछनीय तत्व हैं।

स्वामी विवेकानन्द के अनुसार–''मनुष्य की आत्मनिहित पूर्णता की अभिव्यक्ति ही शिक्षा कहलाती है।'' महात्मागाँधी ने शिक्षा को संस्कारों को परिष्कृत करने का माध्यम बनाया है। रवीन्द्रनाथ टैगोर के अनुसार शिक्षा का अर्थ मस्तिष्क को इस योग्य बनाना है कि वह सत्य की खोजन कर सके तथा अपना बताते हुए उसे व्यक्त कर सके।

वेस्टालोजी ने शिक्षा को परिभाषित करते हुए कहा है कि शिक्षा मनुष्य की जन्मजात शक्तियों का प्राकृतिक सामंजस्यपूर्ण तथा प्रगतिशील विकास करती है। वास्तव में भारतीय परम्परा के अनुसार शिक्षा न तो रोजी कमाने का साधन मात्र है, न ही विचारों का पालन-पोषण है और न ही नागरिकता की पाठशाला। यह मानवीय आत्मा के जीवन का आरंभ है, मानवीय आत्मा का सत्य की खोज के लिए प्रशिक्षण है और नेकी का अभ्यास है, यह दूसरा जन्म है। स्वामी शंकराचार्य ने शिक्षा की परिभाषा इस प्रकार दी है–सा विधा या ब्रह्मगति प्रदा। अर्थात् शिक्षा वह वस्तु है जिसके द्वारा पूर्ण आत्मिकता का अनुभव हो जाए। एच.ए. मैके ने शिक्षा को मानसिक शक्तियों और आत्मा से आत्मा का मेल कहा है। पाचात्य विद्वान बासिंग ने शिक्षा को परिभाषित करते हुए कहा है कि शिक्षा का कार्य व्यक्ति को वातावरण के साथ उस सीमा तक अनुकूल कराना है, जिससे व्यक्ति और समाज दोनों के लिए स्थायी संतोष प्राप्त हो

सके। काण्ड के विचारानुसार—''शिक्षा व्यक्ति की उस पूर्णता का विकास है जिसकी उसमें जितनी क्षमता है।'' वास्तव में शिक्षा चैतन्य रूप में एक नियंत्रित प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति के व्यवहार में परिवर्तन किए जाते हैं। शिक्षा का अर्थ मात्र गणित, इतिहास या अर्थशास्त्र का ज्ञान प्रदान करना नहीं है, अपितु व्यक्ति की जन्मजात शक्तियों को विकसित करना है। यह एक जीवनपर्यन्त चलनेवाली प्रक्रिया है। यह विद्या एवं ज्ञान अर्जित करने की एक विधि है जिसके द्वारा व्यक्ति का सर्वांगीण विकास होता है। वह व्यक्ति की आंतरिक शक्तियों को बाह्य रूप प्रदान करती है और सांस्कृतिक, सुसभ्य बनाती है।

शिक्षा का मेरा अभिप्राय सांगीतिक शिक्षा से है। संगीत में स्वर तथा लयबद्धता, गीतों तथा धुनों की पंक्तियों की आवृतियों में नियमबद्धता, नृत्य के विभिन्न चरणों की क्रमबद्धता आदि अनुशासनात्मक गुण संगीत शिक्षा के माध्यम से छात्रों में जागृत होते हैं। राग के नियमों जैसे वादी, संवादी, वर्जित स्वर, शुद्ध-विकृत स्वर, ताल के नियम, नृत्य के भाव, पदन्यास आदि छात्रों में नियमबद्धता अर्थात् अनुशासन की भावना को प्रेरित करते हैं।

छात्रों में संगीत सीखने के अतिरिक्त मंच प्रदर्शन भी अनुशासन सिखाता है। गायन के प्रदर्शन में गायन के साथ दाहिनी और तात्यवादक व बाईं ओर स्वरवाद्य संगतकार का विराजित होना अनुशासन ही तो हैं केवल संगीत सीखना ही नहीं अपितु संगीत का श्रवण और दर्शन भी छात्रों में अनुशासनबद्ध रहने के संस्कार प्रदान करता है। संगीत के छात्र इन्हीं प्रदत संस्कारों के कारण आदर्श शिष्य कहलाने के योग्य होते है। डॉ. श्री पद रामचन्द नाईक के शब्दों में—''श्रोताओं की नजरें, मन, कान आदि को आकर्षित कर लेने की शक्ति अनुशासन से भरी संगीतकला में होती है। छात्रों में अनुशासन निर्माण करने के लिए जिन उपायों का प्रयोग किया जाएगा, उनमें संगीत शिक्षा सर्वोपरि होगा। भारत सरकार द्वारा नई शिक्षा नीति 2020 की घोषणा में कला का स्थान इस उद्देश्य की पूर्ति को इंगित करता है। नई शिक्षा नीति 2020 की योजना यदि निश्चित रूप से सफल हो जाए तो यह देशाहित में अव्यावश्यक और लाभकारी होगा।

सुधी पाठकों, दृश्य एवं प्रदर्शनकारी कला की शोध पत्रिका 'भैरवी' का अंक 20, प्रकाशन वर्ष 2021 आपके हाथ में है। आपके स्तरीय आलेख की प्रतीक्षारत हूँ। प्रूफ रीडिंग बड़ा ही दुरुह कार्य है, अपितु कोई भी टंकण भूल हो तो सुधी पाठक क्षमा करेंगे। आपसे पुनः बात होगी अगले अंक के साथ। नमस्कार।

—प्रो. (डॉ.) पुष्पम नारायण
संपादक
स्नातकोत्तर संगीत एवं नाट्य विभाग
ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय,
कामेश्वरनगर, दरभंगा 846004
मो. - 09430063265
ईमेल - npushpamji@gmail.com

अनुक्रम

	संपादक की कलम से ...		9
1.	भागलपुर घराना : एक अवलोकन	डॉ. अरविन्द कुमार	13
2.	सार्वभौमिकता के परिवेश में भारतीय संगीत	डॉ. अनया थत्ते	16
3.	संगीत का आध्यात्मिक पक्ष	क्षमा मिश्रा	20
4.	ऑनलाइन प्रणाली द्वारा संगीत शिक्षण में चुनौती एवं सम्भावनाएं : नई शिक्षा पद्धति के सन्दर्भ में	दीपक सिंह	28
5.	अवध क्षेत्र का लोक गीत : एक अध्ययन	डॉ. ज्योति विश्वकर्मा,	32
6.	''रेला'' एक महत्वपूर्ण वादन प्रकार	डॉ वेणु वनिता	37
7.	आभासी संगीत शिक्षा में नवाचार और रचनात्मकता - एक प्रयोग	डॉ. स्नेहाशीष ज. दास	42
8.	भीष्म साहनी के नाटक,समाज और सामाजिक दस्तावेज	प्रो. पुष्पम नारायण, मो. इरफान अहमद	46
9.	पंडित भातखंडे की थाट पद्धति : एक अध्ययन	विशाल विजय कोरडे	50
10.	हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत की उन्नत अवस्था में लोक संगीत का स्थान	प्रो. डॉ. जयश्री मि. वैष्णव	54
11.	उपशास्त्रीय संगीत की विधा - चैती	प्रो. लावण्य कीर्ति सिंह 'काव्या' मणिकान्त कुमार	58
12.	आधुनिक भारत में संगीत-शिक्षण का गौरवशाली इतिहास	प्रो. पुष्पम नारायण, निधि कुमारी	62
13.	गुरमत संगीत के प्रमुख वाद्य	बलदीप कौर	67
14.	संगीत रामायण के रचयिता पं. रामाश्रय झा 'रामरंग' जी	प्रियंका सहवाल	73
15.	नेपाल में प्रचलित 'नेवारी संगीत' में प्रयुक्त विभिन्न वाद्यः एक अध्ययन	मोहन शोभा महर्जन, डॉ. राजेश केलकर	78
16.	भक्ति संगीत की अनन्य साधिका मीरा	संदीप मुखर्जी, डॉ. कुमार अम्बरीश चंचल	82
20.	समस्तीपुर की संगीत कला साधना में स्वतंत्रता पूर्व के कलाकारों का योगदान	सुमन सौरभ, डॉ. लालति कुमारी	85
21.	विशाखदत्त के नाटकों में यथार्थ चित्रण	डॉ. पुष्पम नारायण, सुनिता भारती	90

22. हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत की गायन शैलियाँ — विनोद कुमार 96

23. समय-सिद्धान्त एवम् राग गायन की विभिन्न पद्धतियाँ — अलंकार महतोलिया 100

24. किराना घराना और आगरा घराना : बंदिश की विशेषता का तुलनात्मक अध्ययन — पारुल शर्मा 107

25. भारतीय संगीत आधुनिकता की ओर — डॉ. श्रुति होड़ा 110

26. भारत में सिनेमा का सफरनामा — डॉ. गौरव शुक्ल 115

27. बुन्देलखंडी वीरगाथा आल्हा एक विश्लेष्णात्मक दृष्टि — अपर्णा पाण्डेय, डॉ. सुनीता द्विवेदी 118

28. Analytical study of the role of music in mental health — Prof. Dr. Sunil B. Kolhe 124

29. Music Marketing — Ruma Chakraborty, Prof. Neera Choudhury 128

30. Thaat System and the total number of scales: A critical analysis — Bhavik Mankad 133

31. Bharatanatyam Conventions V/S Liberty to Think out of Box — Minal S. Merai, Dr.Ami Pandya 141

32. Tabla: Philosophical and Mathematical investigations — Shalini Saxena, Hariom Hari and MS Godbole 150

भागलपुर घराना : एक अवलोकन

डॉ. अरविन्द कुमार

भागलपुर प्राचीन अंग देश का भू-भाग है। इस भू-भाग को पहले 'चंपा' देश के नाम से जाना जाता था, लेकिन 'अंग' नाम सर्वाधिक प्राचीन है। यह नाम सर्वप्रथम अथर्ववेद में दृष्टिगत होता है। एतरेय ब्राह्मण, बौद्ध एवं जैन साहित्य में इस क्षेत्र का उल्लेख मिलता है। 'अंग' की राजधानी 'चंबा' थी। मत्स्य पुराण के अनुसार इसका प्राचीन नाम 'मालिनी' था। बुद्ध के समय तक 'चंपा' भारत के छह प्रमुख नगरों में से एक था। इसकी समृद्ध ह्वेनसांग के यात्रा-वृत्तांत से प्राप्त होता है। यही चंपा नगर आगे चलकर 'भागलपुर' नाम से ख्यात हुआ।1

बिहार के पूर्वी छोड़ पर गंगा नदी और पठारों के बीचो-बीच बसा यह शहर प्राकृतिक छटाओं से युक्त है। विश्वप्रसिद्ध विक्रमशीला विश्वविद्यालय यहीं अवस्थित था। यह शहर कतरनी चावल, जर्दालु आम एवं सिल्क के कड़ड़ों के लिए प्रसिद्ध रहा है। यह शहर कला, साहित्य, संगीत, नाटक आदि के क्षेत्र में अपना विशिष्ट पहचान बनाए हुए है। संगीत का गढ़ मानेजाने वाला यह क्षेत्र आज भी संगीतज्ञों से खाली नहीं हुआ है।

हिन्दुस्तानी संगीत पर जब हम दृष्टिपात करते हैं तो स्पष्ट रूप से इसकी विशिष्ट परम्पराएँ दिखलाई पड़ती है। यह परम्परा समय की धारा के प्रवाह में अपने आप को समयानुकूल बदलाव लाते हुए मूल से कहीं भी नहीं भटकी है। परम्परा युगों-युगों से चली आ रही विचार, ज्ञान अथवा रीति-रिवाज का संपोषक है। अनुभवों की पीढ़ी-दर-पीढ़ी संचित ज्ञान ही परम्परा है। परम्परा वर्तमान की आवश्यकतानुसार अपने आप को परिवर्तन-परिवर्द्धन भी करता है। इसका सहज स्वभाव है कि वह सृजन प्रक्रिया को नियमित करता है। सृजनशीलता स्वभाव के कारण ही स्वतः पारस्परिक प्रभाव को प्रत्यक्षतः जीवित रखता है।[2]

सांगीतिक परम्परा की महिमा असाधारण है और उसकी शक्ति सदा अनंत मात्रा में भारतीय संस्कृतिक परिवेश को मिलता रहा है। परम्परा को यहाँ इतना महत्त्व दिया जाता है कि यहाँ के संगीतज्ञ अपने-आप को किसी विशिष्ट परम्परा का संवाहक बताते हुए गर्व महसूस करते हैं। परम्परा के कारण ही भारतीय संगीत की धारा प्राचीन काल से वर्तमान तक सतत् प्रवाहित एवं जुड़ा हुआ है। भारतीय सांगीतिक परम्परा वैदिक गान से होते हुए, विविध मत-मतान्तरों को समाहित करते हुए 'घराना' परम्परा पर पहुँचकर अपने मूल को विस्तृत आयाम प्रदान कर वर्तमान में यह 'घराना' परम्परा से भी आगे बढ़ चुका है।

प्राचीन काल से ही बिहार के संगीतज्ञों ने इस कला को संरक्षित किया है। वर्तमान में 'ध्रुपद-धमार' की परम्परा समृद्ध परम्परा के रूप में विराजमान है। 'ध्रुपदांग' गायकी की परम्परा का सहज ही दिग्दर्शन पगे-पगे दृष्टिगत होता है। 'ख्याल गायिकी' की परम्परा भागलपुर घराने के कलाकारों में ही मुख्य रूप से दिखलाई पड़ता है। इस घराने में ऐसे अनेक साधक-कलाकार हुए हैं जिन्होंने परिश्रम और साधना के माध्यम से एक कीर्तिमान स्थापित किया है। इस घराने ने संगीत जगत को कुछ ऐसी उपब्धियाँ दी हैं, जिसके फलस्वरूप संगीत जगत युगों-युगों तक इस घराना का ऋणी रहेगा।

विभागाध्यक्ष एवं सह आचार्य, संगीत विभाग, मगध महिला महाविद्यालय, पटना विश्वविद्यालय, पटना।

भागलपुर घराना के अधिष्ठाता भातृजद्वेय पं. विष्णुदयाल मिश्र एवं पं. शंकर दयाल मिश्र के पुत्र पं. सुरजन प्रसाद मिश्र और पं. अयोध्या प्रसाद मिश्र थे। इन्हें बनैली स्टेट के राजा दरबारी गायक के रूप में अयोध्या के निकट 'धमरूआ' गाँव से बुलवाया था। कुछ लोगों का मत है कि ये भातृजद्वय जौनपुर के बसालतगंज के रहने वाले थे। दोनों गायकों को बरारीघाट (भागलपुर के निकट) में 150 बीघा जमीन खेती-बारी हेतु दरबार की ओर से मुहय्या कराया गया था। दोनों भाई गायन-वादन में निपुण कलाकार थे।[3]

पं. विष्णुदयाल मिश्र के पुत्र पं. अयोध्या प्रसाद मिश्र चारो पट गायकी में निपुण थे। इनके चारो पुत्र पं. रघुनाथ मिश्र, पं. बैद्यनाथ मिश्र, पं. जदुनाथ मिश्र तथा पं. पशुपतिनाथ मिश्र गायन-वादन में दक्ष संगीतज्ञ थे। पं. रघुनाथ मिश्र प्रतिष्ठित कलाकारों के बीच 'झंडेनसीन' कलाकार के रूप में प्रसिद्ध थे। इनके चारों पुत्र पं. अमरनाथ मिश्र, पं. अजरनाथ मिश्र, पं. घुघरनाथ मिश्र तथा दुधनाथ मिश्र गायन में निपुण थे। पं. अमरनाथ के पुत्र पं. दुर्गेश मिश्र गायन तथा पं. मोहन मिश्र और पं. सोहन मिश्र सितार के प्रतिष्ठित कलाकार हुए हैं।

पं. बैद्यनाथ मिश्र के दो पुत्र पं. गणेश मिश्र एवं पं. अन्ना मिश्र हुए। पं. गणेश मिश्र 'ठुमरी' के विशेषज्ञ एवं हारमोनियम बजाने में दक्ष थे। पं. अन्ना मिश्र गायन और तबला के विशेषज्ञ संगीतज्ञ थे। पं. अन्नामिश्र के पुत्र पं. गोकुल प्रसाद मिश्र तबला वादन के लिए प्रसिद्ध हैं। पं. रघुनाथ मिश्र की पुत्री की शादी बनारसी मिश्र से हुई। ये अपने ससुराल भागलपुर में ही बस गए। इनके दोनों पुत्र पं. ललन मिश्र तथा पं. रवि मिश्र तलबा वादन में दक्षता हासिल की। पं. बनारसी मिश्र की पुत्री मग्गन मिश्र का विवाह सारंगी वादक पं. सितला सेवक प्रसाद से हुई। ये भी बनारस से आकर भागलपुर में बस गए। इनके पुत्र पं. रामदास मिश्र कुशल गायक के रूप में प्रसिद्ध हुए। पं. रामदास मिश्र के पुत्र पं. चन्दन मिश्र तबला वादन के साथ-साथ गायन में भी दक्ष थे। ये विदेशों में भी अपनी प्रस्तुति दे चुके हैं। वर्तमान में आपके पुत्र डॉ. अभिषेक मिश्र तबला वादन में उच्च कोटि के वादक हैं तथा तिलकामांझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर के संगीत-विभाग में कार्यरत हैं। आपने भी विदेशों में कार्यक्रम प्रस्तुत की है।

पं. शंकरदयाल मिश्र के पौत्र एवं भागलपुर घराने के महत्वपूर्ण स्तंभ पं. सुरजन मिश्र के पुत्र पं. बदरीसेवक मिश्र हुए, जो संगीत के उद्भट विद्वान थे। इनके पुत्र पं. शारदा प्रसाद मिश्र, पं. केदारनाथ मिश्र, पं. प्रह्लाद प्रसाद मिश्र तथा पं. रामनरेश मिश्र थे। ये चारों भाई संगीत के प्रतिभा सम्पन्न रसिक गायक थे। श्रोताओं को अपने रंग में रंगने के ये उस्ताद कलाकार थे। पं. रामनरेश मिश्र तबला वादन में भी प्रतिष्ठत कलाकार थे। ये चारो भाई मंचीय कलाकारों के साथ-साथ उत्तम वाग्गेयकार भी थे।

पं. शारदा प्रसाद मिश्र ने अपने पिता के स्वर्गवास हो जाने के बाद अपने तीनों अनुजों को संगीत की शिक्षा प्रदान की। ये बम्बई (मुम्बई) के सांगीतिक समाज से भी जुड़े थे। इन्होंने प्रसिद्ध अभिनेता अशोक कुमार को भी संगीत की शिक्षा दी थी। इनके पुत्र पं. श्यामलाल मिश्र 'नाहर' और पं. जवाहरलाल मिश्र 'नाहर' गायकी के लिए जाने जाते हैं। पं. श्यामलाल मिश्र 'नाहर' के पुत्र पं. विजय नाहर और पं. अजय नाहर संगीत कला के सेवा में रत हैं।

पं. केदारनाथ मिश्र अपने भाईयों में सबसे ऊँचे सप्तक से गाते थे। इनकी गायकी बहुत ही कशिश वाली थी तथा बहुत ही तैयार भी। इनके पुत्र महादेव मिश्र 'नाहर' मुम्बई में जाकर बस गए। द्वितीय पुत्र पं. शंकर मिश्र 'नाहर' ख्याल गायकी के लिए प्रतिष्ठित संगीतज्ञ हैं। साथ-ही-साथ भागलपुर में संचालित 'शारदा संगीत महाविद्यालय' के व्यवस्था को भी देखते हैं।

पं. प्रह्लाद प्रसाद मिश्र इस घराने के सबसे विद्वान संगीतज्ञ के रूप में स्थापित कलाकार थे तथा पटना विश्वविद्यालय के संगीत-विभाग से सम्बद्ध थे। आप गायन के साथ-साथ सितार एवं तबला वादन में भी दक्ष थे। आपके तीनों पुत्र वर्तमान में प्रसिद्ध संगीतज्ञ हैं। बड़े पुत्र पं. संगीत कुमार 'नाहर' गायन में अद्वितीय प्रतिभासम्पन्न कलाकार हैं। ये ख्याल के साथ-साथ टप्पा एवं टप्पख्याल गाने में महारत रखते हैं। द्वितीय पुत्र प्रो. (डॉ.) साहित्य कुमार 'नाहर' मानसिंह तोमर विश्वविद्यालय, ग्वालियर

में कुलपति के रूप में प्रतिष्ठापित हैं। आप सितार वादन में 'उच्च ग्रेड' के कलाकार हैं। तृतीय पुत्र डॉ. संतोष कुमार 'नाहर' वेला वादन में सिद्धहस्थ कलाकार के साथ-साथ आकाशवाणी में कार्यक्रम अधिसासी हैं। ये सभी भाई देश के प्रतिष्ठित मंचों से अपने कार्यक्रमों की प्रस्तुति करते रहते हैं। पं. संगीत कुमार 'नाहर' के पुत्र पं. गौरव कुमार 'नाहर' वेलावादन में एवं डॉ. सौरव कुमार 'नाहर' गायन में प्रतिष्ठित कलाकार हैं। प्रो. साहित्य कुमार 'नाहर' के पुत्र डॉ. शोभित कुमार 'नाहर' भी सितार वादन में दक्ष कलाकार के साथ-साथ कुशल शिक्षक भी हैं।

पं. रामनरेश मिश्र के एक मात्र पुत्र डा. राजकुमार 'नाहर' तबला वादन में उच्च कोटि के कलाकार हैं साथ ही गायन में भी दखल रखते हैं। आप दूरदर्शन के निदेशक के पद पर कार्यरत हैं। ये सभी कलाकार देश-विदेशों के मंचों से अपनी प्रस्तुतियाँ दी है।

भागलपुर के 'मिश्रनाहर' परम्परा में स्थापित सभी गायक उच्च कोटि के वाग्गेयकार भी हैं। ये सभी 'दासपिया' के उपनाम से रचना करते हैं। यह परम्परा पं. सुरजन प्रसाद मिश्र से पं. सौरव कुमार 'नाहर' तक दृष्टिगत है। इस घराने के गायकी के अवलोकन से निम्नलिखित विशेषताएँ दिखलाई पड़ती है[4]-

1. इस परम्परा के सभी गायक 'दासपिया' उपनाम से बंदिशों की रचनायें करते हैं।
2. ख्याल गायकी में ध्रुपद अंग की विशेषताओं का समावेश करते हैं।
3. सपाट तान, दोहरे-तिहरे तान एवं गमक तानों का प्रदर्शन साथ-ही-साथ तान के विभिन्न प्रकारों का सौन्दर्यानुकूल समावेश।
4. टप्पा एवं टप्पख्याल गाने में दक्ष।
5. शब्दों को भावों के अनुरूप प्रस्तुतिकरण।
6. राग के स्वभाव के अनुसार लय का रख-रखाव।
7. अति तारसप्तक में खुली हुई आवाज में स्वर का लगाव।
8. पुकार के गाने का अनोखा ढंग।

'दासपिया' के बंदिशों में शब्दों का चयन की उत्कृष्टता झलकती है। उदाहरणस्वरूप-

जनकनन्दनी जानकी चली फूलक हार लिए संग भाविनी।
गले जयमाल डालत रघुवर को हँसत दंत चमकत जय दामिनी,
'दासपिया' देखत सब कामिनी।।

उपर्युक्त पद को 'छायानट' राग में निबद्ध किया गया है। इस राग के स्वरावली की सहायता से एक-एक शब्दों के भाव मुखरित होकर प्रकट होते हैं।

इस घराने में गायन के साथ-साथ तंत्रवादन यथा-सितार, वेला आदि और तबला वादन की परम्परा रही है। यहाँ के तंत्र वादक भी गायकी अंग से ही विशेषकर अपना वादन प्रस्तुत करते हैं। इस परम्परा में अनेकों उत्कृष्ट कलाकार हुए हैं, जो संगीत कला को समृद्ध करने में अपना सम्पूर्ण व्यक्तित्व एवं जीवन समर्पित किया है।

स्पष्ट है कि इस घराने में गायन-वादन की परम्परा रही है। इसमें अधिकांश गायक चारों पट की गायकी में परांगत रहे हैं। विशेष तौर पर ख्याल, टपख्याल, टप्पा गायकी का बोलबाला रहा है। इस घराने की बंदिशों और उसका अनोखा चलन अन्य घरानों से अलग दिखलाई पड़ता है। इस परम्परा में राग की शुद्धता को बनाए रखते हुए कल्पनाशीलता और सृजनशीलता से उसे अनेक रंगों में सौन्दर्यवर्द्धन किया जाता है। इसके साथ ही रागों में स्वरलगाव और रागों के भावों के अनुकूल लय की चलन पर विशेष ध्यान दिया जाता है। एवं मींड़ का चमत्कारिक प्रयोग इस घराने में दृष्टिगत है। स्वरों के छोटा-बड़ापन, स्वरों के मेल में कलात्मक अंगों का वाहुल्य तथा बड़ा ख्याल की गायिकी के बढ़त में ध्रुपद अंग का प्रभाव विशेष तौर पर दिखलाई पड़ता है।

संदर्भ सूची :

1. देवी, डॉ. गायत्री, 'अंगिका लोक गीत', पृ. 11 एवं 23।
2. कुमार, डॉ. अरविन्द, 'अभिषेक संगीत पल्लव', पृ. 15।
3. 'नाहर', सौरभ कुमार, 'बिहार के भागलपुर संगीत परम्परा का भारतीय शास्त्रीय संगीत में योगदान', उपाधि प्रदत्त शोध-प्रबंध, इन्दिरा कला संगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ़, 1914, पृ. 36।
4. पं. संगीत कुमार 'नाहर' से वार्ता के आधार पर।

सार्वभौमिकता के परिवेश में भारतीय संगीत

डॉ. अनया थत्ते

सार संक्षेप

दार्शनिक दृष्टिकोण से भारतीय संगीत की उत्पत्ति नादब्रह्म ओंकार से हुई है। ओमकार वह नाद है जिसमें अकार ऊकार तथा मकार समाहित है। संपूर्ण नाद विश्व का सर्जन ओमकार से हुआ है ऐसा माना जाता है। भारतीय संगीत को नित्य ही आध्यात्मिक तथा दार्शनिक परिवेश में देखा गया है। भाषा चाहे कोई भी हो, संगीत में स्वर और लय तो सभी जगह समान ही है। यही कारण है कि किसी भी प्रकार के संगीत को सुनते ही मनुष्य अपनेआप उसकी तरफ आकर्षित होता है। संगीत का यही गुण उसे सार्वभौमिक बनाता है। सार्वभौमिक का अर्थ है विश्व व्यापक। प्रस्तुत शोधपत्र में भारतीय संगीत में विद्यमान सार्वभौमिक तत्वों पर विमर्श किया जायेगा।

पारिभाषिक शब्द

- सार्वभौमिक—वह जो स्थानिक, जातीय, राष्ट्रीय तथा अन्य संकुचित भावनाओं से मुक्त हो।
- संगीत—रस की उत्पत्ति करने वाले सुव्यवस्थित ध्वनि को संगीत कहते है।
- भारतीय संगीत—संपूर्ण भारत में प्रचलित विविध संगीत प्रकारों को समग्र रूप में भारतीय संगीत कहा जाता है।
- एथनोम्युज़िकोलॉजी—लोक और आदिम संगीत और संस्कृतियों से उनके संबंध का अध्ययन।
- शिक्षा नीति 2020—देश की शिक्षा प्रणाली को नियंत्रित करने हेतु सन 2020 में बनाये गए नियम।
- म्युज़िकोलॉजी—संगीत शास्त्र।

सामग्री तथा कार्यप्रणाली

प्रस्तुत शोधपत्र के लिए इंटरनेट तथा NCPA, संगीत विभाग मुंबई विश्वविद्यालय जैसे संस्थानों के पुस्तकालयों में उपलब्ध सामग्री का उपयोग किया गया है। इस शोधपत्र के लेखन में संशोधन की वर्णनात्मक तथा विश्लेषणात्मक पद्धतियों का विशेष रूप से उपयोग किया गया है।

अध्ययन क्षेत्र

सार्वभौमिकता से सम्बंधित होने के कारण प्रस्तुत विषय का अध्ययन क्षेत्र वैश्विक स्तर का ही है परन्तु इसे भारतीय संगीत तक मर्यादित रखा गया है। गायन वादन तथा नर्तन इन तीनों विधाओं का विचार इसमें किया गया है परन्तु निष्कर्ष तक पहुंचते पहुंचते यह प्रतीत होता है कि सार्वभौमिकता का विचार इनमें से वादन तथा नृत्य में अधिक प्रभावी रहा है। अधुनाप्रसिद्ध संगीत को ध्यान में रखकर भारतीय संगीत के साथ मिश्रण होकर निर्माण हुए फ्यूज़न संगीत को भी दुर्लक्षित नहीं किया है।

प्रस्तावना

विषय के सन्दर्भ में स्पष्टता पाने हेतु सर्वप्रथम सार्वभौमिक का तात्पर्य समझना आवश्यक होगा। यह शब्द संस्कृत भाषा से उत्पन्न हुआ है। सर्व भूमि में व्याप्त इस प्रकार सार्वभौमिक का अर्थ समझना होगा। समस्त पृथ्वी पर फैला हुआ, अथवा वह जो

सहाय्यक प्राध्यापिका, संगीत विभाग, मुंबई विश्वविद्यालय, मुंबई, e mail : anaya _thatte@yahoo.co.in

स्थानिक, राष्ट्रीय, जातीय तथा अन्य संकुचित भावनाओं से मुक्त हो इस प्रकार सार्वभौमिक शब्द को परिभाषित किया जाता है। ऐसे विचार जो सभी देश काल में सत्य है। संगीत भी इन विचारों में से ऐसा महत्वपूर्ण विचार है जो संपूर्ण विश्व में व्याप्त है। संगीत का अस्तित्व पूरे ब्रह्मांड में होने के कारण संगीत को भी सार्वभौमिक कहा गया है। यह सभी व्यक्ति के चेतन अवस्था को समान रूप से प्रभावित करता है। इस रूप में यह कहा जा सकता है कि संगीत समाज के सभी व्यक्तियों को प्रभावित करता है, इसलिए यह मनुष्य के सामूहिक जीवन में समान रूप से अपना प्रभाव बनाकर रहता है।

भारत में संगीत की परंपरागत व्याख्या गीतम वाद्यम तथा नृत्यं त्रयं संगीतम उच्यते इस प्रकार की गयी है। इसके अनुसार संगीत में गायन, वादन, तथा नृत्य तीनों विधाओं का समावेश होता है। स्वर लय तथा बंदिश यह भारतीय संगीत के तीन मूलभूत तत्व है जो गायन वादन तथा नृत्य में प्रयुक्त होते है। जब हम भारतीय संगीत की बात करते हैं तो केवल शास्त्रीय संगीत ही नहीं तो अधुना प्रसिद्ध संगीत के सभी प्रकार इसमें समाविष्ट हैं।

प्रख्यात संगीतज्ञ डॉ. अशोक रानाडे जी ने संगीत का विभाजन आदिम संगीत, लोक संगीत, शिष्ट संगीत, जनप्रिय संगीत इत्यादि प्रकारों में किया है। मनुष्य की उत्क्रांति अवस्था के समय के संगीत को आदिम संगीत कहा गया है। यह अत्यंत सरल तथा मूलभूत स्वरुप का संगीत रहा होगा ऐसा उनका कहना है। भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए उच्चरे गए विशिष्ट स्वर, बजायी गयी तालियाँ, नैसर्गिक वस्तुओं से उत्पन्न ध्वनि आदि का समावेश आदिम संगीत के अंतर्गत होता है। उससे थोड़ी प्रगत अवस्था लोक संगीत की बताई गयी है। इसमें स्वर, शब्द, ताल लय आदि का उपयोग होता था। इसका स्वरुप सामूहिक तथा असंस्कारित था। उत्स्फूर्तता इसकी आत्मा होती है। स्वर मर्यादा तीन से चार स्वरों की होती है। सामाजिक रूढ़ि परम्पराएं तथा अन्य भावनिक सन्दर्भो के गीतों का समावेश इनमें होता है। शिष्ट संगीत संस्कारित संगीत होता है। इस प्रकार के संगीत को प्रस्तुत करने तथा आस्वादन करने के लिए विशिष्ट प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। भारतीय शास्त्रीय संगीत का समावेश शिष्ट संगीत के अंतर्गत होता है। जनप्रिय संगीत में अधुना प्रचलित संगीत के सभी प्रकार, जैसे फिल्म संगीत, नाट्य संगीत, सुगम संगीत, भावसंगीत आदि का समावेश होता है। भारत की संस्कृति पर विभिन्न प्रांतीय संस्कृति का प्रभाव होने के कारण भारतीय संगीत का क्षेत्र अत्यंत विकसित है। भारतीय संगीत में अंतर्निहित प्रचंड सकारात्मक ऊर्जा के कारण इसे विश्व के सभी संगीत में श्रेष्ठ माना गया है। इस ऊर्जा का सृजन मनुष्य को तब होता है जब वह अपना संपूर्ण लक्ष्य संगीत के साधना में लगाकर उसके बुनियादी तत्वों तक जाने का प्रयास करता है।

भारतीय संगीत के शास्त्र की बात करें तो हम कह सकते हैं कि संगीत का शास्त्र भरतमुनि के नाट्यशास्त्र के रूप में विश्व के अन्य देशों से सदियों पहले अस्तित्व में आया था। सभी कलाओं के मूल सिद्धांतों के सन्दर्भो के लिए आज भी भरत को ही उद्धृत किया जाता है। भारतीय संगीत शास्त्र का बीज हमें प्रतिशाख्य और शिक्षा ग्रंथों में प्राप्त होता है। इसी से इसके प्राचीनता की कल्पना है। जबकि पाश्चात्य म्यूजिकोलॉजी का विकास आधुनिक है। भारतीय संगीत की पद्धति दर्शन और योग पर आधारित है। पाश्चात्य संगीत शास्त्र आधुनिक युग के अनुसार वैज्ञानिकता का आधार लेता है। आश्चर्य यह है की दर्शन और योग पर आधारित सदियों पहले निर्मित भारतीय संगीत की सभी संकल्पनाएं पाश्चात्य म्यूजिकोलॉजी के सभी तर्कों का समाधान करती है। भारतीय संगीत का दृष्टिकोण अंतिम लक्ष्य की प्राप्ति माना गया है और धार्मिक दार्शनिक पद्धति से उसका प्रयोग किया जाता है। इसके विपरीत पाश्चात्य देशों में संगीत का दृष्टिकोण उपयोगितावादी और पद्धति भौतिक वैज्ञानिक है। आधुनिक युग में भौतिकतावाद की तरफ भारतीय संगीत का झुकाव दिखाई देता है जो पाश्चात्य देशों की देन है। पाश्चात्य देशों में संगीत को स्थूल रूप में तीन भागों में बांटा है।

(1) शास्त्र—भौतिक और वैज्ञानिक क्षेत्र
(2) तकनीक या शैली—हारमनी, ताल-लय, छंद (मीटर)

(3) रचना अथवा भारतीय संदर्भ से बंदिश

भारतीय संगीत में भी उपरिनिर्दिष्ट घटक निहित है। पाश्चात्य म्यूजिकोलॉजी के अभ्यास में संगीत लिपि, सौंदर्यशास्त्र, ध्वनि विज्ञान, इतिहास, स्वरसंगति, स्वरसंक्रम आदि का अंतर्भाव होता है जिसका अंतर्भाव भारतीय संगीत में भी किया जाता है।

वैश्विकता के स्तर पर विश्व के सभी देशों के संगीत में स्वरमान, लय, उच्चारण, गतिशीलता, अभिव्यक्ति, रूप, आकार, सामंजस्य तथा संयोजन आदि संगीत के मूलभूत तत्व माने जाते है। भारतीय संगीत में भी यद्यपि स्वर, लय तथा बंदिश इन तीन तत्वों को मूलभूत तत्व के रूप में स्वीकारा गया है, अपितु यहां निर्देशित अन्य तत्वों को भी दुर्लक्षित करना संभव नहीं है। भारतीय संगीत का सार्वभौमिकत्व सिद्ध करने के लिए वैश्विक स्तर पर विविध देशों में संगीत की अभिव्यक्ति के अवसरों को भी देखना होगा। आम तौर पर संगीत की उत्पत्ति का कारण भावाभिव्यक्ति बताया गया है। मनुष्य के मन में उमड़ी विविध भावनाओं को अभिव्यक्त करने हेतु अतिप्राचीन काल से ही वह एकल स्वर, तालियां, विविध पदन्यास आदि का सहारा लेता रहा, उसी का विकसित रूप संगीत है। अधिक अभ्यास के उपरांत यह स्पष्ट होता है की आमतौर पर सामाजिक रीति रिवाज तथा दैनंदिन व्यवहार में संगीत जगह जगह उपयोग में लाया जाता है। अधिकतर संगीत का उपयोग सभी समाजों में बाल संगोपन, चिकित्सा, मनःस्वास्थ्य, धार्मिक अवसर, त्यौहार, परिवार में जन्म तथा मृत्यु के समय किया जाता है।

संगीत एक वैश्विक भाषा है यह उक्ति हम सदियों से कहते सुनते आ रहे है। अंग्रेजी में इसे म्यूजिक कहा जाता है, जिसकी उत्क्रांति फ्रेंच, लैटिन, ग्रीक आदि भाषाओं से मानी जाती है। देखा जाए तो संगीत यह किसी भी समाज का महत्वपूर्ण अंग है। परन्तु इस सामजिक मान्यता को वैज्ञानिक दृष्टिकोण से सिद्ध करने का प्रयास संगीत जगत में किसी ने किया हो, इसके प्रमाण प्राप्त नहीं है। भारत में संगीत के क्षेत्र में वैज्ञानिक संशोधन कुछ दशकों से ही आकार ले रहे है। इसके पहले प्रस्तुतीकरण की कला के रूप में स्वीकारे जाने के कारण संगीत में संशोधन को बढ़ावा ही नहीं मिला। परन्तु पाश्चात्य देशों में संशोधन क्षेत्र अत्यंत विकसित है। संगीत के संशोधन में भी भवानिकता से ज्यादा शुद्ध वैज्ञानिक दृष्टिकोण को अपनाया जाता है। वहाँ विषय के समग्र अध्ययन के लिए अंतःविषयक अथवा बहुविषयक संशोधनों को भी अपनाया जाता है।

हारवर्ड यूनिवर्सिटी में एथनोम्युज़िकोलॉजी के अंतर्गत संगीत की सार्वभौमिकता की अवधारणा को वैज्ञानिक कसौटी के आधार पर परखने के प्रयास किये गए। इन अनुसन्धानों में वहाँ के म्यूज़िकोलॉजिस्ट्स, अन्थ्रोपोलॉजिस्ट्, भाषातज्ञ, राजनीतिक वैज्ञानिक तथा जीव विज्ञानशास्त्र के कुछ अभ्यासकों ने संगीत की सार्वभौमिकता पर एकत्रित संशोधन करने का प्रयास किया। इनके अनुसार किसी भी समाज का संगीत विशिष्ट सांस्कृतिक व्यवहार का दर्शक नहीं होता है। वह एक ऐसी विशिष्ट मानसिक अवस्था को दिया गया ध्वन्यात्मक प्रतिसाद है जो विशिष्ट सामाजिक तथा भावनिक परिस्थितिजन्य है। तात्पर्य, संगीत का अनुभव केवल ध्वनि तथा लय के माध्यम से होता है। शब्द उसका सौंदर्य बढ़ाते हैं परन्तु संगीत में शब्द का होना आवश्यक नहीं है।

यूनिवर्सिटी ऑफ़ कैलिफ़ोर्निया, बर्कले में भी इस प्रकार के अभ्यास किये गए, जिसमें कुल 315 अलग अलग संस्कृतियों के संगीत का संकलन कर उसे विश्लेषित किया गया। संगीत कौन-सी मानवी भावनाओं पर परिणाम करता है यह इस संशोधन का मूल लक्ष्य था। इस संशोधन द्वारा आनंद, आश्चर्य, दुःख, शांतता, उत्कंठा, चिंता, कल्पना, हर्ष, भय, वीरता आदि तेरह सूक्ष्म भावनायें सभी मानव प्रजाति में एक समान होती है, जिनपर संगीत का परिणाम दिखाई देता है। भाषा भिन्नता के बावजूद भी स्वरों के उतार चढ़ाव, प्रस्तुतकर्ता तथा सुननेवालों की प्रतिक्रियाएं आदि द्वारा संगीत का आनंद लेना संभव है इस प्रकार के निष्कर्ष सामने आये।

हमारे देश में हाल ही में पारित हुई नयी शिक्षा नीति के अंतर्गत भारतीय पारम्परिक कलाओं को वैश्विक स्तर पर लोकप्रियता दिलाने की बात कही गयी है। संगीत के संदर्भ में कहा जाये तो यह तब

ही संभव है, जबकि हमारा संगीत तथा विश्व के अन्य देशों के संगीत में कुछ आदान प्रदान हो। और आदान प्रदान तभी संभव है जब की दो संगीत पद्धतियों में कुछ समान बातें हो। आज की घडी में भारतीय संगीत के मिश्रण का प्रयोग विश्व के सभी संगीत पद्धतियों के साथ होने लगा है। यही भारतीय संगीत के सार्वभौमिकता का सबसे बड़ा प्रमाण है ऐसा कहने में कोई संदेह नहीं है।

संगीत हर समाज का अपरिहार्य हिस्सा है। विविध व्यवहारों के सन्दर्भों में संगीत की निर्मिती होती है। यह व्यवहार या तो औपचारिक होते है या धार्मिक या प्रेमपूर्ण। इस संगीत का संबंध भाषा, पदन्यास, सांगीतिक ध्वनि भेद तथा सौन्दर्यानुभूति से होता है। संगीत समाज के हर एक व्यक्ति को किसी न किसी रूप में आकर्षित करता ही है। चाहे वह गायन हो वादन, या फिर नृत्य। वैश्विक संगीत के विविध रूपों में प्राप्त सांस्कृतिक विभिन्नताओंको देखते हुए आवश्यकता है की वस्तुनिष्ठता, प्रतिनिधिकता, परिवर्तनशीलता में परिमाणीकरण आदि वैज्ञानिक मानकों के आधार पर इनका विश्लेषण किया जाये तब ही जाकर इस संदर्भ में ठोस निष्कर्ष प्राप्त होना संभव है।

निष्कर्ष

संगीत के तीनों अंगों में गायन विधा शब्द अथवा साहित्य से सम्बंधित होने के कारण उनमें निहित अर्थ पर आस्वादक की आनंदानुभूति निर्भर होती है, जिसके लिए भाषाज्ञान होना आवश्यक है। भारतीय संगीत के विविध प्रकारों में लोक संगीत विधा निश्चित रूप में सार्वभौमिक है ऐसा कहना उचित होगा। अन्य संगीत प्रकारों पर देश काल परिस्थिति अनुसार विविध संस्कार होने के कारण वैश्विक स्तर पर उनमें भी भिन्नता दिखाई देती है। ध्वनि के उच्चारण का स्वरुप, अलंकरण तथा गीत की गति से ही भाषा तथा सांस्कृतिक विभिन्नता के बावजूद भी किसी भी संगीत को समझना संभव है। अतःशब्दहीन संगीत में किसी भी प्रान्त या देश के व्यक्ति को आकर्षित करने की अधिक क्षमता होती है। प्रस्तुत अभ्यास द्वारा यह निष्कर्ष सामने आता है कि यद्यपि हम व्यापक स्वरुप में भारतीय संगीत को सार्वभौमिक कहते है, परन्तु वैज्ञानिक दृष्टिकोण से केवल वादन तथा नृत्य इन प्रकारों का ही सम्पूर्णतः सार्वभौमिक श्रेणी में समावेश होता है। मनुष्य के दैनंदिन व्यवहार के साथ जुड़े होने के कारण लोक गीत किसी भी समाज में अधिक प्रभावशाली होते है और इनमें सर्वसमावेशक तत्व मिलते है जो सार्वभौमिकता पुरस्कार करते हैं।

सन्दर्भ सूची

1. दे शुभंकर, सम्पादक, शिल्पायन संगीत लेख संकलन, शारदा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, 2016
2. डॉ. मिश्रा जया, वर्तमान सामजिक परिवर्तन में संगीत की नई भूमिका, अनुभव पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद, 2012
3. मित्तल अंजली, भारतीय सभयता संस्कृति एवं संगीत, कनिष्क पब्लिशर्स दिल्ली, 2010
4. डॉ. गर्ग लक्ष्मीनारायण निबंध संगीत, संगीत कार्यालय, हाथरस 2003
5. डॉ. पुरी मृदुला, संगीत मीमांसा, सत्यम पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 2007
6. Dr. Kaur Narendra, Music for Life, Kanishka Publishers, Delhi, 2010
7. https:@@nautil.us@issue@99@univer-lity@what–makes–music–univer-l
8. https:@@hi.wikipedia.org/wiki/%E0%A4%B8%E0%A4%BE%E0%A4%AE%E0%A4%BE%E0%A4%9C%E0%A4%BF%E0%A4%95_%E0%A4%A4%E0%A4%A5%E0%A5%8D%E0%A4%AF
9. Dr. IshratJahan, Sociology of Culture and Music, Kanishka Publishers, Delhi, 2011
10. NEP 2020 document issued by Govt. of India.

संगीत का आध्यात्मिक पक्ष

क्षमा मिश्रा

संक्षेप सार-

भारत में षड्दर्शनों के समान ही संगीत-शास्त्र भी ब्रह्मा-संबंधी चिंतन समान का विषय रहा है। मानव-जीवन का चरम लक्ष्य परमात्मा का साक्षात्कार माना गया है। इस लक्ष्य की प्राप्ति का सर्वोत्तम उपाय संगीत माना गया है तथा उसे आध्यात्म के रंग में रंगने का पूरा प्रयास किया गया है। 'सामवेद' के अतिरिक्त ''ब्राह्मण संहिता'', 'गांधर्ववेद', 'प्रतिशाख्य', 'नारदीय शिक्षा', 'छांदोग्य उपनिषद्' आदि इसके प्रमाण हैं। नाट्यशास्त्र, विष्णुधर्मोत्तर पुराण, संगीत रत्नाकर आदि ग्रंथ भी उसी चिंतन-धारा के ग्रंथ हैं। भरत और शारंगदेव दोनों ही शास्त्रकारों ने ''सामवेद'' के स्वरों को शुद्ध स्वर माना है।

सूचक शब्द- *संगीत, अध्यात्म, धर्म, वेद।*

भारतीय कलाकारों ने संगीत को कभी साध्य नहीं माना है। उन्होंने लक्ष्य प्राप्ति के लिए सदैव इसे साधन - रूप में स्वीकार किया है। डा. वासुदेव शरण अग्रवाल ने यर्थाथ ही कहा है- ''जीवनरूपी संगीत ही नादब्रह्म या वाग्देवी की वीणा है, जिसके सप्तक में विश्व के आनन्द की सप्त धाराएँ मूर्त रूप ग्रहण करती हैं। संगीत की सच्ची साधना वही है, जिसके फलस्वरूप मानव का मन उस उच्चतर सूक्ष्म नाद का अनुभव करने योग्य बन सके।'' योगियों ने भी शक्तियों को उर्ध्वगामी बनाने में संगीत को सहायक माना है। योगियों की भाषा में संगीत नाद योग है। मूलाधार स्थित योनि में कुंडलिनी शक्ति की स्थिति मानी गयी है। यह शक्ति जीव की प्राण शक्ति है। कुंडलिनी आठ स्थानों पर आठ टुकड़ों में सर्प की भाँति कुंडली मारे हुए है। इन्हीं के घात-प्रतिघात से जीव सुख-दुःख का अनुभव करता है। इस प्रकार भारतीय शास्त्रीय संगीत भौतिक विज्ञान न होकर, आध्यात्मवाद की संवेदनशीलता है। इसका आनंद भौतिक संसार से थोड़ा बचकर ही आ सकता है। संसार मुख्यतः दो वर्गों में बँटा हुआ दीखता है - पहला बुद्धिजीवी वर्ग और दूसरा श्रमजीवी वर्ग। श्रमजीवियों का आनन्द भौतिक वस्तुओं में निहित है। इसके विपरीत बुद्धिजीवियों की आत्मा की खुराक ''भावनात्मक स्पंदन है। भारतीय शास्त्रीय संगीत स्वयं एक अनूठी कला है - भारतीय संस्कृति इस बात का प्रमाण है। यही भारतीय संगीत की विशेषता है कि उसका उद्गम स्थल भी आध्यात्मिक है। भारतीय संगीत का न केवल उद्गम स्थल अपितु पालन-पोषण भी धार्मिक स्थल एवं आध्यात्मिक संगीतज्ञों के प्रश्रय में हुआ। इतना ही नहीं, वस्तुतः मानव के जन्म से मृत्यु पर्यन्त विभिन्न कार्यक्रम, संस्कारों तथा व्यवहारों में संगीत प्रमुख भूमिका निभाता रहा है।

श्री अरविन्द के अनुसार - ''संगीत मूलतः एक आध्यात्मिक कला है और सदैव धार्मिक भावनाओं तथा आंतरिक जीवन से संबंधित रही है।'' भारतीय संगीत भी इन्हीं अवयवों को अपनाता हुआ अभिष्ट मार्ग की ओर ले जाने का साधन है।

शोध पत्र-

भारतीय संस्कृति, धर्म तथा दर्शन का आधार आध्यात्मिक होने के कारण व्यक्ति ने रोटी की अपेक्षा ईश्वर, यथार्थ की अपेक्षा रहस्य, सत्य की

* संगीत एवं मंच कला संकाय, काशी हिन्दु विश्वविद्यालय वाराणसी, मो. 8299120850, varun.tripathi252@gmail.com

अपेक्षा कल्पना तथा संग्रह की अपेक्षा त्याग को अधिक श्रेयस्कर माना है, जिससे मानव चरित्र अथवा समाज की व्यवस्था मानवीय मूल्यों की ओर झुकने का आदेश निहित है। यद्यपि इस देश में अनेक उतार-चढाव, युद्ध और संघर्ष हुए, जातियां और सम्प्रदाय बने-बिगड़े, लेकिन सांस्कृतिक मूल्य निरन्तर यथावत बने रहे। वैसे तो आध्यात्म शब्द स्वयं में गहन साधना और विस्तृत आस्था का प्रतीक है, परंतु जहाँ तक कला के आध्यात्म का संबंध है इसमें मानवीय मूल्य स्थापित किये जाते हैं आध्यात्म की परिभाषा में विभिन्न विद्वानों ने धर्म, दर्शन तथा विभिन्न नैतिक मूल्यों का समावेश किया है।

आध्यात्म उसे कहते हैं, जो यह विश्वास दिलाता है कि जगत एक शाश्वत है तथा सभी प्राणी इन नियमों को मानने के लिए बाध्य हैं । यद्यपि आध्यात्म में आस्था तथा श्रद्धा रखने के अनेक माध्यम हैं, जो विभिन्न धर्मों, दर्शनों तथा कलाओं द्वारा व्यक्त किये जाते है जिनका मूल तत्व आत्मा, परमात्मा, जीव, जगत तथा प्रकृति है। परंतु यह प्रस्तुत विषय के परिप्रेक्ष्य में कलात्मक मूल्यों का सीधा संबंध दर्शाना ही हमारा मुख्य ध्येय है। वस्तुतः संगीत कला तथा आत्मा एक दूसरे में प्रतिबिम्बित होते हैं, क्योंकि संगीत कला का मुख्य लक्ष्य जन-रंजन ही नहीं, भव-रंजन करना भी है जो सांसारिक क्रियाकलापों से दूर परमात्मा से एकाकार कराता है। संगीत को सतोगुणी कला भी कहा जाता है।

दार्शनिकों ने आध्यात्म शब्द का रहस्यात्मक तथा तर्कपूर्ण विवेचन किया है और उसे आत्मा से संबंधित माना'। आध्यात्म शब्द 'अधि' उपसर्ग तथा आत्मन शब्द से मिलकर बना है; अर्थात् आत्मा से संबंधित विषय अथवा नाद आध्यात्म माने गये हैं। इसमें आत्मा के परमात्मा से मिलन की भी चर्चा हुई है। ''हिंदी साहित्य कोष'' में आध्यात्म का दर्शन से संवंध स्थापित करके आध्यात्म शब्द को 'ओघ' कहा गया है कि- आध्यात्मवाद दर्शन का प्रारम्भिक रूप है। ये सभी अनुभूतियां ईश्वरीय सत्ता 'के स्त्रोत है। अंग्रेजी में इसका पर्यायवाची शब्द ''स्पिरिट'' है। कुप्पुस्वामी तथा हरिहरन ने इसे उद्घाटित किया है -

"The term spiritualis very ambiguous. The thinkers divide the known wordinto body and spirit, spirit representing all that is nonmaterial. Mind being known material further called the spirit and the word spiritual is ment to cover all mental function. In Indian Phylosophy, however the word spiritual not only suggests what is aspiration of the mind for the transcends even the body and the psychethe and aspires for unity with Brahman-the ultimate realty.The goals like self realization liberation reward after death are, the treated as the spiritual goals implaying that they are the things aspiredby soul not the mind associated with the body.

इस प्रकार आध्यात्म एक भौतिकतर अनुभूति है। वास्तविकता यह है कि आध्यात्म भौतिकता से परे की अनुभूति है। चैम्बर्स इनसाइक्लोपीडिया के अनुसार आध्यात्म की विचारधारा दो प्रमुख विश्वासों पर आधारित है–

1. मृत्यु के बाद व्यक्तित्व का किसी न किसी रूप में अस्तित्व रहता है।
2. मानव व्यक्तित्व का यह रूप आत्मा या 'स्पिरिट' किसी न किसी रूप में कुछ विशिष्ट जीवित व्यक्तियों द्वारा अपने पूर्व संबंधियों से सम्पर्क स्थापित करने का प्रयास करता है। जिन विशिष्ट व्यक्तियों के माध्यम से यह सम्पर्क होता है, उन्हे माध्यम या 'मीडियम' कहा जाता है।

विलियम जोन्स ने आध्यात्म की परिभाषा- में धर्म की अपेक्षा नैतिक मूल्यों पर अधिक बल दिया है। उन्हीं के शब्दों में ''आध्यात्मवाद उसे कहते हैं, जो यह विश्वास दिलाता है कि जगत में एक शाश्वत नैतिक व्यवस्था है और जिससे प्रचुर आभा मिलती है।''

हिन्दी शब्दसागर में आध्यात्म की शब्दगत विशद व्याख्या दी गई है। इसके अनुसार आध्यात्म के निम्नलिखित अर्थ हैं–

1. (क) आध्यात्मः ब्रम्ह-विचार, ज्ञानतत्व, आत्मज्ञान, परमात्मा, आत्मा।
   (ख) आध्यात्मः आत्मा से संबंधित है।

2. आध्यात्म दर्शन आत्मा तथा परमात्मा का ज्ञान रखने वाला।
3. आध्यात्म योगः मन को अन्य विषयों की ओर हटाकर परमात्मा की ओर केन्द्रित करना।
4. आध्यात्मः परमात्मा, ईश्वर है।
6. आध्यात्मर रतिः परमात्मा के प्रति अनुरक्त रहने वाला है।
7. आध्यात्मिकः आध्यात्मिक।

संक्षिप्त हिंदी शब्दसागर में आध्यात्म के निम्नलिखित अर्थ हैं-

आध्यात्म - आत्मा का परमात्मा से संबंधित ज्ञान या विवेचन। आत्मा से संबंधित। आत्मा या परमात्मा विषयक।

आध्यात्मवादः - वह सिद्धांत जिसमें ब्रह्म और आत्मा का ज्ञान मुख्य माना जाता है।

इस प्रकार आध्यात्म का मूलभूत ढॉचा बुद्धि और चिंतन की सुदृढ नींव पर खड़ा है। आध्यात्म यानी स्वयं की खोज है। मैं कौन हूँ? का अनुसंधान है। आध्यात्म में पूजा, पथ, प्रार्थना का महत्त्व न होकर ध्यान का महत्त्व है, इसलिए वेदांत, योग आदि ध्यान, और आत्म साक्षात्कार, आत्मज्ञान की बातें करते हैं। ये आपको स्वयं को जानने को कहता है, इसलिए वेदांत, योग आदि के गुरू (आत्मज्ञानी, ब्रह्मज्ञानी) को महत्त्व देते हैं। वेदांत कहता है कि आत्मा ही ब्रह्म (ईश्वर, परमात्मा) है। ''अयं आत्मब्रह्म'' अर्थात् आत्मा एवं ब्रह्म के विज्ञान को आध्यात्म कहा जाता है। आत्मा से संबंधित एक सम्प्रदाय निरपेक्ष विज्ञान है। आध्यात्म परमात्मिक ज्ञान से परिभाषित होता है। आध्यात्म का अर्थ होता है आत्मा के समीप जाना स्वयं को जानना, मैं कौन हूँ? कहाँ से आया हूँ? और कहाँ जाना है? इसी कारण इसका दर्शन से घनिष्ठ संबंध है। दर्शन शब्द का व्युपत्यार्थ-''अनेन दृश्यते इति दर्शनं'' अर्थात जिसके माध्यम से देखा जाये या सुना जाये। क्यों देखा जाये, कैसे देखा जाये, कहा देखा जाये आदि प्रश्न दर्शन के साथ जुड़े हुए हैं। व्यवस्थित रूप में दर्शन इनका विशेष प्रकार से उत्तर देते हैं। आध्यात्म का प्रारम्भ ब्रह्म जिज्ञासा से हुआ है। इस दृश्य जगत की सृष्टि का मूल कारण कौन है, चेतन जीव रूप हम कौन है, यहाँ आकर जीव के क्या कत्तर्व्य हैं, किस ''रहनी'' के माध्यम से जीव जन्म मरण के चक्र से मुक्ति पा सकता है, इन सभी बातों का विवेचन भी दर्शन में होता है। इन सभी विषयों के सम्यक ज्ञान के लिए आत्मिक शुद्धि, साधना, आत्मदर्शन आदि आध्यात्म के अर्न्तगत आते हैं।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि आध्यात्म का क्षेत्र इतना व्यापक है कि आत्मा-परमात्मा से संबंधित जो भी ज्ञान का विषय है सभी का आध्यात्म में समावेश है। इस दृष्टि से वेद, वेदांग, उपनिषद, तंत्रशास्त्र, पुराण आदि सभी आध्यात्म के दायरे में आ जाते हैं। स्वतः उनमें किया गया नाद संबंधि विवेचन भी आध्यात्म का अंग बन जाता है। आध्यात्मवाद का अभिप्राय एक प्रकार के विश्वास के प्रति उस निष्ठा से है जो या तो आत्मा की एक मात्र वास्तविकता स्वीकार करता है या तो वास्तविकता स्वीकार नहीं भी करता है तो आत्मा के पृथक अस्तित्व को मानता है। आध्यात्मवाद भौतिकतावाद का विपरीतार्थक है। जिस समय संपूर्ण सृष्टि सर्वत्र घोर अंधकार ही अंधकार से व्याप्त थी, उसी समय एक अभूतपूर्व चमत्कारी नाद ने संपूर्ण ब्रम्हाण्ड को गुंजायमान कर दिया। यही अनाहत नाद संगीत की उत्पति का मूल उपादान माना जाता है। जीव और ब्रम्ह के संबंध में चिंतन-मनन करना दर्शन का मुख्य विषय है। शंकर के अद्वैत दर्शन में इस संबंध को अधिक स्पष्ट किया गया है। शंकर के मत में जीव का ब्रह्म में लीन होकर एक स्वरूप हो जाना ही मुक्ति या मोक्ष है। उनके अद्वैत दर्शन के सदृश ही संगीत शास्त्र में भी ब्रह्मा विषयक निरूपण भी विस्तार के साथ हुआ है। जीव का अंतिम लक्ष्य भी आवागमन के बंधनों से मुक्त होकर परमात्मा में एकरूपता प्राप्त करना समझा जाता है। संगीत को लक्ष्य की प्राप्ति का सर्वोत्कृष्ट साधन माना गया है, क्योंकि संगीत कला का मुख्य लक्ष्य जन-रंजन ही नहीं अपितु भव-रंजन भी है जो सांसारिक क्रियाकलापों से दूर परमात्मा से एकाकार करता है और उसमे आध्यात्मिकता का पुट देने का प्रयास किया है। परमात्मा से साक्षात्कार करने की अमोघ शक्ति संगीत की स्वर-लहरियों में है।

संगीत को सतोगुणी कला भी कहते हैं। यह भी है कि आध्यात्मिक अवस्था स्थिर नहीं होती,

अर्थात् साधक केवल साधना के समय उसका अनुभव करता है, जब तक वह ध्यान मग्न रहता है, उस अवस्था को प्राप्त होता है, क्योंकि कोई व्यक्ति सदैव उस स्थिति में नहीं रह सकता, ऐसा भी होता है कि अनुभव करने वाला अपने अनुभव की विलक्षणता को पूर्णतया अनुभव ही नहीं करता, उसकी मुद्रा या तन्द्रा टूट जाती है। अतः उसे संसार के भौतिक धरातल पर उतरना पड़ता है। अतः वह पुनः तप या अभ्यास द्वारा बार-'बार उस अनुभव को प्राप्त करने की चेष्ठा करता है। वह उन्हीं धन्य क्षणों को अपने में समाये रहता है। अंत मे उपर्युक्त आध्यात्मिक अनुभूति धार्मिक, नैतिक, कलात्मक तथा रहस्यवादी मूलों द्वारा अनुभव की जाती है। यही मानव का आध्यात्मिक विकास करने में सहायक होती है। वैसे तो आध्यात्म एक गहन साधना और विस्तृत व्याख्या का विषय है, परन्तु जहाँ कला से आध्यात्म का संबंध है इसमें मानवीय मूल्य स्थापित किये जाते हैं। आध्यात्म वह शब्द है जो यह विश्वास दिलाता है कि जगत एक शाश्वत नैतिक अवस्था है तथा सभी प्राणी इन नियमों को मानने के लिए तैयार है। जिनका मूल तत्व आत्मा, परमात्मा, जीव, जगत तथा प्रकृति है। संगीत मानव मन की मलिनताओं को धो डालता है, अर्थात् यदि हम अपनी भूख, प्यास, तथा वासना को खा पी कर तथा भोग कर तृप्त करते हैं, तो भावों की उत्पत्ति तथा मन के उद्‌गार व्यक्त किये जा सकते हैं।

सनातन धर्म में वेदज्ञ ब्राह्मण जिन्हें योग और आध्यात्मिक तत्व का पूर्ण ज्ञान होता था वह स्वाभाविक कंठ स्वर, मधुर स्वभाव वेदगान के अनुकूल कार्य करते थे। वैदिक काल में संगीत आत्म विनोद व कार्यों के शुभ अवसरों पर गाने की परम्परा रही। संगीत की उच्च शिक्षा, मौखिक क्रम, ध्यान साधना द्वारा समस्त भारत में प्रचलित रही। भारतीय कलाकारों ने कभी संगीत को साध्य नहीं माना है। उन्होंने लक्ष्य-प्राप्ति के लिए सदैव इसे साधन रूप में माना है।' 'डा. वासुदेव शरण अग्रवाल'' के अनुसार-''जीवन रूपी संगीत ही नाद ब्रम्ह या वाग्देवी की वीणा है'', जिसके सप्तक से विश्व के आनंद की सप्तक-धाराएं मूर्त रूप ग्रहण करती है। संगीत की उत्पत्ति का आधार व निर्माता ब्रह्म द्वारा माना जाता है। ब्रह्म ने आध्यात्मिक शक्ति द्वारा यह कला शिव भगवान को दी तथा शिवजी से सरस्वती जी को प्राप्त हुई। सरस्वती को ''वीणा पुस्तक धारणी'' कहकर और साहित्य की अधिष्ठात्री माना गया है। इसी आध्यात्मिक ज्ञान द्वारा सरस्वती जी ने नारद को संगीत की शिक्षा प्रदान की। नारद ने स्वर्ग के गंधर्व, किन्नर तथा अप्सराओं को संगीत की शिक्षा प्रदान की। वहाँ से ही भरत, नारद तथा हनुमान आदि ऋषियों ने संगीत कला का प्रचार भू-लोक तक स्थापित किया। आध्यात्मिक आधार पर एक मत यह भी है कि नारद ने अनेक वर्षों तक योग-साधना की तब शिव ने प्रसन्न होकर संगीत कला उन्हें प्रदान की। आध्यात्मिक ज्ञान द्वारा ही पार्वती की शयन-मुद्रा को देखकर शिव ने उनके अंग-प्रत्यंगों के आधार पर ही रूद्र वीणा बनायी और अपने पाँच मुखों द्वारा पाँच रागों की उत्पत्ति की। तत्पश्चात् छठा राग पार्वती के श्रीमुख से उत्पन्न हुआ। शिव के पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण और आकाशोन्मुख होने से क्रमशः भैरव, हिंडौल, मेघ, दीपक और श्रीराग प्रकट हुए। पार्वती से कौशिक राग की उत्पत्ति हुई। शिव प्रदोष स्त्रोत में लिखा है कि जगत की जननी को स्वर्ण-सिंहासन पर बैठाकर प्रदोष के समय शूलपाणि शिव ने नृत्य करने की इच्छा प्रकट की। तब सरस्वती ने वीणा, इन्द्र और ब्रह्म ने करताल बजाना प्रारम्भ किया। लक्ष्मी जी गाने लगी तथा विष्णुजी मृदंग बजाने लगे। गंधर्व, किन्नर तथा अप्सराएं सब उपस्थित हुए। इस कथन से यह सिद्ध होता है कि ईश्वर शक्ति संगीत द्वारा संगीत का प्रादुर्भाव हुआ तथा साथ ही साथ आध्यात्मिक शक्ति को संगीत के साथ जोड़ा गया है।

संगीत की सच्ची साधना वही है जिसके फलस्वरूप मानव का मन उस उच्चतर सूक्ष्म नाद का अनुभव करने योग्य बन सके। योगियों ने भी संगीत को उर्ध्वगामी बनाने में संगीत की सहायता की है। योगियों की भाषा में संगीत नादयोग है। मूलाधार स्थित योनि में कुंडलिनि शक्ति की स्थिति मानी गयी है। यह शक्ति जीव की प्राण शक्ति मानी गयी है। इन्हीं के घात-प्रतिघात से जीव सुख-दुःख का अनुभव करता है। इस प्रकार यौगिक क्रियाओं से भी संगीत के द्वारा परमात्मा से संबंध स्थापित

करना संभव है, किंतु योग से सरल एवं सुगम मार्ग है भक्ति। सूर की भाषा में उद्धव के प्रति विरहविदग्धा गोपियों का उलाहना सर्वविदित है। साधना के लिए भक्ति से बढ़ कर मार्ग और क्या हो ''सकता है; यथा-''मोक्षसाधन सामप्रयोम् भक्तिसाधन गरीयसी''।

अध्यात्म का अर्थ स्वयं के उसी सौन्दर्य से परिचित हो जाना है जो सौंदर्य अपने केवल एक अंश में समक्ष कहीं पुरूष बनकर खिला है तो कहीं आकाश में पल-प्रतिपल बदलते रंगों में छिपा है। भाव यह है कि आत्मा-परमात्मा के स्वरूप को जानना अध्यात्मिकता कहलाता है तथा साथ ही साथ आवश्यक कर्त्तव्य अपने आपके अर्थात् आत्मा के प्रति है। भारतीय संगीत में भी आध्यात्मिकता की अहम् भूमिका है। जैसा की ऊपर कहा गया है कि वेदों का बीज मंत्र ओउम् है जो तीन शब्दों से मिलकर बना है अ, उ, म। यह तीन अक्षर आध्यात्मिकता का आधार है। इन तीन अक्षर में ब्रह्म, विष्णु और महेश का प्रादुर्भाव हुआ हैं। वैदिक संगीत में भारतीय संगीत का मूल स्त्रोत माना जाता है। वैदिक काल में ही लौकिक व शास्त्रीय संगीत का संबंध अध्यात्मिक तत्व के साथ भी रहा है। समस्त कलाएं ओउम् शब्द में निहित है। प्राचीन समय में ऋषि-मुनि आदि, ईश्वर की अराधना आध्यात्मिक शक्ति से सम्पन्न स्वर-साधना द्वारा करते थें। ओउम् स्वर का दीर्घ उच्चारण कर लम्बी ध्वनि द्वारा नाद स्थापित किया जाता था। ब्रह्म के मुख से चार वेद निकले हैं जो ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद व सामवेद। प्राचीन समय में जब देव पूजन होता था मंत्रों में आध्यात्मिक तत्व तथा गायन में साम स्वर द्वारा स्थापित किये जाते थे। भगवान के वास्तविक स्वरूप को संगीत के द्वारा जाना जाता था, क्योंकि संगीत एक ऐसी भावना मानव के अंदर पैदा करती थी जो प्रभु के ध्यान को एक चित करती है। इसमें मानव मोह की भावना को भूल जाता है। इस कारण भक्ति के द्वारा सुगमतापूर्वक आत्मा परमात्मा में लीन हो सकती है। बौद्ध धर्म में भी भक्ति के लिए श्रद्धा और शरणगति पर ध्यान दिया गया है। इस्लाम भी कहता है- ''मिली है इश्क की, अब और क्या मिले, वह चीज़ मिल गयी है कि जिससे खुदा मिले।''

भक्ति के लिए कीर्तन सर्वोत्कृष्ट साधन है। मध्यकाल मे भजन-कीर्तन ही संगीत ऐसी सर्वसुलभ शैली थी, जिसके द्वारा परमात्मा से संबंध स्थापित करना संभव था। संगीत एक कला है। विद्वानों ने कला के लिए अनेक प्रयोजन बताये; यथा-कला जीवन के लिए, सेवा के लिए, आत्मानुभूति के लिए, आनंद के लिए, विनोद के लिए, अर्थ प्राप्ति इत्यादि के लिए होती है। ''काव्यं यश से, अर्थकृते, व्यहवारविदे शिवेतरक्षतये'', इन प्रयोजनों को दृष्टिगत रखते हुए आचार्यो ने कला की भिन्न-भिन्न परिभाषाएँ दी है। कवींद्र रवींद्र के अनुसार-जो सत् है और सुंदर है, वही 'कला' है। कार्य की सिद्धि जैसे भावना पर निर्भर है, वैसे ही कला का परिणाम उसके प्रयोजन पर आधारित है। तुलसी का 'रामचरितमानस' आत्मनेपदी न होता तो क्यों वो कह सकते थे- ''सिया-राममय सब जग जानी'' और प्रज्ञाचक्षु सूर कैसे जान लेते कि उनकी बाँह पकड़ने वाले भगवान श्रीकृष्ण ही थे। जब कला का प्रयोजन आत्मानुभूति होता है, तब आत्मा-रुपी दर्पण पर चढ़ी काम, क्रोध, माया और लोभ की धूल हट जाती है तथा स्फटिक की भाँति निर्मल-निर्विकार परमात्म-स्वरूप के दर्शन होने लगते हैं। क्या आज के संगीतज्ञों ने आत्मावलोकन किया, क्या उन्होंने कभी यह जानने का प्रयत्न किया कि उन्होंने कषायों की धूल हटाने का प्रयत्न किया ? यदि नहीं तो चाहे वो ध्रुवपद गाये या बड़ा ख्याल, मसीतखाँनी बजायें या रजाखाँनी और कथक नाचे या मणिपुरी, परमात्मा से उनका संबंध कैसे स्थापित हो सकता है ? कला का प्रयोजन आत्मानुभूति होता है, वह ओज, प्रसाद, माधुर्य गुण की प्रबल प्रचुरता से दिव्य हो उठती है। इस घटना से यह स्पष्ट है कि श्री गोविन्द स्वामी तथा मियाँ तानसेन की संगीत-शैली समान होते हुए भी दोनों के परिणामों में जो अंतर था, वह प्रयोजन की भिन्नता के कारण था। ध्रुवपद जब तक मंदिरों में गूँजता रहा, उसका प्रयोजन आत्मानुभूति था; किंतु राज-दरबारों में आते ही उसका प्रयोजन यश प्राप्ति हो गया। इस प्रयोजन की उपलब्धि के लिए कलाकारों को बजाय परमात्मा से संबंध स्थापित करनें के काम, क्रोध, माया, लोभ से संबंध स्थापित करना पड़ा।

भारत में संगीत का धर्म एवं अध्यात्म से घनिष्ठ संबंध है। फिर भी दोनों में बहुत अंतर है। आध्यात्म का संबंध जीवन के आन्तरिक पक्ष से है और धर्म का संबंध जीवन के बाह्य पक्ष से है। धर्म हमारे आचरण का आधार है तो अध्यात्म हमारे जीवन का प्रकाश है। धर्म का पालन कर हम जीवन को बहुत सुंदरता से जी सकते हैं, तो आध्यात्म का पालन कर हम ईश्वर को प्राप्त कर सकते हैं और जीवन के वास्तविक लक्ष्य को हासिल करते हुए आवागमन के (बन्धन) चक्कर से मुक्त हो सकते हैं। धर्म अगर ''धारयति इति धर्मः'' है तो अध्यात्म आत्मा का परमात्मा से मिलन है। जब आत्मा सतगुरू की कृपा से परमात्मा को प्राप्त कर लेती है तो वह आवागमन के चक्करों से मुक्त हो जाती है। उसें बार-बार जन्म नहीं लेना पड़ता तो यह आध्यात्म की चरम अवस्था है।

सबसे पहली बात तो यह है कि हम धर्म और आध्यात्म के वास्तविक अर्थ को समझ पायें। धर्म के आधार पर हम हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई, जैन और बौद्ध आदि हो सकते हैं। लेकिन आध्यात्म के आधार पर नहीं। यह बात अलग है कि धर्म के मूल में अध्यात्म नहीं हो सकता लेकिन आध्यात्म के मूल में धर्म अवश्य रहा है। हम संसार के किसी भी प्राणी को देख लें सब में जब हम ईश्वर का रूप देखते हैं तो हम अध्यात्म की ओर अग्रसर होते हैं और अगर हम भिन्नता देखते हैं तो धर्म की ओर देखते है। उमेश जोशी संगीत का प्रयोग धर्म के साथ किये जाने का उत्तर पाषाण काल से ही स्वीकारते हैं,

तथा कहते हैं कि संगीत को धार्मिक रूप देने का गौरव इसी युग को प्राप्त है ये लोग संगीत को ईश्वरीय तोहफा मानते हैं और संगीत के द्वारा हम ईश्वर को प्राप्त कर सकते हैं। इन्हीं के द्वारा हड़प्पा कालीन संस्कृति के संबंध में कहा गया है कि उस समय के लोगों ने संगीत के नैतिक स्तर को ऊपर उठाया उसमें आध्यात्मिक पृष्ठ को उभारा, जिससे उनका संगीत नैतिक रूप से सुंदर और पवित्र हो गया और कोई भी श्रृंगारिक भावना की मुद्रा उसमें नहीं पनपी। ऋग्वेद के श्लोक में वर्णन प्राप्त होता है- ''तमुष्टवाम य इमाजजान'' अर्थात्- हम उस ईश्वर की स्तुति गुणगान करें जिसने सारी सृष्टि उत्पन्न की है।

अमल दास शर्मा भक्ति संगीत नामक पुस्तक में संगीत के संबंध में विचार व्यक्त करते हुए कहते हैं कि-

''जपकोटिगुनं ,ध्यानं, ध्यानकोटिगुणं लयः।
लय कोटिगुनं गानं गानात् परतरं नहि।।''

''ऐसी उच्चतम प्रशंसा और किसी विषय की नहीं की गई है संगीत विद्या सर्वकालीन और सर्वदेश की प्रेम भक्ति तथा सम्मान की विद्या में यह बात सर्वदेश के मनीषीगुण मुक्त कंठ से स्वीकारते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि संगीत का आध्यात्मिक प्रयोग प्रत्येक युग में किया गया है। प्राचीन काल में संगीत जीवन के उच्चतर मूल्यों के साथ जुड़ा हुआ था उसमें निरंतर आनंद का तत्व था और धर्म तथा आध्यात्म का संदेश भी। ऋग्वेद के इस उदाहरण द्वारा यह सिद्ध होता है कि संगीत का धर्म और आध्यात्म से घनिष्ठ संबंध है-

''मर्ता अमर्त्यस्यते भूरि नाम मनामहे''

अर्थात्- मरणशील हम मनुष्य लोग अमर आपके नाम का कीर्तन करते है, आपके नाम कीर्तन का ही पुनः-पुनः अभ्यास करते हैं। ईश्वर के गुण, कर्म और नामों का उच्चारण ही कीर्तन है ईश्वर का प्रत्येक नाम एक मंत्र के समान है स्वर और लय ही मंत्र की शक्ति हैं। इस प्रकार वेदकाल से ही संगीत के आध्यात्मिक प्रयोग के प्रमाण उपलब्ध होने लगते हैं। उमेश जोशी पौराणिक काल में संगीत का आध्यात्मिक प्रयोग किया जाना स्वीकारते हुए कहते हैं कि-''यदि मनुष्य अपनी व्यक्तिगत साधना करे तो वह मोक्ष प्राप्त कर सकता है, पर यह मोक्ष संगीत के अभाव में नहीं मिल सकता हैं, तथा मोक्ष और संगीत को इन्होंने एक ही सूत्र में गूँथ दिया है।'' प्रस्तुत दृष्टांत के आधार पर भी संगीत का आध्यात्मिक प्रयोग किया जाना सिद्ध होता है। भारत में जब जाति भेद और धर्म विनाश के कारण जनता त्रस्त होने लगी तब जनसमूह के मन में चेतना जागृत करने का कार्य हमारे संतों ने संगीत के माध्यम से किया। संगीत की शक्ति अपार है,

संगीत कला के द्वारा जहाँ ईश्वर भक्ति कर मोक्ष प्राप्ति होती है वहाँ शान्ति, प्रेम और सद्भावना का अमर संदेश भी मानव को प्राप्त होता है। संगीत का भक्ति धर्म एवं अध्यात्म में प्रयोग मुस्लिमों द्वारा भी किया जाता रहा है। संगीत का धर्म एवं आध्यात्म के साथ संबंध वेदकाल से ही हमें प्राप्त हो रहा है तथा आज भी संगीत का आध्यात्मिक प्रयोग किया जा रहा है।

श्रीमद्भागवद् गीता के अंतिम श्लोक में कहा गया है कि -

''नामसंकीर्तनं यस्य सर्वपापप्रणाशनम्।
प्रणामों दुःखशमनस्तं नमामि हरिं परम्।।''

अर्थात्- जिस ईश्वर का नाम-कीर्तन पापनाशक है और प्रणाम दुःखनाशक है उस श्रेष्ठ ईश्वर को नमस्कार।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कीर्तन द्वारा भक्तिमय ज्ञान से संतों ने संगीत का प्रयोग ईश्वर अराधना और आध्यात्म के लिए किया। भक्तिमय गान द्वारा संतो ने ऐसे उपदेश दिये जिनसे समाज के प्रत्येक वर्ग को आध्यात्मिक लक्ष्य सहज ही प्राप्त हो सके। इन सब बातों पर विचार करने के बाद यही निष्कर्ष निकलता है कि 'धर्म और आध्यात्म' एक ही सिक्के के दो पहलू हैं, दोनों का लक्ष्य एक ही है। हम जीवन को सही मायनों में तभी जी पाते हैं जब मानवीय भवनाओं से युक्त हैं और मानवीय भावनाओं को जीवन में धारण करने के लिए हमें स्वस्थ दृष्टिकोण की आवश्यकता होती है और वह स्वस्थ दृष्टिकोण पूर्वाग्रह रहित होकर आध्यात्मिक जीवन को अपनाते हुए ग्रहण किया जा सकता है। आध्यात्म और दर्शन की गूढ़ बातों को गीत-संगीत के माध्यम से समाज में प्रचारित-प्रसारित करने में संतों ने संगीत को माध्यम बनाया। इस प्रकार संगीत का आध्यात्मिक प्रयोग किये जाने की पुष्टि होती है। प्रस्तुत विवरण के आधार पर संगीत का आध्यात्मिक प्रयोग मानव द्वारा किया जाना प्रमाणित होता है।

धर्मों का संबंध मनुष्य के मन से है। धर्म कोई भौतिक वस्तु नहीं है, यह तो एक अमूर्त धारणा है, जो मन एवं आत्मा को उन्नत करती है। आध्यात्म भी आत्मिक उत्थान का शास्त्र है। आध्यात्मिक उन्नयन का अर्थ आत्मा की उन्नति ही है। धार्मिक आचरण से भी आत्मा की उन्नति होती है। अत; धर्म एवं आध्यात्म दोनों परस्पर अन्तःसंबंधित है। जिस प्रकार धर्म में चित्त की एकाग्रता के लिए संगीत का आश्रय लिया जाता है, उसी प्रकार आध्यात्मिक उत्थान के लिए भी संगीत एक स्वाभाविक सोपान का कार्य करता है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि संगीत के द्वारा परमात्मा से संबंध स्थापित किया जा सकता है, बशर्ते कला का प्रयोजन आत्मानुभूति हो। संगीत में असीम सामर्थ्य है। चित्तवृत्तियों का निरोध करके मन को पवित्रमय बनाने की भी क्षमता उसमें है। संगीत के द्वारा न केवल परमात्मा से संबंध स्थापित करते हैं, वरन् परमात्मा स्वरूप को प्राप्त किया जा सकता है। 'कल्पसूत्र' में लिखा है कि प्रथम तीर्थकार भगवान ऋषभदेव के निर्वाण के समय अष्टापद पर्वत में मंदोदरी ने नृत्य किया और रावण ने वीणा बजाई। बजाते समय एक तार टूट जाने पर उसने अपनी जंघा से ताँत निकालकर उसे तार के स्थान पर कस लिया, किंतु वादन क्रम को विश्रृंखल नहीं होने दिया।

इस प्रकार प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक आध्यात्मिक तत्व की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। आध्यात्मिकता में संगीत द्वारा ही मन को एकाग्रचित किया जाता है, क्योंकि स्वर-समाधि की ही अवस्था में ही संगीत की वास्तविक छवि का अनुभव होता है। साधना में ही तत्कालीन होकर भावनाएं केंद्रित होती हैं। आध्यात्मिक ज्ञान के द्वारा ही अनुशासन पालन की प्रेरणा मिलती है। आध्यात्मिकता के द्वारा ही राष्ट्रीय जागृति का विकास होता है तथा संस्कृति का विकास होता है, क्योंकि भारतीय संस्कृति की परंपराओं से अवगत करना तथा संस्कृति की मूल धरोहर को बचाना आध्यात्मिक तत्व द्वारा माना गया है। आध्यात्मिक संगीत द्वारा शारीरिक विकास तथा मानसिक दुर्बलता दूर होती है। आध्यात्म द्वारा ही संगीत का संबंध ईश्वरीय शक्ति परमात्मा से जोड़ा गया है। संगीत व अध्यात्म द्वारा ही विश्वबंधुता तथा भावना का विकास होता है।

संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि भारतीय संगीत में आध्यात्मिक तत्व प्राचीनकाल से आधुनिक काल तक विद्यमान रहा। संगीत का वास्तविक संबंध व आधार आध्यात्मिक तत्व को ही माना गया है। स्वर-साधना, आध्यात्म, भक्ति आदि कार्य आध्यात्मिक व संगीत के प्रमुख केन्द्र बिन्दु माने गये हैं।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची-

1. निबंध संगीत/गर्ग लक्ष्मी नारायण/संगीत कार्यालय हाथरस तृतीय संस्करण 2003/पृ.सं. 305,306,307, 309,310
2. भारतीय संगीत का इतिहास (आध्यात्मिक एवं दार्शनिक)/शर्मा डा. सुनीता/संजय प्रकाशन, दिल्ली, 1 जनवरी 1996/पृ. सं. 19,20,21
3. धार्मिक परंपराएं एवं हिन्दुस्तानी संगीत/सचदेव रेनू/ प्रथम संस्करण राधा पब्लिकेशन्स नयी दिल्ली, 110002, 1 जनवरी 1999/पृ0सं0 46,47,48
4. संगीत का योगदान मानव जीवन के विकास में/शर्मा डा. उमाशंकर/ईस्टर्न बुक लिंकर्स दिल्ली, 110002/ पृ.सं. 137,138,170,171,172, 175,177,178

ऑनलाइन प्रणाली द्वारा संगीत शिक्षण में चुनौती एवं सम्भावनाएं : नई शिक्षा पद्धति के सन्दर्भ में

दीपक सिंह

संगीत पद्धति की प्रस्तुति, विषयवस्तु तथा शिक्षण समय के अनुसार परिवर्तन होता रहा है। वैदिक काल में संगीत की विषयवस्तु धार्मिक परिप्रेक्ष्य की थी। शनैः शनैः समय के साथ संगीत में बदलाव होता चला गया। मध्ययुग में संगीत दरबारों में पहुँच गया। यहाँ संगीत की विषयवस्तु में श्रृंगार रस तथा राजा की प्रशंसा को प्रधानता दी गयी। संगीताचार्यों को राजा के आदेश के अनुपालन में ऐसे कार्य करने पड़े जिससे संगीत तथा संगीत विद्वानों की प्रतिष्ठा का ह्रास हुआ। धीरे-धीरे संगीत समाज के संरक्षण में आया। इसी प्रकार संगीत के शिक्षण की शैली भी समय के साथ बदलती रही है। मध्यकाल में घरानों ने संगीत के शिक्षण में अहम भूमिका निभाई। यहाँ से पंडित विष्णु नारायण भातखंडे जी और पंडित विष्णु दिगम्बर पलुस्कर जी के प्रयासों से संगीत को शिक्षण संस्थानों में पहुंचाया गया।

ऑनलाइन पद्धति द्वारा संचार के माध्यम से संगीत के शिक्षण के क्षेत्र में आये हुए बदलाव तथा इस क्षेत्र में सम्भावना तथा चुनौतियों पर नई शिक्षा नीति के सन्दर्भ में चर्चा करना शोध पत्र लेखन का मुख्य उद्देश्य है। इस शोध कार्य को करने के लिए पुस्तकों, पत्र-पत्रिकाओं तथा इंटरनेट के माध्यम से तथ्य सामग्री प्राप्त करने का प्रयास किया है। प्रस्तुत शोध पत्र किसी भी पत्रिका अथवा पुस्तक में पूर्ण अथवा आंशिक रूप से न तो प्रकाशित किया गया है और न ही कहीं प्रकाशन के लिए भेजा गया है।

सूचक शब्द *:- प्रस्तुति, कौशल, गायन, सम्मानित, धार्मिक, यज्ञादि*

विषय प्रवेश :-

मानव समाज के उत्थान के लिए उसका शिक्षित होना अतिआवश्यक है। 'शिक्षा मानव विकास का मूल साधन है। शिक्षा द्वारा मनुष्य की जन्मजात शक्तियों का विकास उसके ज्ञान एवं कला कौशल में वृद्धि तथा व्यवहार में परिवर्तन किया जाता है और सभ्य सुसंस्कृत तथा योग्य नागरिक बनाया जाता है।' भारतीय शास्त्रीय संगीत के शिक्षण तथा मंच प्रस्तुतियों के विविध स्वरूप समय समय पर सामने आए हैं। शास्त्रीय संगीत वैदिक काल में पूजनीय परिवेश में था। इस समय संगीत को भगवत प्राप्ति का माध्यम माना जाता था। इस कारण संगीत का स्थान मंदिरों में था तथा संगीत की साधना और क्रियात्मकता सात्विक थी। यज्ञों के समय वैदिक मन्त्रों का गायन, साम गायन इत्यादि संगीत की विषय वस्तु हुआ करता था। इस समय नाराशंसी, गाथा गायन इत्यादि लोक संगीत का उल्लेख मिलता है। इस समय संगीत की प्रस्तुति सामान्यतः यज्ञादि अवसरों पर की जाती थी। वैदिक काल में साम गायन के बाद संगीत में जब जाति गायन का समय आया। इस समय तक संगीत की मंच प्रस्तुति आरम्भ हो गई थी। इन मंच प्रस्तुतियों में भी संगीत की धार्मिक सुचिता विद्यमान थी। वैदिक काल की अपेक्षा इस समय के संगीत के स्वरूप में परिवर्तन हो गया था। इस समय संगीत यज्ञ की वेदियों के आस-पास से निकल कर समाज में मंच प्रस्तुति तक पहुँच गया था। मंच तक पहुँचने के साथ ही मंदिरों में भी संगीत ने अपना उल्लेखनीय स्थान बनाए

शोधार्थी, संगीत एवं ललित कला संकाय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, शोध सार

रखा। आचार्य भरत के समय के संगीत की मंचीय प्रस्तुति नाट्य के साथ होती थी। संगीत, नाट्य का अभिन्न अंग हुआ करता था, शायद इसी कारण भरत के नाट्यशास्त्र में संगीत ने सम्मानित स्थान प्राप्त किया। स्वतंत्र रूप से संगीत की प्रस्तुति का प्रावधान नहीं था। इस समय गायन, वादन तथा नृत्य तीनों का नाट्य में अंतर्भाव था। इस काल के पश्चात् शनैः शनैः संगीत की स्वतंत्र रूप में प्रस्तुतियां आरम्भ हुईं। वर्तमान समय में संगीत में गायन के साथ-साथ वादन तथा नृत्य भी स्वतंत्र रूप से प्रस्तुत किये जा रहे हैं। समय के साथ ही संगीत के क्रियात्मकता तथा शिक्षण में आमूल चूल परिवर्तन हुआ है। 'हमें यह समझना होगा कि समय सदैव से परिवर्तनशील रहा है। इसलिए कोई भी परम्परा जो प्राचीन काल में थी, उसका स्वरूप आज भी वैसा का वैसा ही हो यह अनिवार्य नहीं हैं क्योंकि लोक रूचि के अनुसार परम्परा तथा मूल्य बदलते रहते हैं किन्तु हमारी जड़ें वहीं रहती हैं।' गायन की चर्चा की जाए तो पुरातन समय में साम गायन तत्पश्चात् जाति गायन का चलन हुआ। जाति गायन के बाद राग के गायन की व्यवस्था का प्रादुर्भाव हुआ। राग गायन में पहले प्रबंध फिर ध्रुपद, धमार इत्यादि का प्रचलन था। किन्तु समय परिवर्तन के साथ ध्रुपद, धमार का स्थान ख्याल ने ले लिया। ख्याल के साथ-साथ वर्तमान समय में ठुमरी, टप्पा इत्यादि शैलियों का गायन किया जा रहा है तथा श्रोता वर्ग द्वारा इन शैलियों को सहर्ष स्वीकृति भी प्रदान की जा रही है। गायन की शैलियों के साथ-साथ संगीत के शिक्षण की शैली में भी परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है। इतिहास पर दृष्टिपात करते हैं तो पाते हैं कि शिक्षण की व्यवस्था गुरुकुल में हुआ करती थी। इस समय विद्यार्थी गुरुकुल में जाते थे तथा विद्या अध्ययन के समय तक घर, परिवार, समाज इत्यादि से लगभग दूर हो जाते थे। विद्या के अध्ययन काल में उनके रहने तथा भोजन का प्रबंध गुरुकुल में ही होता था। विद्या अध्ययन के पश्चात् ये वापस अपने घर परिवार में जाते थे। समय के परिवर्तन के साथ ये व्यवस्था भी बदल गई। मध्य काल में संगीत के शिक्षण की व्यवस्था घराना पद्धति के अंतर्गत होने लगी। 'परम्परा, घराना और गायकी यही तीन ऐसी सीढियाँ और तीन विश्राम स्थल हैं, जिन्हें पार करके ही हम संगीत के पर्वत शिखर पर पहुँचते हैं। जहाँ से हम हिन्दुस्तानी संगीत के समूचे दृश्य को देख सकते हैं और जहाँ से हमें संगीत की पूर्ण दृष्टि मिल जाती है। देखा जाए तो इन तीनों का समन्वय एक ही शब्द घराना में निहित है।' घराने की शैली को सिखाने के लिए नये शिष्य को लेने अथवा ना लेने का पूर्ण अधिकार गुरु का होता था। घराने की शिक्षा ग्रहण करते हुए शिष्य को किसी अन्य कलाकार का गायन नहीं सुनना होता था। केवल अपने गुरु से सीखना तथा उनका अनुसरण करना होता था। इस प्रकार घराने अपने समय में संगीत के शिक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाए। तकनीकी के आगमन के पश्चात् ध्वनि मुद्रिका की उपलब्धता ने संगीत के घराना पद्धति को बहुत हानि पहुंचाया। क्योंकि घराने में अन्य कलाकारों का संगीत सुनना वर्जित था इस नियम का मुख्य कारण था कि जब विद्यार्थी अन्य कलाकार को सुनेगा तो उसके संगीत में किसी एक घराने अथवा गुरु के संगीत के साथ अन्य कलाकार का संगीत मिश्रित हो जाएगा। इस प्रकार जो कलाकार तैयार होगा; वह घराने की सुचिता को अपनी गायकी में नहीं रख पाएगा। किन्तु तकनीकी साधन की उपलब्धता ने घरानों के इस नियम को तोड़ दिया। 'आज स्वर का लगाव, राग-सौन्दर्य तथा राग-विस्तार श्रोता की रूचि के अनुरूप रखने का प्रयत्न अधिक हो रहा है तथा घरानों का बंधन ना होने के कारण स्वतंत्र प्रतिभा का प्रयोग बढ़ रहा है।' लगभग इसी समय पंडित विष्णु दिगंबर पलुस्कर जी तथा पंडित विष्णु नारायण भातखंडे जी ने संगीत के प्रचार एवं प्रसार तथा अध्ययन एवं अध्यापन के लिए अत्यंत सराहनीय कार्य किया। विष्णु द्वय के प्रयासों से संगीत की शिक्षा को सर्व सुलभ बनाने तथा इसके अध्ययन एवं अध्यापन के लिए शिक्षण संस्थानों की स्थापना की गई। संगीत शिक्षण के लिए उस काल में स्थापित संस्थानों में प्रमुख हैं- पलुष्कर जी द्वारा स्थापित गांधर्व मंडल महविद्यालय लाहौर तथा बम्बई, भातखंडे जी के द्वारा स्थापित मैरिस कॉलेज (वर्तमान भातखंडे संगीत विद्यापीठ, लखनऊ), माधव संगीत विद्यालय, ग्वालियर एवं संगीत महाविद्यालय, बड़ौदा इत्यादि। अनेक पूर्व

स्थापित शिक्षण संस्थानों में संगीत को एक विषय के रूप में मान्यता दी गई। 'आज की व्यवस्था में संगीत शिक्षण केवल घरानों तक ही सीमित नहीं रहा है। आज संगीत कला को सभी वर्गों के व्यक्ति सिखने के लिए उत्सुक एवं लालायित हैं। यह सुविधा उन्हें संगीत के प्रचार प्रसार हेतु संचालित शिक्षण संस्थाओं द्वारा सुलभ हो रही है।' संस्थानों में संगीत के पहुँचने से सरकार की शिक्षा नीतियों का भी प्रभाव संगीत पर पड़ना स्वाभाविक ही है। संगीत के शिक्षण को एक पद्धति और प्रभावित कर रही है वह हैं ऑनलाइन शिक्षण पद्धति। इस शोध पत्र में ऑनलाइन शिक्षण पद्धति तथा इस की चुनौतियां एवं सम्भावनाओं के सम्बन्ध में चर्चा की जायेगी।

वर्तमान समय में संगीत तथा संगीतेत्तर विषय के शिक्षण में दूरस्थ शिक्षण व्यवस्था ने चमत्कारिक ढंग से प्रवेश किया है। केवल शिक्षण ही नहीं अपितु अनेक बैठक, संगोष्ठी, प्रस्तुति इत्यादि ऑनलाइन ही हो रहा है। ऑनलाइन प्रक्रिया ने लगभग सभी क्षेत्र में अपनी उपस्थिति की अनुभूति कराई है। इस का श्रेय जाता है वैश्विक महामारी 'कोरोना' को। कोरोना के संक्रमण काल में सरकार के निर्देशानुसार सम्पूर्ण लॉकडाउन हुआ। इस दौरान सभी तरह की गतिविधियाँ पूर्णतः अवरुद्ध हो गयीं थीं। ऐसे समय में ऑनलाइन पद्धति विकल्प के रूप में सामने आई। फलस्वरूप बड़े स्तर पर इस पद्धति का उपयोग प्रारम्भ हो गया। शिक्षण तथा प्रस्तुतियां जो की पूर्णतः अवरुद्ध थीं तथा शीघ्र ही अपने पूर्व रूप में आने की सम्भावना भीं कम ही थी, ऐसे समय में ऑनलाइन पद्धति, मंचीय प्रस्तुति तथा शिक्षण का माध्यम बन कर अत्यंत सराहनीय भूमिका प्रस्तुत की है। नई शिक्षा नीति में भी ऑनलाइन पद्धति का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। नई शिक्षा नीति 2020 में भारत सरकार द्वारा ऑनलाइन अध्ययन तथा अध्यापन के लिए वैकल्पिक व्यवस्था की गयी है। ऑनलाइन शिक्षण में सकारात्मक पक्ष दृष्टिगत होते हैं। इस पद्धति में विद्यार्थी अपने रूचि के अध्यापक से पढ़ सकता है। इस पद्धति में यातायात में लगने वाले समय, श्रम तथा आर्थिक व्यय को बचाया है। ऑनलाइन पद्धति से अध्ययन अध्यापन से बालकों तथा स्त्रियों के लिए शिक्षा का सुरक्षित वातावरण उपलब्ध हो सकेगा। संगीत के सन्दर्भ में दृष्टिपात किया जाए तो सामान्यतः देखा जाता है कि कोई विद्यार्थी किसी बड़े कलाकार से संगीत सीखने की लालसा रखता है किन्तु अभीष्ट कलाकार किसी महंगे शहर में रहते हैं ऐसे में सामान्य अथवा गरीब परिवार से आने वाले विद्यार्थियों के लिए उस शहर में रहने के लिए आर्थिक व्यय को वहन कर पाना सम्भव नहीं होता है अतः विद्यार्थी लालसा को मन में ही दबा लिया करते हैं। ऑनलाइन पद्धति में किसी भी गुरु से उनकी सहमति पर विद्यार्थी अपने घर रह कर भी संगीत की शिक्षा ग्रहण कर सकेगा। इस पद्धति का दूसरा तथा नकारात्मक पक्ष भी हैं। संगीत विद्या गुरुमुखी विद्या है। इस के अध्ययन तथा अध्यापन के लिए प्राचीन गुरुओं ने कहा कि संगीत में सीना-ब-सीना तालीम होती है अर्थात् गुरु तथा शिष्य का आमने-सामने होना आवश्यक है। ऑनलाइन माध्यम में नेटवर्क की कमजोरी के कारण संगीत की सूक्ष्मता पर चर्चा करना तथा उसे प्रयोग कर के दिखा पाना संभव नहीं हो पाता है। ऑनलाइन शिक्षण के लिए मोबाईल फोन, कम्प्यूटर इत्यादि साधन के साथ नेटवर्क की स्थिति अच्छी होनी चाहिए। भारत के सुदूर ग्रामीण क्षेत्र में ऐसी सुविधाओं का अभाव है। विद्यार्थियों के पास आर्थिक समस्या के कारण इन महंगी तकनीकी संसाधनों की उपलब्धता भी नहीं है। ऐसे में ऑनलाइन शिक्षण को सर्वसुलभ बनाना अत्यंत कठिन है। कक्षा के ऑनलाइन हो जाने पर जो विद्यार्थी इस व्यवस्था तक पहुँच जाते हैं वे भी अपना चित्त एकाग्र कर के ही शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं ऐसा कहना कठिन है। सामान्यतः यदि यूट्यूब पर कक्षा की वीडियो है तो विद्यार्थी कक्षा की वीडियो देखते देखते अन्य मनोरंजक दृश्य की ओर खिंच जाता है जो कि इस पद्धति के नकारत्मक पक्ष को दर्शाता है।

ऑनलाइन कक्षा के लिए अनेक एप्लीकेशन उपलब्ध हैं। जिनमें प्रमुख हैं—फेसबुक (Facebook), इन्स्टाग्राम (Instagram), यूट्यूब (Youtube), स्काईप (Skype), गूगलमीट (Googlemeet), गूगल ड्यूओ (Google Duo), झूम (Zoom), वोट्सएप (Whatsapp) इत्यादि। संचार के ये माध्यम गुरु तथा शिष्य के मध्य सेतु का कार्य करता है। भारत

सरकार ने ऑनलाइन पठन-पाठन को प्रोत्साहित करने तथा इसे सुगम बनाने के लिए 'स्वयं' नाम की योजना को प्रारम्भ किया है। 9 जुलाई 2017 को माननीय राष्ट्रपति जी द्वारा इस योजना का शुभारम्भ किया गया। इस योजना का मुख्य उद्देश्य विद्यार्थियों को निश्चित पाठ्यक्रम अनुसार निःशुल्क ऑनलाइन शिक्षण प्रदान करना है।

भारत सरकार द्वारा नई शिक्षा नीति 2020 की घोषणा की गई है। इस नीति की ओर संगीत जगत बहुत आशा भरी नजरों से देख रहा है। संगीत के शिक्षण में तथा इस के लुप्त होते भाग के संचयन में नई शिक्षा नीति 2020 में सराहनीय प्रावधान किये गये हैं। सामान्यतः संगीत में रूचि रखने वाले विद्यार्थियो के विश्वविद्यालयी व्यवस्था में प्रवेश के पूर्व संगीत के प्राथमिक तथा उचित शिक्षण का सर्वथा अभाव था। अधिकतर संस्थान ऐसे थे जिनके पास संगीत के अध्यापक ही नहीं थे। इस का प्रभाव विश्वविद्यालयी व्यवस्था की गुणवत्ता पर पड़ता है। नई शिक्षा नीति में संगीत के शिक्षण के लिए प्राथमिक स्तर से व्यवस्था की गयी है। प्राथमिक स्तर पर सम्बन्धित क्षेत्र के लोकगीतों को भी वहां के विद्यालयों में विषय के रूप में पाठ्यक्रम में शामिल करने की व्यवस्था की गयी है। नई शिक्षा नीति में विद्यार्थी संगीत को अपने भविष्य उन्मुखी विषय के रूप में चुन सकेंगे। विज्ञान, वाणिज्य तथा चिकित्सा के विद्यार्थी भी संगीत को मुख्य विषय के रूप में चुन सकेंगे। नई शिक्षा नीति में शिक्षार्थियों के पाठ्यक्रम में प्रवेश के पश्चात् विषय को बदलने की सुविधा प्रदान की गयी है। संगीत की उच्च शिक्षा में स्नातक तथा परास्नातक के लिए दो तरह की व्यवस्थाएं की गयी हैं यदि शिक्षार्थी शोध करना चाहता है तब उसके लिए स्नातक चार वर्षों का तथा परास्नातक एक वर्ष का होगा। शिक्षार्थी को शोध नहीं करना है तब स्नातक तीन वर्षों का तथा परास्नातक दो वर्षों का होगा। शोध करने के लिए M-Phil की आवश्यकता नहीं होगी। M-Phil के पाठ्यक्रम को समाप्त कर दिया गया है। संगीत विषय में चार वर्षों का B-Ed- आवश्यक बना दिया गया है। इस प्रकार हम देखते हैं की नई शिक्षा नीति में संगीत के लिए अपार सम्भावनाएं दृष्टिगोचर होती हैं।

निष्कर्ष

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि संगीत के शिक्षण पद्धति में समय के साथ बदलाव होने के क्रम में वर्तमान समय एक बड़े बदलाव का समय चल रहा है। महामारी के संक्रमण काल में इस नये बदलाव की आवश्यकता का अनुभव किया गया। यह बदलाव ऑनलाइन शिक्षण पद्धति के रूप में हुआ। यद्यपि इस पद्धति में सांगीतिक दृष्टि से अनेक दोष दृष्टिगोचर होते हैं तथापि इस पद्धति को स्वीकार किया जा रहा है। ये पद्धति अनेक सम्भावनाओं को भी जन्म देती है। इस के सकारात्मक तथा नकारात्मक दोनों पहलुओं पर विचार किया गया है। भारत की नई शिक्षा नीति 2020 में ऑनलाइन शिक्षण पद्धति को एक वैकल्पिक रूप में समाहित किया गया है। विश्वविद्यालय की व्यवस्था की ऐसी अभिलाषा है कि कक्षा को ऑफ़लाइन पद्धति के साथ ही ऑनलाइन पद्धति में भी संचालित किया जाए। इस प्रकार शिक्षण पद्धति में हो रहे इस बड़े बदलाव की वर्तमान पीढ़ी साक्षी बन रही है।

उद्देश्य

आशा है कि इस शोध के माध्यम से भारतीय संगीत के ऑनलाइन शिक्षण में चुनौतियों तथा सम्भावनाओं को नई शिक्षा नीति 2020 के सन्दर्भ में, लिखित रूप में प्रस्तुत किया जा सकेगा जो की भविष्य में किसी शोधार्थियों अथवा विद्यार्थियों के लिए एक प्रमाणित एवं लिखित उपयोगी तथ्य सामग्री के रूप में उपलब्ध हो सकेगी।

अवध क्षेत्र का लोक गीत : एक अध्ययन

डॉ. ज्योति विश्वकर्मा,

शोध सार -

किसी देश अथवा समाज का सांस्कृतिक उत्थान सम्बंधित वर्ग के सृजनात्मकता तथा संवर्धन का परिचायक होता है। भारत जिसे अनेकता में एकता की संस्कृति के लिए जाना जाता है, में लोक संस्कृति का सृजन तथा संचयन उत्कृष्ट स्तर पर हुआ है। लोक अर्थात जन सामान्य द्वारा अपनी संस्कृति तथा संस्कारों के निर्वहन के सन्दर्भ में एक उत्साहपूर्ण सजगता देखी जा सकती है। प्रस्तुत शोध लेख में भारत के लोक परम्परा के दृष्टि से अत्यंत उपजाऊ क्षेत्र पूर्वी उत्तर प्रदेश के अवध क्षेत्र के लोक गीतों पर प्रकाश डाला गया है।

सूचक शब्द- *लोकगीत, लोकसंगीत, ग्रामीण अंचल, अवधि क्षेत्र, अवधि भाषा, भारतीय संस्कृति-*

प्रस्तावना :-

प्रस्तुत शोध पत्र में उत्तर प्रदेश के पूर्वी अंचल में अवस्थित अवध क्षेत्र के लोक संगीत के विषय में चर्चा की जाएगी। सम्बन्धित क्षेत्र के लोक गीतों को छः वर्गों में वर्गीकृत कर के अध्ययन करने का प्रयास किया गया है।

उद्देश्य :-

मुझे आशा है की इस शोध पत्र के माध्यम से अवध क्षेत्र के लोक गीतों के विविध स्वरूपों को एक अध्ययन के रूप में प्रस्तुत कर सकूँगी, जो कि भविष्य में इस विषय से सम्बन्धित एक उपयोगी तथ्य सामग्री के रूप में उपलब्ध हो सकेगी।

विषय प्रवेश-

लोक के केंद्र में मनुष्य है। लोक में सभी कृतियों का सृजनकर्ता मनुष्य है। स्त्री तथा पुरुष दोनों लोक की धूरी के दो पहिये हैं। इन दोनों से ही लोक का निर्माण होता है। साधारण जनता के संबोधन के लिए 'लोक' शब्द अभिहित है। 'लोक साधारण जन समाज है, जिसमें भूभाग पर फैले हुए समस्त प्रकार के मानव सम्मिलित हैं। यह शब्द वर्ग भेद रहित व्यापक एवं प्राचीन परम्पराओं की श्रेष्ठ राशि सहित अर्वाचीन सभ्यता संस्कृति के कल्याणमय विकास का द्योतक है। भारतीय समाज में नागरिक एवं ग्रामीण दो भिन्न संस्कृतियों का प्रायः उल्लेख किया जाता है, किन्तु लोक दोनों ही संस्कृतियों में विद्यमान है।' वैदिकी साहित्यों में भी लोक, जनसामान्य का अभिधान है। 'उपनिषदों में लोक शब्द का प्रयोग एकाधिक स्थानों पर देखने को मिलता है। ऋग्वेद में लोक के लिए 'जन' शब्द का प्रयोग दृष्टिगोचर होता हैं।' लोक का विस्तार क्षेत्र अत्यंत वृहद है। जन्म के बाद मानव अपनी आंख खोलता है तथा अपनी दृष्टि से जो भी कुछ देख पाता है वह सब लोक है। जनसामान्य की मान्यता है कि प्राकृतिक सम्पदा यथा- जल से भरे हुए नदी-तालाब, हरित रंगों से सराबोर वृक्षों से आच्छादित वन-उपवन, उन्मुक्त बहती हुई शीतल पवन इत्यादि। जगत के लिए ईश्वर का वरदान है। लोक ने इन सभी प्राकृतिक संपदाओं का उपयोग किया है। इन सम्पदाओं के उपयोग के साथ ही सदैव सावधानी रखी है कि इसके उपभोग से बचा जाए। लोक अर्थात जनसामान्य

संगीत गायन विभाग, जगद्गुरु रामभद्राचार्य दिव्यांग विश्वविद्यालय, चित्रकूट, उ.प्र.

ने प्रकृति से जितना लिया उसका दुगुना उसे वापस किया। जो भी प्रकृति से लिया उसे उपकृत तथा वंदन भाव से ग्रहण किया। अपनी परम्पराओं, संस्कारों, पूजा-पर्वों, में प्रकृति को सहज समाहित किया है।

वैदिक काल में वेदों की रचना से पूर्व लोक ही था। वेदों को लोक का परिष्कृत स्वरूप कहा जा सकता है। लोक को शास्त्रीय कसौटियों में रख कर वेद अथवा शास्त्रों की रचना हुई।

लोक का अभिप्राय जनसामान्य से है अतः लोकगीत जनसामान्य का गीत है। 'लोक संगीत का अर्थ जन साधारण, विशेष कर ग्रामीण अंचल में प्रचलित संगीत से है।' लोकगीत में जनसामान्य के मनोभावों का अंतर्भाव होता है। 'लोक गीत को जन सामान्य की अभिव्यक्ति मानी जाती है। अतः इन गीतों में समाज के सुख-दुःख, आशा-निराशा, राग-बिराग, ईर्ष्या-द्वेष आदि मनोभावों का तथा रीति-रिवाज़, आचार-विचार, रहन-सहन, विश्वास, मान्यताओं एवं परम्पराओं आदि विभिन्न पहलुओं का सजीव चित्रण प्राप्त होता है।' लोक गीत में शास्त्रीयता का कोई विशेष बंधन नहीं होता है। जन सामान्य के अंतरमन में उठने वाले भावों का स्वर विलास ही लोक संगीत का रूप ग्रहण करता है। जनसामान्य ने लोक संगीत को विशेष स्थान पर प्रतिष्ठित किया है। शरीर में धमनियों के विस्तार की ही भाँति जनसामान्य में लोक संगीत का विस्तार है। लोक समाज में लोकसंगीत की उपस्थिति लगभग सभी शुभाशुभ अवसरों पर दृष्टिगोचर होती है। लोक संगीत में एक उत्साह तथा उमंग दिखता है। सामान्य मानवी विशेष कर ग्रामीण अंचल में लोक गीतों का गायन अनेक अवसरों पर किया जाता है।

प्राचीन काल के लोक गीतों के लिखित प्रमाण की उपलब्धता लगभग नगण्य है। लोक गीत ने एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी, दूसरी से तीसरी तथा इसी क्रम में आगे बढ़ते हुए अपने अस्तित्व को सुरक्षित रखा है। डॉ. अरविन्द कुमार शर्मा जी के अनुसार– 'लोक कवि गीतों का सृजन करते समय अपनी लेखनी से अधिक अपने कंठ और जीभ को प्रयुक्त करते है। फलस्वरूप मौखिक प्रक्रिया से ही गीत लोकप्रिय हो जाते हैं। ज्यों ही यह गीत दो-चार पीढ़ी तक आगे बढ़ते हैं, इसके मूल लेखक का नाम स्वतः ही धूमिल हो जाता है।' आज भी अधिकांश लोक गीतों के रचनाकार का नाम सभी के संज्ञान में नहीं है।

अवध क्षेत्र में व्यवहार में आने के कारण इस भाषा को अवधी कहा गया। प्रदेश के पूर्वी भाग इसके प्रचार से इसे 'पूर्वी हिंदी' नाम से भी संबोधित किया जाता है। अवधी भाषा को 'कौसली' नाम से भी अभिहित किया जाता है।

अवधी लोक गीतों के अध्ययन के लिए इसे मुख्यतः छः वर्गों में वर्गीकृत करते हैं। ये वर्गीकरण इस प्रकार हैं -

1. संस्कार सम्बन्धी गीत
2. ऋतु सम्बन्धी गीत
3. व्रत तथा देवता सम्बन्धी गीत
4. जाति सम्बन्धी गीत
5. श्रम सम्बन्धी गीत
6. अन्य गीत

1. संस्कार सम्बन्धी गीत

सनातन धर्म में बालक के गर्भ में आगमन से मनुष्य की मृत्यु तक सोलह संस्कारों का चलन है। विभिन्न प्राचीन सनातन ग्रंथों के अनुसार इन संस्कारों के बिना मानव का जीवन अधूरा है। इन संस्कारों के अवसर पर जिन गीतों का गायन किया जाता है उन गीतों का अभिधान 'संस्कार गीत' है। विभिन्न संस्कारों जैसे पुत्र जन्म, यज्ञोपवीत संस्कार, मुंडन संस्कार, विवाह संस्कार इत्यादि, के अवसर पर गाये जाने वाले कुछ गीत निम्न प्रकार हैं -

- **सोहरः-**

पुत्र के जन्म के समय 'सोहर' का गायन किया जाता है। कुछ जगहों पर सोहर को 'सोहिला' नाम से भी जाना जाता है। 'सोहर शब्द की व्युत्पत्ति शोभन शब्द से ज्ञात होती है। संभवतः यही शोभन शब्द सोहिलो-सोहल-सोहर के रूप में परिवर्तित होता हुआ इस रूप में प्रयुक्त होने लगा। भोजपुरी में सोहल का अर्थ सुहावना लगना अथवा अच्छा लगना होता है जो संस्कृत के शोभन से मिलता-जुलता है। सोहर की उत्पत्ति सुघर शब्द से भी मानी जा सकती है जिसका अर्थ सुंदर होता है।' सोहर को 'मंगल

गीत' भी कहते हैं। स्त्री का प्रसव पीड़ा से व्याकुल होना, दाई को बुलाया जाना, परिवार के सदस्यों की प्रसन्नता, उछाह के परिवेश में पुत्र के अंगों का वर्णन इत्यादि सोहर की विषयवस्तु होती है। सोहर गीत को इसकी विषयवस्तु के आधार पर दो वर्गों में वर्गीकृत करते हैं - प्रथम- पूर्व पाठिका द्वितीय उत्तर पाठिका। पुत्र को पाने की लालसा, प्रसव पीड़ा, दाई को बुलाया जाना, पुत्र जन्म के लिए सास की भगवान से कामना करना इत्यादि विषयवस्तु वाले सोहर पूर्व पाठिका वर्ग में रखे जाते हैं। पुत्र जन्म के बाद अपना सर्वस्व लुटा देना, आनन्द का परिवेश , शिशु के तेजस्वी होने की कामना, माता-पिता के सौभाग्य का वर्णन इत्यादि विषयवस्तु वाले सोहर उत्तर पाठिका वर्ग में रखे जाते है।

• विवाह गीतः-

शास्त्र वर्णित सोलह संस्कारों में विवाह संस्कार को विशिष्ट स्थान प्राप्त है। इस संस्कार को मानव सभ्यता के सभी वर्गों द्वारा स्वीकार किया जाता है। अवध क्षेत्र में विवाह संस्कार की एक लम्बी प्रक्रिया है जो कई दिनों तक चलती है। विवाह संस्कार, तिलक से शुरू होकर गवना अथवा द्वारागमन तक चलता है। अवध क्षेत्र में यह संस्कार बहुत धूमधाम से मनाया जाता है। विवाह संस्कार में अनेक स्थानों पर अलग-अलग रीति का चलन है जैसे- कलसा भराई, मानर पूजाई, पितर नेवता इत्यादि। इस सभी अवसरों के लिए अलग-अलग गीत गाये जाते हैं। कन्या तथा वर दोनों ही पक्ष में अनेक अवसरों पर अलग-अलग गीतों के गायन की परम्परा है। दोनों पक्ष के विवाह के समय गाये जाने वाले गीतों की सूची अधोलिखित है -

क्रम संख्या	कन्या पक्ष के गीत	वर पक्ष के गीत
1	तिलक	तिलक
2	कलस धराई	सगुन
3	हरदी	मौर
4	लावा भुजाई	वस्त्र धारण
5	मातृ पूजा	हरदी
6	द्वार पूजा	मातृ पूजा
7	विवाह	परिछन
8	भांवर	
9	सोहाग	
11	द्वार रोकना	
12	कोहबर	
13	भात	
14	वर-उबटन	
15	विदाई	
16	कंगन	

2. ऋतु सम्बन्धी गीत

विभिन्न ऋतुओं में गाये जाने वाले गीतों को इस वर्ग में आश्रय दिया जाता है। अवध क्षेत्र में गाये जाने वाले ऋतु सम्बन्धी कुछ गीत अधोलिखित हैं -

• कजली अथवा कजरीः-

कजरी का गायन सावन के महीने में होता है। कजरी प्रादुर्भाव के सम्बन्ध में अनेक मत सुने जाते हैं। भारतेंदु हरिश्चंद्र जी लिखते हैं कि किसी समय मध्य भारत में दादू राय नाम के एक राजा हुए। एक बार इनके राज्य में अकाल पड़ा, तब राजा दादू राय ने अपने भक्ति बल से वर्ष कराई। जब राजा की मृत्यु हुई, तब उनकी पत्नी नागमती अपने पति के साथ सती हो गयीं। उस राज्य की स्त्रियों द्वारा अपना शोक प्रकट करने के लिए एक नये तरह के गीत का अविष्कार किया गया; जिसका नाम कजली पड़ा। भारतेंदु जी कजरी के नामकरण के सम्बन्ध में दो मत बताते हैं प्रथम- दादू राय के राज्य में कजली नाम का वन था। इस वन के नाम पर ही इस गीत का नाम कजली पड़ा। द्वितीय - श्रावण भादो के शुक्ल पक्ष की तीज का नाम कजली तीज है तथा इस दिन ये गीत खूब गाया जाता है सम्भवतः इस कारण से इस का नाम कजली पड़ा। श्रावण मास में इस गीत का गायन होता है तथा इस मास में काजल के समान काले बादल दिखते हैं। नाम कारण के ही सम्बन्ध में यह भी एक मत सुनने को मिलता हैं। इन गीतों में संयोग तथा वियोग श्रृंगार की अभिव्यंजना होती है। मिर्जापुरी कजरी को श्रेष्ठ मानते हुए एक वाक्यांश का प्रचार है -

लीला रामनगर की भारी,
कजरी मिर्जापुरी सरदार।।

अर्थात् रामनगर की राम लीला बहुत बड़ी होती है (बनारस के राम नगर में विश्वप्रसिद्ध रामलीला होती है।) लेकिन फिर भी मिर्जापुर की कजरी बड़ी है। एक कजरी की कुछ पंक्तियाँ-

हे रामा, बाबा के सागरवा मोरवा बोलइ
हे रामा मोरवा के सबदिया सुन के जियरा घबराने रामा।
हे रामा बपई पंछी देइ दे मोर गवनवा रे हरी।।
हे रामा एसउ के सावनवा बेटी,
खेलउन कजरी रामा,
हे रामा आगे अगहन मा देबई तोर गवनवा ए हरी।।

• सावनः-

सावन के महीने में कजली के साथ सावन गीतों के गायन का भी प्रचलन है। युवतियां झुला झूलते समय इन गीतों को गाती है। इन गीतों की विषयवस्तु में श्रृंगार रस की प्रधानता होती है। सावन गीत की कुछ पंक्तियाँ अधोलिखित हैं -

बरिन बरिन जल चूए, खोरिन कान्दव कींच।
कवने निरमोहिया के धियवा, ससुरे में सावन होय।।
लागो रे महीना सावन का।

• बारहमासाः-

इन गीतों की विषयवस्तु में अपने प्रियतम के परदेश जाने से विरहिन के बारह महीनों के कष्ट का वर्णन होता है। कुछ गीतों में छः महीनों का वर्णन पाया जाता है छः मास के वर्णन वाले गीत छः मासा तथा चार मास के वर्णन वाले गीत चौमासा अभिधान से प्रचारित है। सामान्यतः प्रचार में बारहमासा का ही आधिक्य है। बारहमासा सामान्यतः आषाढ़ मास से प्रारम्भ होता है किन्तु कुछ गीतों में पूस मास से प्रारम्भ होता है। बारहमासा की कुछ पंक्तियाँ अधोलिखित हैं-

लागे मासवा असाढ़, बाढ़ै नदिया ओ नार।
कइगे राति दिना गाढ़, ननदी के बिरना।।
लागे सावन महीना; गोरी करथी सिंगार।
गुंहइ मोती बार बार, सब पहिरि गहना।।
लागे मासवा कुंआर; घर भावे ना दुआर।
छल कइलन बड़ा भारी ; ननदी के बिरना।।
लागे कार्तिक का महीना ; अब ना चुवई पसीना।
हमरी महल अंधियारी, के लेसाबइ दियना।।

3. व्रत तथा देवता सम्बन्धी गीत

भारत पर्वों का देश है। भारत के सभी क्षेत्रों में समय-समय पर अनेक पर्व मनाये जाते हैं। अवध क्षेत्र में स्त्रियों द्वारा वर्ष पर्यन्त अनेक प्रकार के व्रत किये जाते हैं। इन सभी व्रतों तथा त्यौहारों में अथवा किसी देवता के पूजन के अवसर पर स्त्रियाँ सुमधुर गीतों का गायन करती हैं। उक्त वर्ग के अंतर्गत ऐसे सभी गीतों को रखा जाता है। महिलाएं तीज, वट-सावित्री, छठ आदि व्रत करती हैं इन सभी व्रतों में स्त्रियों द्वारा गीतों का गायन किया जाता है। वट सावित्री व्रत के समय गाये जाने वाले गीत की कुछ पंक्तियाँ अधोलिखित हैं-

जेठ मास अमावस सजनी गे,
सब धनि मंगल भाव।
भूषन बसन जतन करू सजनी गे,
रूचि रूचि अंग लगाए।।

4. जाति सम्बन्धी गीत

विभिन्न जातियों द्वारा गाये जाने वाले गीत इस वर्ग में रखे जाते हैं। कुछ जाति विशेष के गीत अधोलिखित हैं -

• बिरहाः-

बिरहा गीत धोबी तथा अहीर जाति के लोगों का गीत कहा जाता है। बिरहा गीत की कुछ पंक्तियाँ अधोलिखित हैं -

तलवा माँ चमकइ ताल की नरइआ;
डाडे मेढे गोहुआ कइ बालि।
सभवा मां चमकइ हो पिया की पगड़िया;
मढ़ये माँ टिकुली हमारि।।

• **कोहरउः-**

इन गीतों का गायन कुम्हार जाति के लोगों द्वारा किया जाता है। कोहरउ गीत की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं-

कउने बन उपजी सुपरिया,
कउन बन नरियर न।
रामा कउने बन चुअन गुलबिया,
तउ चूनरी रंगउवइ न।।
सासु बन उपजी सुपरिया,
समुर वन नरियर न।
रामा कउने बन चुअन गुलबिया,
तउ चूनरी रंगउवइ न।।

• **चमरऊः-**

चमार जाति के लोगों द्वारा इस गीत का गायन किया जाता है। इन गीतों की कुछ पंक्तियाँ -

'बम्बइया माँ बम्बा देबी कलकतवा मा काली।
सूक सनीचर मेला लागढ पूजइ भवानी।।
उत्तर दिसा मां नगर अघोरिया धन्य सरजू माई।
हर मंगल का मेला लागइ दुनिया उलटी के धाई।।'

5. श्रम सम्बन्धी गीत

श्रम के समय गायन किये जाने वाले गीतों को उक्त वर्ग में रखा जाता है। स्त्रियों द्वारा आटा पिसने के समय 'जाता' चलाते हुए गाये जाने वाले गीत जिन्हें 'जतसार' कहते हैं, रोपनी-सोहनी के समय गाया जाने वाले गीत इत्यादि श्रम सम्बन्धी गीत हैं। गेहूं पिसने के लिए जाता चलाते समय गाये जाने वाले 'जतसार' गीत की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं -

गवनवां कराई पिया देहरी बइठाई देनी ,
अपनों चलल पिया पुरबो नौकरिया रे ना।
केकरा से हँसब, पिया केकरा से बोलब हे,
कौना के दिस वेलायब हे बलमुआ।।

6. अन्य गीत

इस वर्ग के अंतर्गत उन गीतों को रखा जाता है जो उक्त वर्णित छः में से प्रथम पांच वर्गों में नहीं आते हैं। इस वर्ग में निर्गुण, पूर्वी, झूमर इत्यादि गीत आते हैं। झूमर गीत की कुछ पंक्तियाँ अधोलिखित हैं -

हमार रुठलो हो सजनवा मनाइब कइसे,
हमार उठत हो लहरिया बुताइब कइसे।
पीया मिलल मोरा हो गवार, हम बइठी मन मार,
बतिया माने ना हमार, रूठी बइठल ना गवार,
करिके कवन बहाना मनाइब कइसे।।
हमार रूठल हो सजनवा .....

निष्कर्षः-

अवध क्षेत्र के लोक गीतों के अध्ययन के क्रम में इन गीतों में एक उन्नत संस्कृति का प्रतिबिम्ब तथा इस क्षेत्र के लोक समाज की अद्भुत सृजन क्षमता दृष्टिगोचर होती है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस क्षेत्र के लोगों को चित्त की प्रसन्नता से कार्य में सकारात्मक प्रभाव का ज्ञान था। श्रमसाध्य कार्य के दौरान भी गीतों के गायन की परम्परा का संजीवन इस क्षेत्र के लोगों के वैज्ञानिक सोच की ओर संकेत करता है। इस क्षेत्र के लोक समाज ने जीवन में घटित होने वाले विभिन्न अवसरों के लिए अलग प्रकार के गीतों का सृजन किया है। इनमें से अधिकतर गीत आज भी प्रचार में हैं। इस शोधपत्र के लेखन के दौरान ऐसा अनुभव किया गया कि अवध क्षेत्र में लोक गीतों का विशाल भण्डार है।

''रेला'' एक महत्वपूर्ण वादन प्रकार

डॉ वेणु वनिता

सार :-

तबला वाद्य की वादन सामग्री में 'रेला' एक महत्वपूर्ण वादन प्रकार है। स्वतंत्र वादन को प्रभावोत्पादक बनाने के लिए यह एक प्रमुख वादन प्रकार के रूप में प्रचलित है। साथ ही संगत के क्षेत्र में भी इसका खूब प्रयोग होता है। स्वतंत्र वादन के उत्तरार्ध में बजाए जाने वाली रचनाओं में रेला एक प्रमुख रचना है। रेला कभी कायदों के उपरांत और कभी बिल्कुल अंत में प्रस्तुत किया जाता है। कभी-कभी रेला बांधकर उसी के अंतर्गत विभिन्न टुकड़े, परन गत आदि प्रकारों का वादन भी किया जाता है। स्वतंत्र वादन के उत्तरार्ध में विस्तार सहित वादन की जाने वाली है यह एकमात्र रचना है, जिसके माध्यम से वादक कलाकार की तैयारी स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। इसी कारण इसकी रचना में प्रयुक्त बोल ऐसे होते हैं जिन्हें द्रुत लय में आसानी से बचाया जा सके। रेला मुख्यतः पखावज वाद्य की वादन सामग्री है और तबला वादन में उसी से प्रवेश हुआ है।

सूचक शब्द :- *रेला, द्रुत, धाराप्रवाह, चौगुन, अठगुन, पलटा*

उद्देश्य :-

प्रस्तुत शोध पत्र अवनद्ध वाद्य तबला पर स्वतंत्र वादन में प्रस्तुत की जाने वाली महत्वपूर्ण वितारक्षम रचना 'रेला' पर आधरित है इसका मुख्य उद्देश्य रेला पर विस्तृत जानकारी प्रस्तुत करना है। इसके अंतर्गत रेला का शाब्दिक अर्थ, परिभाषाएं, विभिन्न विद्धानों के मत, विशेषतायें, बंदिश एवं उसके विस्तार आदि पर महत्वपूर्ण सामग्री प्रस्तुत की गई है।

प्रस्तावना :-

भारतीय संगीत के क्षेत्र में अवनद्ध वाद्यों को विशेष स्थान एवं महत्व प्राप्त है, क्योंकि विशिष्ट प्रकार के वातावरण में विशेष प्रकार के रस एवं भावों की उत्पत्ति के लिए विशिष्ट वाद्यों का प्रयोग किया जाता है। सभी प्रकार के अवनद्ध वाद्य मूलतः लय और ताल प्रधान होते हैं और उनका कार्य गायन, वादन और नृत्य में ताल व लय की सफल संगति करना होता है। तबला भी एक ताल प्रधान अवनद्ध वाद्य है। अतः तबला का भी प्रमुख कार्य विविध ध्वनियुक्त बोलो के संप्रयोग से ताल और लय की अभिव्यक्ति करते हुए गायन, वादन और नृत्य की सफल तथा सौंदर्यपूर्ण संगति करना है। संगति प्रधान होते हुए भी प्रत्येक वाद्य की अपनी स्वतंत्र विशेषताएं भी होती हैं। अतः आंस (Drone) के वाद्यों को छोड़कर, अन्य वाद्यों को संगति के अतिरिक्त स्वतंत्र रूप में भी बजाया जा सकता है। इस दृष्टि से शास्त्रों में वाद्य - प्रयोग की दो प्रमुख भेद किए गए हैं 1. 'शुष्क' और 2. 'अनुगत इन्हें आज के संदर्भ में 'स्वतंत्र वादन' (solo) और 'संगत' (Accompaniment) कहा जाता है।

वर्तमान भारतीय अवनद्ध वाद्यो में तबला एक सर्वाधिक प्रतिष्ठित, प्रचलित, उपयोगी एवं लोकप्रिय वाद्य है। मूल रूप में संगत का वाद्य होने पर भी तबला वादन वर्तमान में इतना उन्नत कलात्मक व समृद्ध हो गया है कि वह संगत के अतिरिक्त स्वतंत्र

असिस्टेंट प्रोफेसर, तबला एवं विभागाध्यक्षा संगीत, कनोहरलाल स्नातकोत्तर महिला महाविद्यालय, मेरठ

वादन हेतु भी पूर्ण प्रतिष्ठित एवं सर्वाधिक लोकप्रिय है।

ताल ठेका और बोलों की संरचनाओं से शनै शनै तबला वादन इतना समृद्ध हो गया है कि वर्तमान में न केवल संगति वाद्य के रूप में उसकी प्रतिष्ठा है बल्कि एक स्वतंत्र वाद्य के रूप में भी उसका वादन प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त कर चुका है। स्वतंत्र वादन में तबला वाद्य का वादन प्रधान रहता है। स्वतंत्र तबला वादन के प्रारंभ में वादक अपनी इच्छानुसार लय में ठेका कायम करके उठान या पेशकार प्रस्तुत करता है। पेशकार के बाद तबला वादक कुछ कायदे प्रस्तार सहित प्रस्तुत करते हैं। तबले के संदर्भ में कायदा उस संरचना को कहा जाता है जिसके अभ्यास से वादक के हाथ उस विशिष्ट बाज में बजाए जाने वाले बोंलों को बजाने के लिए अभ्यस्त हो जाते हैं और द्रुत गति में वादन करने के लिए हाथ तैयार हो जाता है। कायदे की संरचना में भी ठेके के समान भरी और खाली दो भाग होते हैं कायदे के बोलो की संयोजन इस प्रकार की जाती है, जिससे कि बोलो का क्रमानुसार बांट, पलटा व विस्तार किया जा सके। कायदे बजाने के बाद साधारणतः रेला वादन की प्रथा है। रेला शब्द का सामान्य अर्थ होता है 'प्रवाह' तबले में बजाए जाने वाले रेला की संरचना में भी कायदे की भांति भरी और खाली दो भागों के अनुसार क्रमशः खुले और बंद बोलो का प्रयोग होता है, किंतु 'रेले' की बोल- संयोजना में ऐसे बोलो का समावेश किया जाता है जिन्हें अत्यधिक द्रुत लय में प्रस्तुत जा सके। द्रुत लय में रेला वादन करते समय बोलो का एक प्रवाह सा बन जाता है।

विषय प्रवेश :-

रेला द्रुत लय में बजाया जाने वाला एक लोकप्रिय वादन प्रकार है मध्य लय में भी इसका वादन चौगुन एवं अठगुन में किया जाता है। इस वादन प्रकार में ऐसे बोलो की रचना की जाती है जिनके ध्वनियों में एक संघता हो अर्थात उनके मध्य ध्वनि की अटूट गूँज गुंजायमान रहे अर्थात बोलो के मध्य आँस टूटना नहीं चाहिए रेला की रचना के लिए द्रुत लय में सुलभता से वादन किया जा सके ऐसे बोलो का चयन किया जाता है। रेला का बोल अधिकतर मिश्र वर्ण का होता है। इसके पलटे अर्थात विस्तार भी होता है, परंतु उनमें भी रेला के प्रवाही गुण की पूरी रक्षा की जाती है। तबले के कुछ रेले कायदे के समान खाली भरी दर्शाते हुए होते हैं और कुछ इससे भिन्न भी प्राप्त होते हैं रेलवे का स्वरूप और सौंदर्य द्रुत लय में ही निखरता है रेला मुख्यतः दो प्रकार का होता है।

1. स्वतंत्र रेला : इसकी रचना स्वतंत्र रूप से की गई होती है वह किसी के अधीन या किसी रचना से प्रभावित होकर नहीं की गई होती है पखावज के अधिकतर रेलवे इसी वर्ग में आते हैं।
2. कायदे से निर्मित रेला : कायदे के पदों में से किसी ऐसे पलटे को चुन लिया जाता है, जो द्रुत लय में सरलता से प्रभावी रूप से कायम हो सके और इस तरह उसके वादन में धाराप्रवाह प्रवाहित आ निरंतर बनी रह सके रेलवे का प्रयोग स्वतंत्र वादन के अतिरिक्त गायन वादन और नृत्य की संगत में भी खूब किया जाता है वादक कलाकार देना वादन से अपने हाथ की तैयारी प्रदर्शित करता है

उदाहरण 1

धाऽतिर किटतक तिरकिट धाऽतिर	किटतक तिरकिट धाऽतिर किटतक
×	2
ताऽतिर किटतक तिरकिट ताऽतिर	किटतक तिरकिट धाऽतिर किटतक
0	3

उदाहरण 2

दिंऽतिर किटतक नाऽतिर किटतक	तकतिर किटतक ताऽतिर किटतक
×	2
ताऽतिर किटतक धिरधिर किटतक	धिरधिर किटतक धाऽतिर किटतक
0	3

शाब्दिक अर्थ एवं परिभाषाएं :-

मानक हिंदी कोश के अनुसार ''तबला बजाने की एक रीति, जिसमें कुछ विशिष्ट प्रकार से हल्के तथा मधुर बोल बजाए जाते हैं।" बृहद हिंदी कोश के अनुसार "महीन और सुंदर बालों को बजाने की

रीति (तबला)" हिंदी शब्द सागर तथा नालंदा विशाल शब्द सागर के अनुसार "तबले पर महीन और सुंदर बालों को बजाने की रीति" को रेला शब्द का अर्थ दिया गया है। विभिन्न शब्द कोशों में 'रेला' शब्द के तबले से संबंधित अर्थ उपरोक्त दिए गए हैं अन्य दिए गए अर्थों पर यदि ध्यान दें, तब उनका अभिप्राय किसी चीज या बात के प्रबल प्रभाव से है। अतः प्रचलित भाव के आधार ही इसका प्रयोग वादन में किया गया होगा। इसी कारण इस रीति को , 'महीन व हल्के' शब्दों से संजोया गया है जिनका अभिप्राय तबला वादन में द्रुत लय के प्रभाव में बजाए जाने वाले बोलो से लिया जा सकता है। यही इसके नामकरण का आधार है।

शाब्दिक अर्थ पर विचार करने के उपरांत तबला विद्वानों द्वारा रेला की विभिन्न परिभाषाओं पर दृष्टिपात करेंगे - "रेला कुछ बोलो का ऐसा समूह है जिसे चौगुन , अठगुन या किसी द्रुत लय (अर्थात चौगन, अठगुन) में फेंका जा सकें। कुछ देर तक धाराप्रवाह गति से बचाया जा सके।"[1]

''कायदे की बंदिश के समान निर्मित बोलो का वह समूह जो तेज लय अर्थात चौगुन अठगुन में फेंका जा सके और जो इस तेज लय में धाराप्रवाह चलता हुआ सुनाई दे उसे रेला कहते हैं।"[2]

''गायन, वादन और नृत्य में बारीक आवाज में तीव्र गति से बजाने की क्रिया को रेला कहते हैं।"[3]

''किसी बोल समूह को भिन्न-भिन्न प्रकार से सीमित विस्तार के साथ धारा प्रवाह बजाना इस नृत्य को ही रेला कहते हैं।"[4]

''कायदे के उस छोटे भाग के बोल जिनको खूब तैयारी में सरलता से बचाया जा सके तथा उसके कुछ पलटे भी बन जाए उसे रेला कहते हैं।"[5]

''अति द्रुत लय में बजाए जाने वाला वह बोल समूह जिसके बोल एक दूसरे में इस प्रकार गुँथे हों, जिन्हें द्रुत लय में बजाने पर निरंतर ध्वनि होती रहे।"[6]

'रेला' : ''पूरक, चक्र गतिशील और शीघ्र गतिक्षम, शब्दों की और खाली- भरी के तत्व से बनी हुई तथा ताल से नाता रखने वाली विस्तारक्षम संरचना को 'रेला' कहते हैं।"[7]

विभिन्न परिभाषाओं के आधार पर रेला को इस रूप में परिभाषित किया जा सकता है - "कुछ ऐसे बोलो का समूह, जिन्हें द्रुत लय में धारा प्रवाह के साथ बजाया जा सके तथा जिसके बोल एक दूसरे से इस प्रकार गुँथे हों कि निरंतर ध्वनि उत्पन्न हो, को रेला कहते हैं।"

विशेषताएं :-

1. रेला वादन प्रकार का प्रचलन पखावज वाद्य पर पूर्व से ही किया जाता रहा है। अतः तबला वाद्य पर इसका प्रयोग पूर्व प्रचलित धारणाओं के आधार पर वाद्य के अनुरूप किया जाता है। तबले पर उन सभी तालों में रेला बजाया जाता है, जिनमें स्वतंत्र वादन प्रस्तुत किया जाता है।
2. रेले के निर्माण में प्रयुक्त बोल ऐसे होने चाहिए जिन्हें द्रुत लय में सरलता पूर्वक बजाया जा सके। मूल लय अपनी सुविधा व क्रम के अनुसार निश्चित कर सकते हैं, लेकिन वादन करते समय रेला द्रुत लय में ही होना चाहिए। मूल लय के अनुपात में चाहे वादन दुगुन हो, चौगुन हो अथवा अठगुन हो।
3. रेला विस्तार योग्य एक वादन प्रकार है। इसके विस्तार को पलटा कहते हैं।
4. रेला मुख्य रूप से दो प्रकार का होता है- स्वतंत्र रेला व कायदे से निर्मित रेला। पखावज में रेला स्वतंत्र रूप से तथा तबला में कायदे के समान बजाया जाता है, इसी कारण तबले में प्रयुक्त रेले को कायदे से निर्मित रेला कहते हैं। इनमें रेले, कायदे के समान ताली खाली दर्शाते हुए एवं विस्तार युक्त होते हैं।
5. रेले में वादक अपनी कल्पना शक्ति का प्रदर्शन अधिक स्वतंत्रता पूर्वक कर सकता है। यद्यपि कायदे के समान ताली खाली दर्शाता हुआ विस्तार इस में भी होता है, परंतु द्रुत लय में तैयारी के प्रदर्शन के साथ-साथ सम को लक्ष्य मानकर हम रेले के कुछ बोलो को बिना विस्तार किए धाराप्रवाह में एक सा बजाते रहते हैं। अर्थात रेले के कुछ बोलो को धारा प्रभाव में कायम कर दें, तब उसे "रौ" कहते

हैं। इसे रौ बांधना भी कहते हैं। रेलों का यह नवीन रूप, जैसे रौ या रविश कहते हैं, फरूखाबाद घराने की विशेषता है।

6. कभी-कभी सौंदर्य वृद्धि के लिए रौ बजाते समय सम को लक्ष्य मानते हुए हम अवग्रह का प्रयोग करके अतीत - अनागत बनाकर भी धाराप्रवाह कायम करते हैं।
7. सामान्यतः रेले में कम से कम अवग्रहों का प्रयोग करना चाहिए अर्थात पलटे बेदम होने चाहिए परंतु यदि कभी अवग्रहों का प्रयोग विस्तार में करना हो तब उसकी पूर्ति बाएं डग्गे द्वारा की जानी चाहिए। अधिक से अधिक प्रयास किया जाना चाहिए कि पलटे बेदम हो जितना नाद का क्रम नहीं टूटे।
8. रेला बजाते समय निरंतर गूंज उत्पन्न होती रहे इसके लिए हम बायें पर बजने वाले क या कि के स्थान पर ग या घि भी बजा सकते हैं। बायें में मध्यमा व तर्जनी को क्रमानुसार बजाना चाहिए। खाली में क अक्षर चार अंगुलियों के नाखून से बजा सकते हैं।
9. तबला वादक की तैयारी की चरम सीमा उसके रेला वादन में स्पष्ट रूप से दिखाई देती है।अतः रेला वादन के लिए तैयारी को विशेष महत्व देना चाहिए।
10. रेला प्रायः चतस्त्र जाति में बजाया जाता है। परंतु लय के प्रकार दिखाने हेतु अथवा स्वतंत्र रूप से हम अन्य जातियों में भी बजा सकते हैं।
11. रेले का विस्तार क्रम या रीति कायदे के अनुसार ही होगी परंतु कायदे की भांति रेला के पल्टों में कठोर बंधन नहीं होते हैं।
12. रेले में प्रायः तिरकिट, धिरधिर, किटतक, घिड़नग, धिंनगिन इत्यादि बोलो का प्रयोग ही होता है।

बंदिश एवं उसका विस्तार :-

रेला के मूल स्वरूप को ही बंदिश कहते हैं। इसमें ऐसे बोलो का चयन किया जाता है जो सरलता से बिना कष्ट के द्रुत लय में बजाया जा सकें। बोल ऐसे भी होने चाहिए जिनका वादन करते समय नाद की निरंतरता व मधुरता बनी रहे। तबला स्वतंत्र वादन में रेला वादन की कल्पना पखावज वादन से आई है अतः रेला को परिभाषित करने में पखावज तथा तबला दोनों वाद्यों का भाव अंतर्निहित है। पखावज में स्वतंत्र रूप से रेला वादन का प्रचलन रहा है, जबकि तबला वादन में रेला की रचना व विस्तार कायदे से प्रभावित है।इसके अंतर्गत ही कभी-कभी स्वतंत्रता का आभास भी होने देते हैं जिसको विशेषताओं के अंतर्गत स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है।

तबले में कायदे के अधिक नजदीक होने के कारण ही रेला को कायदे से निर्मित रेला कहा जाता है।रेला की बंदिश विस्तार कायदे पर ही आधारित है अतः लय व प्रभाव के आधार पर "कायदे से निर्मित रेला" या रेला के स्थान पर केवल रेला ही कहे तो अधिक उपयुक्त होगा।

यद्यपि पखावज वादन के विविध बाजों में रेला बजाया जाता रहा है परंतु नाना पानसे घराने में दौड़ने वाले शब्दों को विशेष महत्व दिया जाता है। इसी वजह से प्रयुक्त रैली सरल होते हुए भी मधुरता की दृष्टि से खूबसूरत है तथा बिना कठिनाई के द्रुत लय में भागते हैं या बजाए जा सकते हैं।

तबला की सभी छह वादन शैलियों (घरानों) में रेला बजाया जाता है। प्रत्येक शैली में वर्णों व बोलो की प्राथमिकता के आधार पर रेले की रचनाओं में भी समावेश रहता है। प्रत्येक शैली की रचनाओं मेंकिलिष्टता वहीं तक मान्य होती है जब तक रेला की मूल विशेषता "धारा प्रभाव" प्रभावित ना हो।

रेला की रचना ताली खाली के आधार पर करनी चाहिए। इसका विस्तार या पलटे भी कायदे की तरह बनाए जाते हैं परंतु पलटे निर्मिती में कायदे जैसे कठोर नियमों का बंधन आवश्यक नहीं है। अंत में संबंधित बोलो के आधार पर तिहाई बजाकर इसका समापन किया जाता है।

कुछ उदाहरण :-

1- दिल्ली घराना

धाती धाऽतिर किटतक धाती ×	धाऽतिर किटतक धाऽतिर किटतक 2
ताती ताऽतिर किटतक ताती 0	ताऽतिर किटतक धाऽतिर किटतक 3

2 धा तिर किट धा	घेडे नग तिंग नग
×	2
ता तिर किट ता	घेडे नग दिंग नग
0	3

लखनऊ घराना

धाऽघेड़े ऽ	नगधिर	धिरधिर	घेड़नग
धिरधिर 2	घेड़ेनग	तीना	केड़नग
ताऽकेड़ 0	नगतिर	तिरतिर	केड़नग
धिरधिर 3	घेड़नग	धीना	घेड़नग

बनारस घराना

धिन्नाकिटतक ×	धाऽधाऽतिर	किटतकऽोत	धिरधिरकिटतक
धाऽकिटतकधिर 2	धिरधिरकिटतक	धिरधिरकिटतक	धाऽतिरकिटतक
तिन्नाकिटतक 0	ताऽताऽतिर	किटतकतेत्	तिरतिरकिटतक
धाऽकिटतकधिर 3	धिरधिरकिटतक	धिरधिरकिटतक	धाऽतिरकिटतक

संदर्भ सूची :-

1 श्रीवास्तव प्रो गिरीश चंद्र, ताल कोश, रूबी प्रकाशन इलाहाबाद, , प्रकाशन वर्ष 1996,पृष्ठ संख्या 203

2 गोडबोले श्री मधुकर गणेश तबला शास्त्र अशोक प्रकाशन मंदिर इलाहाबाद प्रकाशन वर्ष 1955 पृष्ठ संख्या 79

3 शिवपूजी गुरुनाथ, लय शास्त्र, मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी भोपाल प्रकाशन वर्ष 1988 पृष्ठ संख्या 42

4 वशिष्ठ पं सत्यनारायण, तबले पर दिल्ली पूरब, संगीत कार्यालय हाथरस प्रकाशन वर्ष 1957, पृष्ठ संख्या 29

5 जोशी श्री एम एल, ताल विज्ञान तबला लक्ष्मी संगीत विद्यालय लखनऊ प्रकाशन वर्ष 1975, पृष्ठ संख्या 29

6 मूलगांवकर श्री अरविंद, तबला मराठी, पापुलर प्रकाशन मुंबई, प्रकाशन वर्ष1999 , पृष्ठ संख्या 146

7 माईणकर सुधीर, तबला वादन कला और शास्त्र, पृष्ठ संख्या 77 अखिल भारतीय गांधर्व महाविद्यालय मंडल, मिरज

8 श्रीवास्तव आचार्य गिरीश चंद्र, लय ताल विचार मंथन, रूबी प्रकाशन इलाहाबाद, प्रकाशन वर्ष 2010, पृष्ठ संख्या 15

9 शुक्ल योग माया, तबले का उदगम विकास और वादन शैलियाँ, हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय, प्रकाशन वर्ष, 2003 पृष्ठ संख्या 198, 210

10 मराठे मनोहर भालचंद्र राव, ताल वाद्य शास्त्र, शर्मा पुस्तक सदन ग्वालियर, प्रकाशन वर्ष 1991, पृष्ठ संख्या 25

11 संगीत तबला अंक, संगीत कार्यालय हाथरस, जनवरी-फरवरी 1993 पृष्ठ संख्या 81

12 कालिका प्रसाद, राग वल्लव सहाय, मुकुंदी लाल श्रीवास्तव, ब्रहद हिंदी कोश ज्ञान मंडल वाराणसी प्रकाशन वर्ष 2017

13 सुलभ तबला वादन भाग 2, तलेगांवकर पंडित केशव

14 वनिता डॉ वेणु, तबला ग्रंथ मंजूषा, कनिष्क पब्लिशर्स डिसटीब्यूटर्स 2004 दिल्ली

साक्षात्कार एवं भेंटवार्ता :-

1 स्वर्गीय डॉ नलिन सुंदरम भट्ट, आगरा

2 स्वर्गीय प्रो गिरीश चंद्र श्रीवास्तव, इलाहाबाद

3 स्वर्गीय पंडित केशव रघुनाथ तलेगांवकर, आगरा

4 प्रो नीलू शर्मा, आगरा

आभासी संगीत शिक्षा में नवाचार और रचनात्मकता - एक प्रयोग

डॉ. स्नेहाशीष ज. दास

सारांश-

आज महाविद्यालयीन और विश्वविद्यालयीन स्तर पर शिक्षार्थियों को एक निर्दिष्ट अभ्यासक्रम के माध्यम से विभिन्न विषयों की जानकारी दी जा रही है। इन अभ्यासक्रमों के माध्यम से शिक्षार्थियों को विषय की मालूमात तो हो रही है, परंतु उनका ज्ञानवर्धन होना संदेहास्पद ही है। अधिकतर शिक्षकवर्ग भी केवल औपचारिकता का निर्वहन करते हुए ही दिखाई पड़ते हैं। शोधार्थी भी शिक्षक परिवार का ही एक सदस्य होने के नाते इन बातों से भली-भाँति परिचित है। शिक्षार्थियों को उनके विषयों के प्रति आसक्ति उत्पन्न हो और साथ ही साथ उनके ज्ञान का उन्नयन भी हो सके, इस दिशा में कुछ करने की प्रबल इच्छाशक्ति का ही परिचायक है, कि शोधार्थी द्वारा कुछ सरल संगीत विषयक खेल का सृजन किया गया। इन खेलों के माध्यम से शिक्षार्थियों का न सिर्फ ज्ञानवर्धन होगा बल्कि विषयों को भली-भाँति, सरलता से एवं रोचक ढंग से समझना भी संभव हो सकेगा।

प्रस्तावना-

मनुष्य मन में अज्ञात को ज्ञात करने की तथा अप्राप्य को प्राप्त करने की निसर्ग सिद्ध जिज्ञासा विद्यमान रहती है। इन्हीं जिज्ञासाओं को शांत करने के लिए मनुष्य सर्वदा प्रयत्नशील रहता है। ऐसे ही प्रयत्नों के फलस्वरूप मनुष्य ज्ञान में उत्तरोत्तर वृद्धि होती रही है। इस प्रकार प्राचीन काल से लेकर अर्वाचीन काल तक सामाजिक, सांस्कृतिक आदि क्षेत्रों के विभिन्न स्तरों पर विभिन्न रचनात्मक कार्यों द्वारा विकास क्रम होता रहा है। इन्हीं रचनात्मक कार्यों द्वारा मानव सामाजिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से समृद्ध होकर विकास पथ पर अग्रसर हो रहा है। विकास पथ पर चलते हुए मानव को उसके बचपन से प्राप्त शिक्षा, एक मील का पत्थर सदृश प्रतीत होता है। शिक्षा के विभिन्न पद्धतियों का अनुसरण करके ही मनुष्य अपने व्यक्तित्व का विकास कर पाता है। ठीक इसी प्रकार संगीत क्षेत्र के विद्यार्थी एवं शिक्षक वर्ग के सांगीतिक विकास के लिए संगीत शिक्षा में भी पारंपरिकता के साथ-ही-साथ नए विचार एवं रचनात्मकता की आवश्यकता को नकारा नहीं जा सकता। प्रस्तुत शोध पत्र में 'आभासी संगीत शिक्षा में नवाचार और रचनात्मकता-एक प्रयोग' विषय पर प्रकाश डाला जाएगा जिससे समस्त संगीत क्षेत्र लाभान्वित हो सकेगा।

संकेत शब्द- *अनुप्रयोग, निरुपाधी, सोपाधी, अगमता इत्यादि*

शोध का उद्देश्य -

- पारंपरिक संगीत शिक्षा में नए विचारों का समावेश करना।
- संगीत शिक्षा को आसानी से समझाने का प्रयास करना।
- प्रयोग द्वारा संगीत शिक्षा को अधिक रूचिकर बनाना।
- संगीत शिक्षार्थियों एवं शिक्षकों का उन्नयन करना इत्यादि।

शोध की परिकल्पना -

- संगीत शिक्षा की पारंपरिक पद्धति में नए तांत्रिक प्रयोगों के उपयोग द्वारा विद्यार्थियों का परिणाम अधिक परिणामकारक होगा।

प्रोफेसर एव संगीत विभागाध्यक्ष, महिला महाविद्यालय, अमरावती, महाराष्ट्र

- अगमता से समझने वाला शास्त्र सरलता पूर्वक समझा जा सकेगा।
- सरलतापूर्वक समझ में आने हेतु विषय के प्रति रुचि की बढ़ोतरी होगी।
- संगीत के शिक्षार्थियों एवं शिक्षकवर्ग का ज्ञानवर्धन होगा, जिससे उनका उन्नयन होना भी संभव हो पाएगा।

शोध प्रणाली-

शोध के अंतर्गत दो समूहों में अलग-अलग शिक्षा पद्धति द्वारा प्रयोग कर उनका परीक्षण कर तुलना द्वारा निष्कर्ष निकाला गया। अतः शोध प्रणाली प्रयोगात्मक एवं तुलनात्मक पद्धतियों पर आश्रित है।

शोध कार्य की मर्यादा-

- शोध कार्य के अंतर्गत सामान्य उद्देश्यरहित नमूना के आधार पर 25-25 विद्यार्थियों के दो समूहों का चयन किया गया।
- विद्यार्थियों के संगीत विषयक पूर्व ज्ञान का शोध में कोई विचार एवं परीक्षण नहीं किया गया।
- चुने हुए विद्यार्थियों को उन्हीं चार रागों की जानकारी दी गयी जो उनके अभ्यासक्रम में दी गई है।

विषय प्रवेश-

भारतीय संगीत के प्राचीन आचार्यो ने संगीत के सैद्धांतिक एवं क्रियात्मक पक्षों पर कई शोध कार्य किए, जिनका उद्देश्य शास्त्र एवं शास्त्रगत परंपराओं को विकसित एवं सुनियोजित करना था। उनके इस निरुपाधी शोध का ही परिणाम है, कि आज हमें तत्कालीन संगीत के सैद्धांतिक एवं क्रियात्मक पक्षों पर आधारित अनेकों अमूल्य ग्रंथ उपलब्ध हुए हैं।

यद्यपि अर्वाचीन समय में अधिकतर शोध कार्य सोपाधी शोध के अंतर्गत ही किए जा रहे हैं, तथापि ऐसे शोध कार्यो की उपयोगिता, विश्वसनीयता एवं वैज्ञानिकता को नकारा नहीं जा सकता।

वर्तमान में वैश्विक महामारी के इस दौर में भी संगीत संबंधी विभिन्न विषयों पर शोध किया जा रहा है। अब शोध कार्य तकनीकी माध्यमों की सहायता के बिना असंभव-सा हो चला है। जहाँ पूर्व में संगीत विषयक शोध के अंतर्गत तांत्रिक माध्यमों का कम ही उपयोग किया जाता था, वहाँ आज इसका भरपूर उपयोग किया जाना स्वाभाविक भी है और विवशतापूर्ण भी।

प्रयोग विधि -

संगीत विषय के प्रात्यक्षिक पक्ष को जहाँ सीना-ब-सीना तालीम से जोड़ना ही श्रेष्ठकर माना जाता था, वहाँ आज यह स्क्रीन-टू-स्क्रीन हो गया है। शास्त्रपक्ष भी जहाँ श्यामपट्ट और खल्ली आदि का पक्षधर था, वह भी अब आभासी माध्यमों पर आश्रित हो गया है। इसमें एक बात तो तय है, कि शिक्षक-शिक्षार्थी के बीच जो एक आदर-सम्मान की बात हुआ करती थी वह नदारद है। फलस्वरूप शिक्षार्थियों में विषय के प्रति रुचि का भी अभाव-सा होना तो स्वाभाविक ही है। विषय के प्रति रुचि का न होना ही विषय के प्रति सजगता को भी कम कर देता है। इस कारण विद्यार्थी में विषय के प्रति औपचारिकता का भाव निर्माण हो जाता है। इन्हीं सब समस्याओं को ध्यान में रखकर ही शोधार्थी द्वारा एक संगीत खेल का नियोजन किया गया, जिसके अंतर्गत पाठ्यक्रम के रागों एवं उसके शास्त्र पक्ष से संबंधित जानकारियों को एक अनुप्रयोग (Application) के अंतर्गत इस प्रकार रचा गया, कि अपने अभ्यासक्रम के रागों में से किसी एक राग के बटन को दबाते ही उसके अंतर्गत थाट, स्वर, वर्जित स्वर, जाति, वादी स्वर, संवादी स्वर, विवादी स्वर, न्यास स्वर, गायन/वादन समय, समप्रकृतिक राग एवं राग की विशेष जानकारियों का विकल्प सामने आ जाता है। इनमें से किसी एक विकल्प को चुन कर वह आगे का खेल, खेल सकता है। प्रत्येक विकल्पों के अंतर्गत बहुविकल्पों का नियोजन उसमें पहले से ही किया गया। विभिन्न जानकारियों में से सही विकल्प को चुनकर, अपनी जानकारी सही है या नहीं इसका आकलन भी हो जाता है, उदाहरणार्थ - यदि कोई विद्यार्थी खेल के अंतर्गत राग यमन का चयन करता है, तो उससे संबंधित जानकारी पहले ही उसमें समाहित की गई होती है। जब विद्यार्थी उसके थाट

के बटन के अंतर्गत दिए गए विकल्पों को देखता है, तो वहाँ दस थाट लिखे हुए मिलते हैं। अब उसे सही उत्तर का चयन करना होता है, यदि उसका उत्तर सही हुआ तो उसके सामने हरे रंग का बटन जल उठता है और उसे पता हो जाता है कि उसका उत्तर सही है। थाट से संबंधित उत्तर यदि सही नहीं हुआ तो वहाँ लाल रंग का बटन जल उठता है, जिससे उसको उत्तर के गलत होने का पता हो जाता है और वह फिर से सही उत्तर को खोजने का प्रयास करता है और इस प्रकार उसे उस राग के शास्त्र का सही ज्ञान उस अनुप्रयोग के माध्यम से हो जाता है। ठीक इसी प्रकार आगे के सभी विषयों की जानकारियाँ भी वह बिना शिक्षक के ही सहजता से कर पाता है और खेलते-ही-खेलते उसकी राग संबंधित जानकारी भी पक्की होती जाती है। परंतु, क्या इस खेल के माध्यम से शिक्षक द्वारा पढ़ाकर लिखाए गए राग शास्त्र से भी अधिक सुगमता एवं रोचकता से विद्यार्थी राग ज्ञान अर्जित कर पाएंगे? इस प्रश्न का उत्तर मिल सके इसके लिए विद्यार्थियों के दो समूह बनाकर उन पर प्रयोग किए गए, जिसका विवरण इस प्रकार है - सर्वप्रथम बी.ए. विषम सत्र 1 के 25-25 विद्यार्थियों के दो समूह किए गए, दोनों ही समूहों को अभ्यासक्रम के रागों की विस्तृत जानकारी दी गई। उनमें से पहले समूह को पाठ्यक्रम के रागों की जानकारी लिखाकर दी गई और उसका अभ्यास करने को कहा गया तथा दूसरे समूह को अनुप्रयोग द्वारा खेलते हुए रागशास्त्र संबंधी जानकारी का अभ्यास करने के लिए कहा गया। एक हफ्ते के पश्चात दोनों समूहों की बहुवैकल्पिक प्रश्नों द्वारा परीक्षा ली गई। परीक्षा में दोनों समूहों को 20 बहुवैकल्पिक प्रश्नों को गूगल फॉर्म के माध्यम से 1 घंटे में हल करने को कहा गया। सभी प्रश्नों के समान गुण रखकर पूर्णांक 40 रखा गया। तत्पश्चात दोनों समूहों के विद्यार्थियों की परीक्षा का परीक्षण कर परिणाम निकाला गया, जिसके अंतर्गत जो तथ्य सामने आया वह निम्न प्रकार से है-

दोनों ही समूहों का शोध के पूर्व ली गए परीक्षा का परिणाम इस प्रकार था - पहला समूह (नियंत्रणसमूह) जिनको शास्त्र लिख कर दिया गया था और उसके द्वारा उनको अभ्यास करना था, उन 25 विद्यार्थियों का औसत परिणाम 69.6% था। जबकी दूसरे समूह जिनको (प्रयोगात्मक)अनुप्रयोग के माध्यम से खेलते हुए अभ्यास करने को कहा गया था, उन 25 विद्यार्थियों का औसत परिणाम 30.2 % था जबकि दूसरे समूह का जिसे निम्न तालिका द्वारा आसानी से समझा जा सकता है

शोध के पूर्व ली गई परीक्षा का परिणाम

समूह	विद्यार्थी संख्या	औसत परिणाम
नियंत्रण	25	69.6%
प्रयोगात्मक	25	30.2%

शोध के पश्चात ली गई परीक्षा का परिणाम

समूह	विद्यार्थी संख्या	औसत परिणाम
नियंत्रण	25	72.8%
प्रयोगात्मक	25	51.6%

दोनों पारिणामों का औसत अंतर

समूह	विद्यार्थी संख्या	औसत अंतर
नियंत्रण	25	3.2%
प्रयोगात्मक	25	21.4%

प्रारंभिक स्तर पर किए गए उपरोक्त शोध कार्य के परिणाम का आकलन करते हुए यह कहा जा सकता है, कि जिस नियंत्रण समूह को विश्वविद्यालयीन परंपरागत शैलीनुसार शास्त्र लिखवाकर दिया गया एवं उसके आधार पर अभ्यास करने को कहा गया था, का शोध के पूर्व एवं पश्चात ली गई परीक्षा के औसत परिणामों में 3.2% का औसत अंतर पाया गया। एवं दूसरे प्रयोगात्मक समूह को जिसे दो अनुप्रयोग द्वारा अभ्यास करने की प्रेरणा दी गई, उस समूह का शोध के पूर्व एवं शोध उपरांत ली गई परीक्षा के औसत परिणामों में 21. 4% का औसत अंतर पाया गया।

निष्कर्ष-

उपर्युक्त समग्र परिणामों के आश्रय से शोध की परिकल्पना के आधार पर निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त होते हैं -

- परिणामों के आधार पर जो तथ्य सामने आया उससे शिक्षा में नए प्रयोगों को प्रोत्साहन मिलेगा साथ ही संगीत शिक्षा की पारंपरिक पद्धति में नवाचार का समावेश प्रखरता से हो सकेगा।
- शोध के पूर्व जिस समूह का औसत परीक्षा परिणाम बहुत कम था, उनमें अनुप्रयोग द्वारा अभ्यास करने में सरलता हुई। उनको किसी शिक्षक से पूछने या उनकी राह देखने की आवश्यकता का आभास नहीं हुआ और वे सहजता पूर्वक बारंबार अनुप्रयोग के द्वारा अभ्यास करके अगम शास्त्र को भी सहजता से समझ पाए। इस प्रकार अगमता से समझने वाला शास्त्र भी सरलता पूर्वक समझना संभव हो सका।
- अनुप्रयोग के प्रयोग से शास्त्र को समझने में सुविधापूर्ण होने हेतु विद्यार्थियों की रुचि बढ़ी जिस कारण उनके परीक्षाफल में परिणामकारक वृद्धि संभव हुआ।
- अनुप्रयोग के इस सफल प्रयोग से शिक्षकों में भी इस प्रकार के नवाचार का संचार होगा और इस प्रेरणा से उनमें नए रचनात्मक शिक्षण देने का मार्ग प्रशस्त हो सकेगा, जिससे उनका भी उन्नयन होना संभव होगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1. Kothari C R – Gaurav Garg] Research Methodology Methods and Techniques, 4th edition&2019, publisher& New Age International (P) Limited-
2. शर्मा रवि, संगीत में शोध प्रविधि, द्वितीय संस्करण-2021, प्रकाशक- तौर्यत्रिकम पब्लिकेशन दिल्ली।
3. बिडकर डॉ. सुचेता, संगीत शास्त्र विज्ञान भाग 2, प्रकाशन- 2013, प्रकाशक-संस्कार प्रकाशन, मुंबई।
4. थत्ते डॉ. अनया, संगीतातील संशोधन पद्धति, द्वितीय आवृत्ति- 2018, प्रकाशक- संस्कार प्रकाशन, मुंबई।
5. श्रीवास्तव हरिश्चंद्र, राग परिचय भाग 1, प्रकाशन-2019, प्रकाशक-संगीत सदन प्रकाशन, इलाहाबाद।

भीष्म साहनी के नाटक, समाज और सामाजिक दस्तावेज

प्रो. पुष्प नारायण, मो. इरफान अहमद

सारांश

भीष्म साहनी जन्म- 8 अगस्त, 1915, रावलपिण्डी, अविभाजित भारत; में हुआ था। उनके पिता का नाम हरबंस लाल साहनी तथा माता लक्ष्मी देवी थीं।1 उनकी मृत्यु- 11 जुलाई, 2003 को दिल्ली मे हुइ थी। वे आधुनिक हिन्दी साहित्य के प्रमुख स्तंभों में से एक थे। उन्हें हिन्दी साहित्य में प्रेमचंद की परंपरा का अग्रणी लेखक माना जाता है। आपाधापी और उठापटक के युग में भीष्म साहनी का व्यक्तित्व बिल्कुल अलग था। भीष्म साहनी मानवीय मूल्यों के सदैव हिमायती रहे। वामपंथी विचारधारा से जुड़े होने के साथ-साथ वे मानवीय मूल्यों को कभी आंखों से ओझल नहीं करते थे। उन्हें उनके लेखन के लिए तो स्मरण किया ही जाता है, लेकिन अपनी सहृदयता के लिए भी वे चिरस्मरणीय हैं।" भीष्म साहनी ने दो दर्जन के क़रीब रशियन भाषायी किताबों, टालस्टॉय, ऑस्ट्रोव्स्की, औतमाटोव की किताबों का हिन्दी में रूपांतर किया। उन्होंने 1965 से 1967 तक "नई कहानियाँ" का सम्पादन किया। साथ ही वे प्रगतिशील लेखक संघ तथा अफ़्रो एशियाई लेखक संघ से सम्बद्ध रहे। वे 1993 से 1997 तक 'साहित्य अकादमी एक्जिक्यूटिव कमेटी' के सदस्य भी रहे।"[2] भीष्म साहनी ने कई प्रसिद्ध रचनाएँ की थीं, जिनमें से उनके उपन्यास 'तमस' पर वर्ष 1986 में एक फ़िल्म का निर्माण भी किया गया था। उन्हें कई पुरस्कार व सम्मान प्राप्त हुए थे। 1998 में भारत सरकार के 'पद्म भूषण' अलंकरण से भी वे विभूषित किये गए थे।

***मुख्य बिंदु :** भीष्म साहनी,समाज,कबिरा खडा बाजार, मुआवजे, भाषा, साहित्यकार।*

भीष्म साहनी हिन्दी और अंग्रेज़ी के अलावा उर्दू, संस्कृत, रूसी और पंजाबी भाषाओं के अच्छे जानकार थे। "भीष्म साहनी एक ऐसे साहित्यकार थे, जो बात को मात्र कह देना ही नहीं बल्कि बात की सच्चाई और गहराई को नाप लेना भी उतना ही उचित समझते थे। वे अपने साहित्य के माध्यम से सामाजिक विषमता व संघर्ष के बन्धनों को तोड़कर आगे बढ़ने का आह्वान करते थे। उनके साहित्य में सर्वत्र मानवीय करुणा, मानवीय मूल्य व नैतिकता विद्यमान है।"[3] भीष्म साहनी जी ने साधारण एवं व्यंग्यात्मक शैली का प्रयोग कर अपनी रचनाओं को जनमानस के निकट पहुँचा दिया। भीष्म साहनी को प्रेमचंद की परम्परा का लेखक माना जाता है। उनकी कहानियाँ सामाजिक यथार्थ की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। उन्होंने पूरी जीवन्तता और गतिमयता के साथ खुली और फैली हुई ज़िंदगी को अंकित किया है। साहनी जी मानवीय मूल्यों के बड़े हिमायती थे, उन्होंने विचारधारा को अपने साहित्य पर कभी हावी नहीं होने दिया। वामपंथी विचारधारा के साथ

* शोध निर्देशिका, विभागाध्यक्ष, विश्वविद्यालय संगीत एवं नाट्य विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

** शोध छात्र(नेट), विश्वविद्यालय संगीत एवं नाट्य विभाग,ललित कला संकाय, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

जुड़े होने के साथ वे मानवीय मूल्यों को कभी ओझल नहीं होने देते थे। इस बात का उदाहरण उनके प्रसिद्ध उपन्यास 'तमस' से लिया जा सकता है। उनकी कहानियों में अन्तर्विरोधों व जीवन के द्वन्द्वों, विसंगतियों से जकड़े मध्य वर्ग के साथ ही निम्न वर्ग की जिजीविषा और संघर्षशीलता को उद्घाटित किया गया है। जनवादी कथा आन्दोलन के दौरान भीष्म साहनी ने सामान्य जन की आशा, आकांक्षा, दुःख, पीड़ा, अभाव, संघर्ष तथा विडम्बनाओं को अपने उपन्यासों से ओझल नहीं होने दिया। नई कहानी में उन्होंने कथा साहित्य की जड़ता को तोड़कर उसे ठोस सामाजिक आधार दिया। एक भोक्ता की हैसियत से भीष्म जी ने देश के विभाजन के दुर्भाग्यपूर्ण खूनी इतिहास को भोगा है, जिसकी अभिव्यक्ति 'तमस' में हम बराबर देखते हैं। जहाँ तक नारी मुक्ति की समस्या का प्रश्न है, उन्होंने अपनी रचनाओं में नारी के व्यक्तित्व विकास, स्वातन्त्र्य, एकाधिकार, आर्थिक स्वतन्त्रता, स्त्री शिक्षा तथा सामाजिक उत्तरदायित्व आदि उसकी 'सम्मानजनक स्थिति' का समर्थन किया है। "एक तरह से देखा जाए तो साहनी जी प्रेमचंद के पदचिन्हों पर चलते हुए उनसे भी कहीं आगे निकल गए हैं। उनकी रचनाओं में सामाजिक अन्तर्विरोध पूरी तरह उभरकर आया है। राजनैतिक मतवाद अथवा दलीयता के आरोप से दूर भीष्म साहनी ने भारतीय राजनीति में निरन्तर बढ़ते भ्रष्टाचार, नेताओं की पाखण्डी प्रवृत्ति, चुनावों की भ्रष्ट प्रणाली, राजनीति में धार्मिक भावना, साम्प्रदायिकता, जातिवाद का दुरुपयोग, भाई-भतीजावाद, नैतिक मूल्यों का ह्रास, व्यापक स्तर पर आचरण भ्रष्टता, शोषण की षड़यन्त्रकारी प्रवृत्तियों व राजनैतिक आदर्शों के खोखलेपन आदि का चित्रण बड़ी प्रामाणिकता व तटस्थता के साथ किया है। उनका सामाजिक बोध व्यक्तिगत अनुभव पर आधारित था।"[4] उनके उपन्यासों में शोषणहीन, समतामूलक प्रगतिशील समाज की रचना, पारिवारिक स्तर, रूढ़ियों का विरोध तथा संयुक्त परिवार के पारस्परिक विघटन की स्थितियों के प्रति असन्तोष व्यक्त हुआ है। भीष्म जी का सांस्कृतिक दृष्टिकोण नितान्त वैज्ञानिक और व्यावहारिक है, जो निरन्तर परिष्करण परिशोधन व परिवर्धन की प्रक्रिया से गुजरता है। प्रगतिशील दृष्टि के कारण वह मूल्यों पर आधारित ऐसी धर्मभावना के पक्षधर हैं, जो मानव मात्र के कल्याण के प्रति प्रतिबद्ध और उपादेय है। मार्क्सवाद से प्रभावित होने के कारण भीष्म साहनी समाज में व्याप्त आर्थिक विसंगतियों के त्रासद परिणामों को बड़ी गंभीरता से अनुभव करते थे। पूँजीवादी व्यवस्था के अंतर्गत वे जन सामान्य के बहुआयामी शोषण को सामाजिक विकास में सर्वाधिक बाधक और अमानवीय मानते थे। 'बसन्ती', 'झरोखे', 'तमस', 'मय्यादास की माड़ी' व 'कड़ियाँ' उपन्यासों में उन्होंने आर्थिक विषमता और उसके दुरूखद परिणामों को बड़ी मार्मिकता से उद्घाटित किया है, जो समाज के स्वार्थी कुचक्र का परिणाम है और इन दुःखद स्थितियों के लिए दोषपूर्ण समाज व्यवस्था उत्तरदायी है। एक शिल्पी के रूप में भी भीष्म साहनी महान कलाकार थे। कहानी और वस्तु के प्रति यदि उनमें सजगता और तत्परता का भाव था तो शिल्प के लिए भी वे निरन्तर सावधान रहते थे।

भीष्म साहनी का रंगमंच से रिश्ता सिर्फ नाटककार का नहीं था। वे उसके हर पहलू से जुड़े थे। उन्होंने अभिनय भी किया, निर्देशन में भी हाथ आजमाया और लगभग आधा दर्जन मौलिक नाटकों की रचना करके नाटककार के रूप में प्रतिष्ठित तो हुए ही। 'हानूश' जिसका मूल मंतव्य सत्ता के दमनकारी चरित्र को रेखांकित करना और रचनाकार की स्वाधीनता का आह्वान करना है, उस वक्त सामने आया जब देश इमरजेंसी के दौर से गुजर रहा था। 'मुआवज़े' की कहानी साम्प्रदायिक दंगे से ग्रस्त शहर के सामाजिक और प्रशासनिक विद्रूप को दिखाती है। 'कबिरा खड़ा बजार में', 'आलमगीर', 'रंग दे बसन्ती चोला' और महाभारत की एक कथा पर आधारित 'माधवी' में भी भीष्म जी ने अपने समय की जरूरतों और चुनौतियों को नजरअंदाज नहीं किया है। इस संकलन में शामिल सभी नाटक सार्थकता और मंचीयता, दोनों का संतुलन साधते हुए समकालीन नाटककार के सामने एक मानक

प्रस्तुत करते हैं। भीष्म साहनी ने 'फूजियामा' नाम के एक रूसी नाटक का अनुवाद भी किया था। यह कम्युनिस्ट सोच का एक संवाद-बहुल नाटक है, जिसमें जटिल स्थितियों में निजी नैतिकता के सवाल की परख की गई है। लेकिन क्योंकि हर व्यक्ति में अलग-अलग डिग्री के स्वार्थ और आदर्श होते हैं इसलिए झूठ और सच की यह लड़ाई निरंतर पेचीदा होती जाती है। नाटक का मंच एक कृत्रिम संरचना है, हर पात्र के अतीत में नैतिकता की कोई न कोई खोट है। सामान्य हिंदी दर्शकों के लिए यह नाटक इसलिए थोड़ा मुश्किल मालूम देता है कि निजी नैतिकताओं में झाँकने का इस तरह का चलन अपने यहाँ नहीं है। जे.बी. प्रीस्ले के 'एन इंस्पेक्टर काल्स'कीतरह 'फूजियामा' के पात्रों की सफाइयाँ और द्वंद्व भी दरअसल उनकी अपनी नैतिक चूकों के वाकये हैं। यह हमसे आगे की सिविल सोसाइटी है। जहाँ के मौकापरस्त पात्र भी दूसरों को सफाइयाँ देने से पहले खुद को उस सफाई से सहमत कराते हैं।

हिंदी नाटक में आधुनिकता के कई चरण रहे हैं। पिछली शताब्दी के पूर्वार्ध में एक ओर जहाँ विपरीत ध्रुवों पर खड़े प्रसाद और भुवनेश्वर दिखाई देते हैं, वहीं उनसे भी थोड़ा पहले 1916 में लक्ष्मण सिंह चौहान 'कुली प्रथा' जैसा गठा हुआ यथार्थवादी नाटक लिख चुके थे। लेकिन बीसवीं सदी के उत्तरार्ध में आजादी का एजेंडा हासिल हो जाने से आधुनिकता की नई प्रवृत्तियाँ सामने आईं। एकाएक व्यक्ति यहाँ प्रमुख हो गया था। वह व्यक्ति जो खुद को दूसरों से खास समझता था पर था उनके जैसा ही। फिर यह आधुनिकता कई तरह के प्रयोग करना चाहती थी। मंच को दर्शक दीर्घा तक ले जाया गया, या दर्शकों को मंच पर उतार दिया गया।इस सारे कोलाहल के बीच भीष्म साहनी को हम एक ऐसे रचनाकार के रूप में पाते हैं जिनकी आधुनिकता ठेठ भारतीय परंपरा से उपजी है। इसे हम इस तरह समझ सकते हैं कि पश्चिम में दो-दो महायुद्धों ने व्यक्ति और उसके अस्तित्व के सवाल को जिस तरह केंद्र में ला दिया था वह उस तरह हमारी समस्या नहीं थी। (बावजूद इसके कि इन पश्चिमी प्रवृत्तियों का प्रभाव हिंदी में कई रचनाकारों पर काफी गहरा था; और कुछ ने इसे फैशनेबल ढंग से भी पकड़ा हुआ था।) हमारी समस्या उस समाज की समस्या थी जिसे आजादी के बाद अभी एक रूप हासिल करना था। जिसे नागरिक समाज की बहुत सी बुनियादी समस्याओं को अभी हल करना बाकी था। भीष्म साहनी के नाटक इसी समाज के द्वंद्वों और सवालों के नाटक हैं। वह समाज जो सांप्रदायिकता और सत्ता के अतिचारों के सवाल से जूझ रहा था। जहाँ एक ओर अभी अतीत के सामंती मूल्य अपनी पकड़ बनाए थे, वहीं कई तरह के समांतर प्रतिरोध भी सक्रिय होने लगे थे। इस नजरिये से जब हम देखते हैं तो यह स्पष्ट दिखाई देता है कि "भीष्म साहनी के यहाँ कालजयी होने की कोई हसरत नहीं है; उनके नाटक पूरी तरह सार्वजनिक वर्तमान के नाटक हैं भले ही कई बार ये वर्तमान किसी ऐतिहासिकता के कलेवर में हों।"[4]

धर्मिक दंगे, लूटपाट, जीवन-मृत्यु, हत्याओं के प्रत्यक्ष अनुभव और इन घटनाओं के सूक्ष्म निरीक्षण करने की भीष्म साहनी की नजर ने दमितों और शोषितों की वास्तविक स्थितियों को समझने में समाज कि मदद की है। उनके भीतर के जमीनी और सशक्त कार्यकर्ता का मेल ही उन्हें अपनी कहानियों और उलझे हुये विषयों को भी सटीक तरीके से चित्रित करने सहायता करता है। खासकर, मनुष्य के जीवन की वास्तविक स्थितियों का चित्रण करते समय। अपने जीवन के अंतिम क्षणों तक भीष्म साहनी एक ऐसी आधारशिला बने रहे जिस पर टिक कर कोई भी थोड़ी देर के लिए निश्चिंत होकर आरामकर सकता था। उन्होंने अपने रोज़मर्रा के जीवन और अपने लेखनी में कभी कोई अंतर नहीं रखा। उन्हें आंदोलनों की भागीदारी में विश्वास था। पिछले तीन दशक में होने वाले लगभग सभी प्रमुख जन आंदोलनो चाहे वह आडवाणी की राम रथ यात्रा हो, चाहे सांप्रदायिक दंगे हों, चाहे शिक्षा का भगवाकरण हो, चाहे सफदर हाशमी की हत्या हो, बाबरी मस्जिद विध्वंस का मुद्दा हो या गुजरात

दंगे हों, वे इन सब के खिलाफ चल रहे आंदोलनो में जनता के साथ रहे।

निष्कर्ष

यह कहा जा सकता है कि भीष्म साहनी के पास जीवन को देखने की व्यापक दृष्टि है। मानवीयता उनके नाटकों की आधारभूमि है। व्यक्ति एवं समाज के जटिल संबंधों को सहजता से जीवंत बना देना उनकी विशेषता है। कला और सत्ता के विरोधाभासी चरित्रों की जितनी सशक्त अभिव्यक्ति उनके नाटकों में हुई है वैसी अन्यत्र दुर्लभ है। विषय चाहे ऐतिहासिक हो या काल्पनिक वे समकालीन समस्याओं एवं विसंगतियों की गहरी सूझबूझ के साथ प्रदर्शित करते हैं। नाटककार के रूप में हिंदी नाट्क में उनका योगदान अविस्मरणीय है।

संदर्भ

1. साहनी भीष्म, मेरे भाई बलराज, पृ.2
2. साहनी भीष्म, अपनी बात, पृ.36
3. सक्सेना राजेश्वर -प्रताप ठाकुर,भीष्म साहनी : व्यक्ति और रचना, पृ.33
4. सिंह नामवर : समकालीन साहित्य समाचार, वर्ष 2003, पृ.41
5. सक्सेना राजेश्वर–प्रताप ठाकुर, भीष्म साहनी : व्यक्ति और रचना, पृ.12

पंडित भातखंडे की थाट पद्धति : एक अध्ययन

विशाल विजय कोरडे

सारांश

भारतीय शास्त्रीय संगीत में राग गायन का अपना एक महत्व है। प्राचीन, मध्ययुगीन और आधुनिक काल में राग वर्गीकरण की अनेक पद्धतियां प्रचार में थी। उनमें से कुछ महत्वपूर्ण पद्धतियां राग - रागिनी पद्धति, ग्राम राग वर्गीकरण, थाट राग वर्गीकरण और रागांग राग वर्गीकरण आदि है। 19वीं शताब्दी में भारतीय शास्त्रीय संगीत में कई परिवर्तन आए। भारतीय शास्त्रीय संगीत के रागों को दस थाटों में विभाजित करने का महान कार्य किया पंडित विष्णु नारायण भातखंडे जी ने।

व्यंकटमखी के 72 मेल और उत्तर हिंदुस्तानी संगीत पद्धति के 32 थाटों का अध्ययन करके पंडित भातखंडे द्वारा 10 थाटों का सिद्धांत रखा गया। आज संगीत के संस्थागत शिक्षा प्रणाली में पंडित भातखंडे के 10 थाटों को सामने रखकर अध्ययन अध्यापन किया जा रहा है। इसी लिए पंडित भातखंडे के 10 थाटों का अध्ययन और उनकी लोकप्रियता के कारण इन सभी बिंदुओ पर प्रकाश डालना आवश्यक है।

प्रस्तुत शोध निबंध के माध्यम से पंडित भातखंडे जी के इस अलौकिक कार्य की चर्चा एवम् उपयोगिता का अध्ययन गुणीजनो के समक्ष प्रस्तुत है। पंडित भातखंडे जी के कार्य को संगीत साधकों के समक्ष रखना, थाट राग वर्गीकरण का अध्ययन करना और पंडित भातखंडे के 10 थाटों की उपयोगिता जानना। यह उद्देश्य रखकर प्रस्तुत संशोधन किया जा रहा है।

भातखंडे जी की थाट- राग पद्धति लोकप्रिय होने का कारण है थाट पद्धति की सरलता, थाट पद्धति की थाट नाम तालिका की समितता और संगीत का पाठ्यक्रम में एक विषय की तरह समावेश।

शोध बिंदू *- पंडित विष्णु नारायण भातखंडे, थाट राग वर्गीकरण, 10 थाट वर्गीकरण, राग वर्गीकरण पद्धति, चतुरपंडित*

भूमिका

भारतीय शास्त्रीय संगीत में आज थाट पद्धति सर्व मान्य है। कर्नाटक संगीत में 72 मेल, उत्तर हिदुस्तानी संगीत में 32 थाट, और आज पंडित भातखंडे द्वारा निर्मित 10 थाटों का चलन हमें देखने को मिलता है। पंडित भातखंडे जी के 10 थाट और राग वर्गीकरण पद्धति आज लोकप्रिय है। पंडित भातखंडे जी के 10 थाट, उनकी निर्मिती, उपयोगिता,और उनकी लोकप्रियता को जानने से पूर्व 'थाट' के बारे में जानना आवश्यक है।

थाट इस शब्द का अर्थ होता है ढाचा जिसे हम अंग्रेजी में structure कहते है। ठाठ, थाट और मेल ये तीन शब्द एक-दूसरे के पर्यायी शब्द है। तंत्र वाद्य में तार मिलाते समय थाट शब्द का प्रयोग होता है। संस्थिति इस शब्द को संगीत के कुछ शास्त्र ग्रंथो में मेल का पर्यायी शब्द कहा गया है। प्रस्तुत शोध निबंध में पंडित भातखंडे जी के दशविध थाट वर्गीकरण के बारे में और उनके लोकप्रिय होने के कारणों की चर्चा की गई हैं।

* सहाय्यक प्राध्यापक, श्री शिवाजी कला, वाणिज्य व विज्ञान, महाविद्यालय अकोला, महाराष्ट्र, मोबाईल नं. 09423650090, E-mail : vishalkorde16@gmail.com

पंडित भातखंडे जी को उस समय के महान संगीतज्ञ पंडित, एकनाथ सेठ, बल्लभदास (सितार) रामपुर, कल्बेअलीखां इस सब का शिष्यत्व प्राप्त हुआ। संगीत का घटता स्तर देखकर पंडित भातखंडे जी ने क्रियात्मक पक्ष के साथ - साथ शास्त्र पक्ष को भी जन सामान्य के लिए उपलब्ध करवाया। संगीत के शास्त्र और क्रिया पक्ष को लिपिबद्ध करने के लिए पंडितजी ने एक सरल स्वरलिपि की निर्मिती की। जिसे हम सब 'भातखंडे स्वरलिपि' के नाम से पहचानते हैं। पंडित जी ने भिन्न-भिन्न घरानों के गुणीजनों से हजारों ध्रुपद और ख्याल की बंदिशों को संकलित किया और विद्यार्थियों के लिए उपलब्ध करवाया।

पंडित भातखंडे जी के निरंतर परिश्रम और संशोधन से हिंदुस्तानी संगीत पद्धति क्रमिक पुस्तक मालिका भाग एक से छह यह ग्रंथ आज हमे संगीत के कला और शास्त्र पक्ष का ज्ञान देते है।

क्रमिक पुस्तक मालिका के छह भागों में लगभग दो हजार बन्दिशों की स्वरलिपि संग्रहित है। शास्त्रीय संगीत का प्रसार करने के लिए भातखंडे जी द्वारा मॉरिस म्यूजिक कॉलेज, लखनऊ, माधव संगीत विद्यालय, ग्वालियर और संगीत विद्यालय, बड़ौदा यह तीन विद्यालयों की स्थापना की गई।

पंडित विष्णु नारायण भातखंडे का सबसे महत्वपूर्ण संगीत कार्य ठाठ राग वर्गीकरण पद्धतिकी निर्मिती माना जाता है। भारतीय संगीत शास्त्र में ठाठ पद्धति के निर्मिती के बारे में कुछ गुणी जनो का मानना है कि संभवतः मौला बख़्श के सिद्धांत से प्रेरणा लेकर पं. भातखंडेजी ने दस ठाठ की निर्मिती की। किन्तु उन्होंने 'श्रीमल्लक्ष्य संगीतम ग्रंथ' में इस बात का स्पष्ट वर्णन दिया है। शास्त्र ग्रंथों में वर्णित 72 मेलों में से जो अनावश्यक प्रतीत हुआ उन्हें छोड़कर केवल सुप्रसिद्ध 10 मेलों को स्वीकार किया है।1 उपरोक्त विधान से यह प्रतीत होता है कि व्यंकटमखी द्वारा निर्मित 72 मेल पद्धति को ध्यान में रख कर पंडित भातखंडे जी ने ठाठ पद्धति का निर्माण किया।

प्रचलित संगीत पद्धति में राग वर्गीकरण के अन्य प्रकार होते हुए भी पंडित भातखंडेजी द्वारा ठाठ पद्धति की निर्मिती क्यों की गई। इस बात का स्पष्टीकरण उन्होंने अपने ग्रंथ में इस प्रकार दिया है कि, तत्कालीन संगीत मर्मज्ञों में राग वर्गीकरण पद्धति के संदर्भ में एक मत का अभाव एवम् राग तथा रागिनी के पारस्परिक संबंधों का अस्पष्ट वर्णन। पंडित भातखंडे जी ने 1906 ई में चतुर पंडित इस उपनाम से श्रीमल्लक्ष्य- संगीतम और 1921 में अभिनव राग मंजरी इन दो ग्रंथो की रचना की।[3]

'श्रीमल्यक्ष्यसंगीतम' इस ग्रंथ में चतुरपंडित ने मेल शब्द का प्रयोग करके मुख्य 10 ठाठ और उनके लक्षण का भी वर्णन किया है। उनकी दृष्टि में रागों को वर्गीकृत करते समय जन्य-जनक मेल अथवा थाट की परिकल्पना करना अनुचित नहीं है।[4] कल्याण (यमन), बिलावल (बेलावली), खमाज, भैरव, पूर्वी (पुर्विका), मारवा, काफी, आसावरी, भैरवी और तोड़ी (तोडिका) इन 10 थाटो को उन्होंने स्वीकृत किया।[5]

दक्षिण भारत को छोड़कर उत्तर भारत के उत्तर प्रदेश, उड़ीसा, महाराष्ट्र, बंगाल, मध्य प्रदेश, दिल्ली, हरियाणा, पंजाब, कश्मीर, हिमाचल, उत्तरांचल, बिहार इत्यादि प्रांतों में पंडित भातखंडे जी की ठाठ पद्धति सुप्रसिद्ध हुई।

बृहस्पति जी ने अपने ग्रंथ में उत्तर भारत में प्रचलित दस थाटों और आचार्य भरत द्वारा बताए गए 10 स्वरो के साथ विवेचन करने से जो स्थिति बनती है उसका वर्णन किया गया हैं उन्होंने वर्णन करते हुए का। का अर्थ काकली निषाद और अ. का अर्थ अन्तर गांधार बताया है।

गणितीक हिसाब से सम्पूर्ण (सात स्वर), षाडव (छः स्वर) और औडव (पांच स्वर) ये तीन मुख्य तीन जातियां बनती है। इन जातियों में 6 उपजातियां भी बनती हैं। इन 6 उपजातिओं से रागों की कुल संख्या 484 बनती है।

सम्पूर्ण- सम्पूर्ण जाति से 1 राग उत्पन्न होता है। सम्पूर्ण- षाडव से 6, सम्पूर्ण- औडव से 15, षाडव- सम्पूर्ण से 6, षाडव- षाडव से 36, षाडव- औडव से 60, औडव - सम्पूर्ण से 15, औडव- षाडव से 60 और औडव- औडव से 225 राग निर्माण होते है। 484 राग केवल स्वरों की शुद्ध अवस्था से बनते है।[6] थाटो के सम्पूर्ण स्वरों को आधार मानकर शुद्ध - विकृत अवस्था भेद से 32 थाट बनते हैं।

अनुसंधान पद्धति

प्रस्तुत विषय वस्तु को समझने के लिए शोधार्थी द्वारा वर्णनात्मक एवम् विश्लेषणात्मक पद्धति का उपयोग किया गया है।

शोध के उद्देश्य

1) पं. विष्णु नारायण भातखण्डे द्वारा संशोधित कार्य नवीनता से संगीत क्षेत्र में रखना।
2) संगीत छात्रों के लिए उपयुक्त।
3) भारतीय शास्त्रीय संगीत के प्रचार-प्रसार के लिए महत्वपूर्ण।

वर्तमान समय में थाट पद्धति की लोकप्रियता

वर्तमान समय में पंडित भातखंडे जी द्वारा निर्मित थाट- राग पद्धति का इतना प्रसार क्यों हुआ? इस बात पर ध्यान देते हुए कुछ बातें हमारे सामने आती है। जैसे कि थाट पद्धति की सरलता, थाट पद्धति की थाट नाम तालिका की समितता और प्राथमिक विद्यालय और महाविद्यालय इन सभी संस्थाओं में संगीत को एक विषय की तरह अध्ययन पद्धति में शामिल करना। आगे इन प्रमुख बिंदुओं को ध्यान में रखकर इनका विश्लेषण दिया जा रहा है।

सरलता

पंडित भातखंडे जी की थाट पद्धति सरल होने के कारण संगीत सीखने वाले प्रारम्भिक विद्यार्थियों को यह पद्धति आसानी से अवगत होती है। इसका अर्थ संगीत क्षेत्र में प्रथम पदार्पण करने वाले विद्यार्थियों के लिए यह पद्धति लाभदायक सिद्ध होती हैं। संगीत के प्रारंभिक विद्यार्थियों प्रथम चरण की शिक्षा लेने में इस पद्धति में जो जन्य- जनक भाव विद्यमान है उसके कारण कोई भी राग सीखते समय उस राग के विषयक मुख्य ज्ञान आसानी से प्राप्त होता है। जैसे - जनक थाट राग गायन का समय, जनक थाट का नाम एवं निहित स्वर का ज्ञान स्वरूप इत्यादि।

समितता

सिर्फ 10 थाटों के अन्तर्गत रागों के विपुल संख्या का वर्गीकरण करना कठिन कार्य है। इस पद्धति की लोकप्रियता की प्रमुख विशेषता 'गागर में सागर' वाली कहावत जैसा है। पंडित भातखंडे जी के 10 थाटों के अन्तर्गत अधिकांश सभी रागों के समाहित रहने के कारण यह पद्धति अधिक लोकप्रिय और सर्वमान्य हुई। संगीत विषय की ज्ञान प्राप्ति करना सागर की गहराई के समान है और इसमें किनारा प्राप्त करना अत्यंत कठिन कार्य है।

पंडित भातखंडे जी ने ऐसे कठिन कार्य को अत्यंत सहज तथा व्यवस्थित ढंग से करने हेतु थाटों में समस्त रागों का समावेश करने का सदप्रयास किया है। इस थाट पद्धति में दस थाट नाम और उन थाटों के संबंधित आश्रित रागों के स्वर प्रयोग की विधान पद्धति बताई गई है। साथ ही प्रत्येक राग में प्रयोग होने वाले स्वरों के सांकेतिक चिन्ह् को भी स्पष्ट रूप में दर्शाया गया है। प्रत्येक राग के लिए निश्चित थाट की योजना होने के कारण न समझने की गुंजाईश नहीं रह जाती।

संस्थागत शिक्षण

शास्त्रीय संगीत वर्तमान समय में जितना लोकप्रिय हुआ है उतना पूर्वकालीन वर्षों में प्रचलित नहीं था। और वर्तमान समय में संगीत की लोकप्रियता बढ़ने के प्रमुख कारण यह है कि, पाठ्यक्रम के अन्तर्गत विषय के रूप में शामिल होने के कारण स्वाभाविक रूप से प्रत्येक शिक्षण संस्थानों में उस विषय को पढ़ाना तथा सिखना आवश्यक हो जाता है। प्राथमिक विद्यालय से इंटर कॉलेज तथा विश्वविद्यालयों में संगीत को एक विषय के रूप में मान्यता प्राप्त होने के कारण जन सामान्य लोगों में इस विषय के प्रति रुचि बढ़ रही थी। विद्यालयों तथा महाविद्यालयों तक शिक्षकगण संगीत प्रदान करते समय थाट पद्धति का उपयोग करते है।

थाट पद्धति सरल होने के कारण इस पद्धति के माध्यम से विद्यार्थियों को प्रारंभिक रूप से शिक्षा प्रदान करने में शिक्षको को आसानी होती है। वर्तमान समय में बहुतांश विद्यार्थी संगीत विषय में शिक्षण लेते है और निपुणता हासिल कर के अपना उदरनिर्वाह करने के लिए संगीत को अपनाते है।

वर्तमान समय में संगीत के प्रचार - प्रसार का श्रेय पंडित भातखंडे जी को जाता है। संगीत प्रारंभिक

शिक्षा प्रदान करने में पंडित भातखंडे जी की थाट पद्धति जितनी सक्षम मानी जाती है उतनी शायद ही कोई और अन्य संगीत पद्धति मानी जाती होगी। लेखिका डॉ. मधुबाला सक्सेना के अनुसार 16 वीं शताब्दी का अंत तथा बीसवीं सदी के प्रारंभिक काल को संगीत के लिए क्रांतिकारी युग के रूप में स्वीकार किया जा सकता है क्योंकि इसके पूर्व संगीत का प्रयोग केवल मात्र विलासिता तथा मनोरंजन के साधन के रूप में होता था।[7] संगीत की शिक्षा प्रणाली में पंडित भातखंडे जी की थाट पद्धति का शास्त्रीय संगीत के लिए महत्त्वपूर्ण योगदान है। इनसे पहले भी विद्वानों द्वारा संगीत संस्थागत शिक्षण में समाविष्ट करने का प्रयास किया जा चुका है इसका प्रमाण हमें संगीत ग्रंथो में मिलता है। बड़ौदा में 1886 ई. में मौला बख्श घिस्से खां नाम से प्रसिद्धि पाई।[8] आधुनिक संगीत पद्धति उच्च कोटि के होते हुए भी संगीत पद्धति का प्रारंभिक आधार थाट पद्धति को ही माना जाता है। इस बात को संगीत जगत के विद्वानों द्वारा मान्यता प्राप्त है।

निष्कर्ष

पंडित भातखंडे जी के थाट राग वर्गीकरण पद्धति का अध्ययन करने के बाद कुछ निष्कर्ष प्रस्तुत है।

प्रस्तुत शोध निबंध में मैंने पंडित भातखंडे जी द्वारा निर्मित 10 थाट वर्गीकरण के विषय में चर्चा की है। पंडित भातखंडे जी की 10 थाट राग पद्धति को संगीत क्षेत्र में अधिक सरल एवं सहज प्रतीत होने के कारण इसे अधिकांश विद्वानों द्वारा मान्यता प्राप्त हुई।

पंडित भातखंडे जी का प्रयास यह रहा कि बाँकी विषयों की भाँति संगीत विषय को भी पाठ्यक्रम में समाविष्ट किया जाए।

पंडित भातखंडे जी ने प्राचीन और मध्ययुगीन राग वर्गीकरण पद्धतियों का अध्ययन करके थाट राग पद्धति को निर्मित किया। और एक सरल स्वरलिपि पद्धति भी बनाई, जिसकी सहायता से पंडित भातखंडे जी की थाट पद्धति को समझना अधिक सरल हुआ। थाट नाम के साथ प्रत्येक थाट के लक्षण सरलता से पहचाने जाने के कारण यह राग वर्गीकरण पद्धति लोकप्रिय हुई है।

पूर्व काल से चले आ रहे रागों को शृंखलाबद्ध और सरल रूप में वर्गीकृत करके पंडित भातखंडे जी ने संगीत जगत को महान योगदान दिया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1) भातखंडे विष्णु नारायण (1981), द्विसप्ततिमेलकेषु त्यकत्वा तानवश्यकान। स्वीकुर्मो दशसड ख्यांन्सान लक्ष्यदत्मनि विश्रुतात।।2।। श्रीमल्लक्ष्यसंगीतम, गुणवन्त माधवलाल व्यास, मध्यप्रदेश हिंदी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल (म. प्र.) पृ-13.

2) भातखंडे विष्णु नारायण (1981), श्रीमल्लक्ष्यसंगीतम, गुणवन्त माधवलाल व्यास, मध्यप्रदेश हिंदी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल (म. प्र.) पृ-166

3) टाक तेजसिंह (2005), सुबोध संगीत शास्त्र (भाग-१), बेकराँ आलमी फाउन्डेशन, लखनाऊ, पृ- 252

4) भातखंडे विष्णु नारायण (1981), श्रीमल्लक्ष्यसंगीतम, गुणवन्त माधवलाल व्यास, मध्यप्रदेश हिंदी ग्रन्थ अकादमी,भोपाल(म. प्र.) पृ- 164

5) भातखंडे विष्णु नारायण (1981), श्रीमल्लक्ष्यसंगीतम, गुणवन्त माधवलाल व्यास, मध्यप्रदेश हिंदी ग्रन्थ अकादमी,भोपाल(म. प्र.) पृ- 167

6) वृहस्पति कैलास चन्द्र देव (1991), भारत का संगीत सिद्धांत, दया प्रकाश सिन्हा, पृ-284.

7) सक्सेना मधुबाला (1998), पृथ्वीराज कालिया, संगीत शिक्षण प्रणाली एवं उसका वर्तमान स्तर, पृ-85

8) सक्सेना मधुबाला (1998), पृथ्वीराज कालिया, संगीत शिक्षण प्रणाली एवं उसका वर्तमान स्तर, पृ-85

हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत की उन्नत अवस्था में लोक संगीत का स्थान

प्रो. डॉ. जयश्री मि. वैष्णव

सारांश -

लोकसंगीत समस्त संगीत का मूल है और इससे ही संगीत की विभिन्न शाखाओं का विकास हुआ है। जिस प्रकार एक नदी अपने प्रवाह में हर प्रकार की सामग्रियों को बहा ले जाती है, उसमें समाहित कर लेती है। प्राचीन काल से अर्वाचीन काल तक संगीत के प्रवाह में विभिन्न प्रकार की सांगीतिक तत्वों का समावेश रहा है, जो स्वाभाविक है। आज के संगीत की विकसित और उन्नत अवस्था में लोकसंगीत का स्थान गौण है, लेकिन एक समय लोकसंगीत का प्रभाव ही अधिक था। इतना ही नहीं लोकसंगीत शास्त्रीय संगीत को प्रेरणादायी रहा है। इस तरह लोकसंगीत हमारे भारतीय संगीत का एक अमूल्य अंग है। संगीत में आवश्यक लय, भाषा, स्वर एवं भाव इन सभी चार तत्वों का आधार लोकसंगीत ही है।

शोध की आवश्यकता और महत्व–
(Importance of Research)

संगीत कला भारत की एक प्राचीनतम परंपरा है जो विरासत के रुप में हमारे संस्कृति का अभिन्न अंग बन गया है। संगीत एक प्रवाही कला होने के कारण समय, काल और स्थिति के अनुसार इसमें परिवर्तन होना स्वाभाविक ही है। किसी भी कला का संवर्धन होने के लिए उसमें परिवर्तन आवश्यक है। तभी वह कला जीवित रह सकती है। अतः इन कलाओं में समय-समय पर अनुसंधान करना भी उतना ही आवश्यक हो जाता है।

आज शास्त्रीय संगीत का जो विशालकाय स्वरुप हमें दिखायी देता है। उसका मूल लोकसंगीत से ही है। समय के साथ लोकसंगीत के स्वर-संख्या और स्वरावली में परिवर्तन होकर राग संगीत का निर्माण हुआ, जिसका परावर्ती काल में शास्त्र बनकर उसे शास्त्रीय संगीत की उपमा दे दी गयी। इन परिवर्तनों के अध्ययन के लिए प्रस्तुत विषय का अध्ययन महत्वपूर्ण हो जाता है।

प्रस्तुत शोध लोक संगीत के इतिहास, इसकी उत्पत्ति और शास्त्रीय संगीत के विकास में इसकी भूमिका पर प्रकाश डालेगा। अतः इस शोध कार्य का लाभ विद्यार्थियों, शोधार्थियों, शिक्षकों और संगीतकारों को हो सकेगा।

शोध का उद्देश्य - (objective of Research)

1) हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत के मूल तत्वों का अध्ययन कर लोक संगीत के मूल रुप को समझना।
2) लोकसंगीत की उत्पत्ति, विकास और उसके तत्वों का अध्ययन करना।
3) शास्त्रीय संगीत की उन्नति में लोकसंगीत की भूमिका का अध्ययन करना।

शोध की परिकल्पना - (Assumptions of Research)

1) लोकसंगीत संगीत की प्राचीनतम कल्पना है।
2) लोक संगीत जनमानस की स्वाभाविक रचना है।

संगीत विभाग, महिला महाविद्यालय, अमरावती

3) लोक संगीत का अविष्कार स्वर, लय, भाषा और भाव इन चार मूल तत्वों से हुआ है।
4) यही चार तत्व हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत विधाओं का आधार है।
5) लोकसंगीत और शास्त्रीय संगीत इनके तुलनात्मक अध्ययन से इन दोनों के प्रचार एवं प्रसार में मदद होगी।
6) हिन्दुस्तानी शास्त्रीय लोकसंगीत का ही एक बदला रुप है जो नियमबद्ध है।

शोध की व्याप्ति और मर्यादा - (Scope and Limitations of Research)

1) प्रस्तुत शोध की व्याप्ति और मर्यादा शोध के विषय से ही स्पष्ट होती है। शोध कार्य में लोक संगीत और हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत का ही तुलनात्मक अध्ययन किया जाएगा। इसमें कर्नाटक संगीत का समावेश नहीं किया जाएगा।
2) चुनिंदा लोकसंगीत के माध्यम से अध्ययन किया जाएगा।

शोध विधियाँ - (Research Methodology)

प्रस्तुत शोध के अंतर्गत निम्नलिखित शोध विधियों द्वारा अध्ययन किया जाएगा।

ऐतिहासिक विधि - (Historical Research)

लोकसंगीत का प्राचीन स्वरुप जानने के लिए, लोकसंगीत की उत्पत्ति, विकास और प्रसार का ऐतिहासिक दृष्टिकोण से अध्ययन किया जाएगा। जिसके अंतर्गत उपलब्ध ग्रंथों, पुस्तकों, विद्वान संगीतज्ञों आदि से चर्चा कर अध्ययन किया जाएगा।

तुलनात्मक विधि - (Comparative Research)

लोकसंगीत और शास्त्रीय संगीत का तुलनात्मक अध्ययन कर हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत कें उन्नति में लोक संगीत की भूमिका का अध्ययन किया जाएगा।

लोकसंगीत की उत्पति-

लोकसंगीत जनमानस की स्वाभाविक रचना है। मानव ने स्वानंद के लिए जो नृत्य किया, जो गाया, जो वादन किया वही लोकसंगीत कहलाया। लोक-जीवन से ही लोकसंगीत का निर्माण हुआ है। जैसे-जैसे मानव उन्नत होने लगा, वह अपने चतुर्वर्ण व्यवस्था के अनुसार स्वयं का गिरोह बनाकर एक साथ रहने लगा। वह अपने जीवन को और अधिक उद्यमशील बनाने लगा, जिससे उसकी जीवनशैली पूरी तरह बदलने लगी। अनेक नये-नये व्यवसाय, उद्योग आदि का निर्माण होने लगा। जीवन की आवश्यकतों को पूरा करने और जंगली जानवरों से सुरक्षा के लिए, लोग एक-दूसरे के साथ रहने लगे। अलग-अलग क्षेत्रों में अलग-अलग भाषाओं के लोग अपनी जगह चुनकर सामूहिकता से अपना जीवन जीने लगे। दिनभर श्रम करने के बाद थकान दूर करने और मनोरंजन के लिए किसी साधन की आवश्यकता महसूस होने लगी। कोई क्रिया समय के समान अंतराल पर करने से एक लय निर्माण होती हैं। इसी लय में वह क्रिया और मन एक हो जाते हैं। ऐसी एकाग्रता निर्माण होने पर श्रम से हुई थकान कम हो जाती है। इसलिए श्रम की थकान मिटाने के लिए लय यह प्रमुख साधन बन गया। इस लय को शब्दोंका साथ मिल गया और एक लययुक्त काव्य निर्माण हुआ। समय के साथ इस काव्य को स्वर मिले और 'लोकसंगीत' का जन्म हुआ। जैसे-जैसे यह संगीत उन्नत होने लगा अपने-आप इसका शास्त्र बनने लगा। लय, भाषा, स्वर और भाव यह लोकसंगीत के मुख्य अंग हैं, जिस आधार पर लोकसंगीत की संरचना हुई। सबसे पहले लय, फिर शब्द अर्थात् भाषा, उसके उपरांत सुर और इस में भाव प्रदर्शन शुरु होकर लोकसंगीत को मूर्त रुप प्राप्त हुआ।

लोकसंगीत के मुख्य अंग

लय -

मानव जीवन में लय का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। बचपन से लेकर बुढापे तक उसके जीवन में लय खेलती रहती है। मानव शरीर की सभी क्रियाएँ एक विशिष्ट लय में शुरु रहती है। दिल की धड़कन जबतक नियमित लय में होती है, तबतक उसकी

तबीयत अच्छी समझी जाती है। समस्त सृष्टि भी एक लय में बंधी है। इसी लय से लोकसंगीत का जन्म हुआ है। इसलिए 'लय' लोकसंगीत का मुख्य और आवश्यक अंग है।

भाषा -

अलग-अलग भाषा बोलने वाले लोग साथ रहने लगे एवं श्रम से राहत पाने के लिए, मनोरंजन के लिए, कुछ शब्दों के साथ लय में गाना शुरु किया। समय के साथ उसमें अर्थपूर्ण शब्दों का प्रयोग करना शुरु कर दिया। जैसे-जीवन के सुख-दुःख, विभिन्न पर्व इन पर आधारित शब्दों का प्रयोग करने लगे। बोने, काटने और फसल घर आने के पश्चात जो आनंद होता है, इन सबका वर्णन करने वाले विभिन्न गीतों का निर्माण एवं प्रचार हुआ। श्रम से हुई थकान कम करने के लिए विभिन्न स्थितियों की पृष्ठभूमि पर अलग-अलग गीतों की रचनाएँ की गईं।

स्वर -

लय और भाषा की सहायता से लोक गीतों की रचना की गई, लेकिन यह गद्य रुप में ही थी। फलस्वरुप इसे गद्य रुप में कहना अस्वाभाविक था। जब इन गीतों में विशिष्ट स्वरों को जोड़ा गया, तो इनमें जीवंतता और चेतना पैदा हुई। लय, भाषा और स्वर युक्त अनेक लोकगीतों की रचना होने लगी और विशेष अवसरों पर उनका सामूहिक गायन होने लगा। स्वरों की सहायता से गाए गए ये गीत और मधुर लगने लगे।

भाव -

भावनाविष्कार और रसोत्पादन यह संगीत की प्रमुख विशेषताएँ है। ये दोनों ही आपस में जुड़े हुए है। भावनाविष्कार से ही रस का जन्म होता है। समाज के विभिन्न मानदंडों और परंपराओं, रीति-रिवाजों, समारोह, सुख-दुःख ऐसे अवसरों के वास्तविक मूल्यों को चित्रित करके, उनसे रस की उत्पत्ति और पारंपारिक संस्कृति का दर्शन कराना यह लोकसंगीत का प्रमुख उद्देश्य है।

इससे ज्ञात होता है, कि लोकसंगीत का असली अविष्कार स्वर, लय, भाषा और भाव इन चार मूल तत्वों से हुआ है। स्वर और भाव का अनुपात लय और भाषा के अनुपात से कम होता है। लोकसंगीत में स्वरों की संख्या बहुत कम होती है। चार या पाँच स्वरों से अधिक नहीं होती। इन अलग-अलग लोकसंगीत के लिए जिन स्वरों की रचनाएँ की गईं उनसे ही आधुनिक राग निर्माण हुए। लोकसंगीत के अनेक गीतों में आधा सप्तक ही लिया गया है। जैसे- सा से प अथवा सा से म। विद्वानों ने इन चार-पाँच स्वरों में और स्वरों को मिलाकर एक संपूर्ण सप्तक का निर्माण किया और इसे थाट एवं राग का नाम दिया। लोकसंगीत के स्वरों का अध्ययन करने से पता चलता है, कि इसमें आधुनिक शुद्ध थाट के स्वर विद्यमान है। लोकसंगीत की स्वर रचनाओं में भूपाली, दुर्गा, सारंग, पहाड़ी आदि औड़व राग स्पष्ट रुप से देखने को मिलते हैं। अर्थात् लोकसंगीत के स्वर रचनाओं के आधार पर शास्त्रकारों ने इन रागों का निर्माण किया, यह स्पष्ट होता है। लोकसंगीत में अनेक गीतों की रचना विशिष्ट लय से या ताल से हुई। समय के साथ विभिन्न तालवाद्यों और स्वरवाद्यों का भी निर्माण हुआ। लोकसंगीत के सामान्य ताल और लय इनसे ही शास्त्रीय दादरा, कहरवा, झूमरा, रुपक आदि तालों का निर्माण हुआ। ठुमरी, टप्पा, होरी, कजरी आदि शास्त्रीय गायन शैलियों का मूल भी लोकसंगीत में ही निहित है। कुछ विद्वानों के अनुसार लोकसंगीत में प्रयुक्त दीर्घ एवं लघु ताल से ही ताल शास्त्र की रचना हुई है।

शास्त्रीय संगीत और लोकसंगीत-

शास्त्रीय संगीत और लोकसंगीत एक ही वृक्ष की दो शाखाएँ हैं। लोक संगीत के तत्वों का उपयोग करके शास्त्रीय संगीत ने खुद को समृद्ध किया है। शास्त्रीय संगीत के थाट, राग, वाद्य और नृत्य सभी लोक संगीत से ही आए हैं। इन सबकी जड़े लोक संगीत में देखी जा सकती हैं। संपूर्ण शास्त्रीय संगीत राग के विचार पर आधारित है और राग का मूल तत्व रंजकता है। लेकिन लोक संगीत में मधुर धुनों का उपयोग शब्दों के साथ मात्र रंजकता के लिए होता है। नियमों से बंधा होने के कारण शास्त्रीय संगीत में शब्द रंजकता को ज्यादा महत्व नहीं दिया जाता। दूसरी ओर शब्द और रंजकता लोक संगीत का मुख्य

उद्देश्य है। अधिकांश लोकगीतों में चार से अधिक स्वरों का प्रयोग नहीं होता। कुछ गीतों में तो दो स्वरों का ही प्रयोग होता है। विदर्भ में प्रचलित 'भुलाई' गीतो में बहुत से गीत दो स्वरों में ही हैं। जैसे-

सा रे - सा रे - सा रे - रे सा -
बा रा ऽ को सा ऽ आ हे ऽ कि ल्ला ऽ
सा रे - सा रे - सा रे - रे सा-
कि ल्ला ऽ म ध्ये ऽ आ हे ऽ बा ग ऽ ॥

इसके कई उदाहरण आदिवासी गीतों जैसे-कोरकू, गोंडी, सरहुल, कारम आदि गीत प्रकारों मे भी मिलते हैं। वहीं शास्त्रीय संगीत में पाँच स्वर से कम स्वरों का प्रयोग शास्त्र में स्वीकार्य नहीं है। कुछ तीन और चार स्वरों वाले राग इसके अपवाद हैं। राग की परिधि में स्वर और उसका विस्तार शास्त्रीय संगीत का आधार है। लेकिन लोकसंगीत में ऐसा नहीं, यहाँ स्वरों का प्रयोग केवल काव्य में भावों की अभिव्यक्ति सहायता के लिए किया जाता है। इसलिए लोकसंगीत में शास्त्रीय संगीत का स्वर विस्तार महत्व नहीं रखता, इसमें काव्य का महत्व अधिक होता है। लोकसंगीत में अधिकतर अंतरे भी स्थायी के समान ही होते है। अनेक लोकगीतों की रचनाओं में स्थायी और अंतरा की कल्पना भी नहीं की है। शास्त्रीय संगीत में बंदिशों का स्थायी और अंतरे के बीच एक स्पष्ट विभाजन होता है। बहुतांश अंतरे के सम स्थान पर तार षड्ज होता है। स्वरों की संख्या कम होने से यह लोकसंगीत में संभव नहीं, वहाँ स्थायी की स्वर रचना ही अंतरे में दोहराई जाती है, लेकिन इस में काव्य और कथन शामिल होने से इसमें माधुर्य रहता है। राज्यस्थान के सपनों, कुरजॉ, गिणगौर, बिनायक, पटेल्या, घोड़ी और बनड़ा-बनड़ी इन गीतों में यह देखने को मिलता है। शास्त्रीय संगीत में थाट के अंतर्गत स्वरों का निश्चित आरोहावरोह अनिवार्य है। लेकिन लोक संगीत में ऐसा कोई बंधन नहीं रहता। एक ही लोकगीत में भूप, देशकार, दुर्गा और सारंग राग भिन्न-भिन्न स्थानों पर देखने को मिलता है। बिहार के 'मकइया' गीत में सारंग और दुर्गा, राजस्थान के 'मांड' में देश और खमाज ऐसे कई उदाहरण मिल जाएंगे। स्वरों के अध्ययन से पता चलता है, कि लोक संगीत में कोमल गंधार और कोमल निषाद का प्रयोग अत्यंत दुर्लभ सा होता है। जिन गीतों में इन स्वरों का प्रयोग किया गया है, वे बहुत बाद के हैं। अतः इन गीतों पर शास्त्रीय संगीत के प्रभाव को नकारा नहीं जा सकता।

निष्कर्ष -

शास्त्रीय संगीत का जो रुप आधुनिक समय में प्रचलित है, वह लोक संगीत का ही एक रुप है जो नियमबद्ध है। उपरोक्त अध्ययन से सिद्ध होता है, कि शास्त्रीय संगीत लोकसंगीत का परिष्कृत रुप है। लोकसंगीत ही वह स्त्रोत है, जिससे संगीत की सभी विधाओं का जन्म हुआ और इसकी सहायता से यह फला-फूला। शास्त्रीय संगीत की विकसित और उन्नत अवस्था में लोक संगीत का स्थान बहुत महत्वपूर्ण है। शास्त्रीय संगीत धार्मिक और राज-दरबार के संरक्षण में तेजी से विकसित होकर नई शैलियों का निर्माण कर रहा है। लेकिन लोकसंगीत आज भी अपने प्राचीन संस्कृति को अपने में समाये हुए अपने परंपरागत गीत शैली और क्षेत्र के नाम से जाना जाता है। स्वर, ताल, लय और छंद इनके बंधन से बंधी रचना जो स्थायी और अंतरे के रुप में नियमबद्ध है और जिसमें काव्य का महत्व न्यूनतम होता है वह शास्त्रीय संगीत। इसके विपरीत सीधी-साधी क्षेत्रीय ग्रामीण भाषा, तीन, चार या पाँच स्वर युक्त, ताल और लयबद्ध गीत को लोकसंगीत कहते हैं।

संदर्भ ग्रंथ -

1) चोरघडे (केळकर) डॉ. विमल, महाविदर्भातील लोकसंगीतांचे संगीत, मनोहर ग्रंथमाला प्रकाशन, प्रथमावृत्ति : 1 ऑगस्ट 1987
2) गोस्वामी दिनेशचंद्र, लोक संगीत की पृष्ठभूमि और शास्त्रीय संगीत का आधार ग्रहण, 'संगीत' मासिक, संगीत कार्यालय, हाथरस (उ.प्र.), अंक दिसंबर 1971, पृ.क्र.15
3) कशाळकर, पं.ना.द., संगीत शिक्षणाच्या विविध पद्धति
4) सकाळ-स्वर विहार मासीक, मे-जून-जुलै 2008
5) रस्तोणी वंशिका, शास्त्रीय संगीत के विकास में लोकसंगीत की भूमिका
6) Global Folk Culture: Traditions & its Reflections 04-06, October 2018

उपशास्त्रीय संगीत की विधा - चैती

प्रो. लावण्य कीर्ति सिंह 'काव्या', मणिकान्त कुमार

शोध सारांश :-

'चैती' एक ऋतुगीत के अन्तर्गत गाए जानेवाली प्रमुख गायन-शैली हैं जिसका गायन आधुनिक समय में बहुत कम सुनने को मिलता है। धीरे-धीरे इसका प्रचार-प्रसार सामान्य लोगों के बीच बहुत कम होता जा रहा है। संगीत-ग्रंथों के अध्ययन से हमें यह जानकारी प्राप्त होती है कि चैती का प्रारंभिक स्वरूप लोकगीत पर ही आधारित था लेकिन यह शैली शास्त्रीय कलाकारों की गले में आकर उनके गले के अनुसार इसमें खटका, मुर्की, गमक आदि सांगीतिक हरकतों का प्रयोग होने से इसके स्वरूप में एक परिवर्तन हुआ और लोक-संगीत की चैती ने उपशास्त्रीय संगीत का रूप ले लिया। आधुनिक समय में चैती के कई गीतों का गायन, अलग-अलग क्षेत्रों के अनुसार किया जाता है, लेकिन उपशास्त्रीय संगीत के अन्तर्गत जिस चैती की प्रस्तुति की जाती है उसका स्वरूप अधिकतर बनारस क्षेत्र के शास्त्रीय एवं उपशास्त्रीय गायकों के द्वारा ही सुनने को मिलता है।

शब्द कुंजी–*चैती, उपशास्त्रीय, लोकगीत, दादरा, हो रामा*

सामान्यतः बोलचाल में 'उपशास्त्रीय' संगीत के लिए 'सेमी क्लासिकल' और 'लाईट क्लासिकल' नाम का भी प्रयोग किया जाता है। इस शैली के शब्द साधारण लोगों की समझ में भी आ जाती है जिससे इस शैली के श्रोताओं की संख्या दिनों-दिन बढ़ती जा रही है। आज के समय में जितने भी शास्त्रीय गायक हैं, उनका झुकाव उपशास्त्रीय संगीत की ओर हो रहा है। इसका कारण यह है कि यह शैली अधिक रसीली है। शास्त्रीय संगीत सिर्फ पढ़े-लिखे या इस विधा से जुड़े हुए लोगों को ही समझ में आती है और उपशास्त्रीय शैली सामान्य जन के लिए भी रूचिकर है। आधुनिक काल में शिक्षित लोगों का भी झुकाव इस संगीत की ओर काफी हो रहा है। इसलिए प्रत्येक गायक का झुकाव भी इसी संगीत की ओर हो रहा है तथा अपने शास्त्रीय संगीत की प्रस्तुति के बाद कम-से-कम एक उपशास्त्रीय रचना की प्रस्तुति अवश्य करते हैं और श्रोताओं को भी इसकी अपेक्षा रहती है।

आवश्यकता आविष्कार की जननी है और इसी के अनुसार लोगों को अपना स्वरूप बनाना पड़ता है। इसलिए आधुनिक समाज में शास्त्रीय संगीत का गायन सिर्फ घरानों एवं विश्वविद्यालयों तक ही सीमित हो रहा है। इस समय शास्त्रीय संगीत का लक्ष्य केवल रोजगार प्राप्त करना रह गया है। उसके बाद तो लोग उपशास्त्रीय संगीत की ओर झुकने लगते हैं। इसलिए आज श्रोता के अनुकूल शास्त्रीय गायक भी इस शैली की ओर झुक रहे हैं। यही कारण है कि अधिकतर गायक अपनी गायन की समाप्ति के बाद उपशास्त्रीय संगीत की कोई एक विधा जैसे ठुमरी, दादरा, कजरी, चैती आदि की प्रस्तुति करते हैं। संगीत विद्वानों ने कहा है कि शास्त्रीय संगीत का जन्म लोक संगीत से ही हुआ है क्योंकि लोक संगीत धुन प्रधान होता है और इन्हीं धुनों से रागों का निर्माण किया गया है या यों कहें कि धुनों में

* प्रोफेसर, वि.वि. संगीत एवं नाट्य विभाग, ल.ना.मि.वि.वि., दरभंगा

** शोध छात्र, वि.वि. संगीत एवं नाट्य विभाग, ल.ना.मि.वि.वि. दरभंगा

समाहित रागों को खोज निकाला गया। राग के आलाप द्वारा विस्तार देकर तथा नियमों में बांधकर अलग-अलग शैलियों को विकसित किया गया, इसी शैली को शास्त्रीय संगीत शैली कहा गया[1]। इस संगीत के सम्बन्ध में एक और मान्यता यह है कि शास्त्रीय संगीत की परम्परा वैदिक काल से ही चलती हुई आ रही है। गान्धर्ववेद इसका प्रमाण है, इसलिए ध्रुपद-धमार गायक अपने संगीत को वैदिककालीन संगीत मानते हैं।[2]

कारण चाहे जो भी हो पर सर्वप्रथम शास्त्रीय संगीत का प्रादुर्भाव हुआ ऐसी बात सम्भव नहीं है। ये जरूर है कि लोक संगीत के ही नियमों में कुछ सांगीतिक नियमों का पालन करके शास्त्रीय संगीत का निर्माण किया गया है। उसके बाद इन कठोर नियमों में थोड़ी छूट देकर उपशास्त्रीय संगीत शैली का निर्माण किया गया। इस शैली का गायन ज्यादातर मिश्र रागों में किया जाता है। इस गायन शैली की प्रस्तुति के लिए शास्त्रीय नियमों का बंधन नहीं होता है, इसलिए इसमें पूर्ण सौन्दर्य की प्राप्ति होती है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि उपशास्त्रीय संगीत शास्त्रीय संगीत के बहुत करीब होता है। अगर कोई निश्चित नियमों से बंधा हुआ होता है तो उसे शास्त्रीय संगीत एवं नियम-शिथिल हो तो उसे उपशास्त्रीय संगीत कहते हैं।

आधुनिक समय में उपशास्त्रीय संगीत के अन्तर्गत विभिन्न विधाओं का समावेश हुआ है जिसका गायन गायक करते हैं। इन शैलियों में शास्त्रीय पक्ष की अपेक्षा भाव-सौन्दर्य एवं रस-माधुर्य की प्रधानता दी जाती है। इसमें पद के साहित्य-सौन्दर्य को आधार मानकर उसके भाव पक्षपर बल दिया जाता है। इन भावों को स्पष्ट करने का माध्यम स्वर ही है। इस संगीत में श्रृंगारिक भावना प्रबल होती है जिससे यह शैली अधिक रसीली हो जाती है। अधिक रसीली एवं चपल होने के कारण इस शैली का गायन गम्भीर प्रकृति के रागों एवं तालों में सम्भव नहीं होता इसलिए इसका गायन चंचल प्रकृति के रागों एवं तालों में किया जाता है। कुछ संगीत विद्वान इस शैली को चंचल प्रकृति का संगीत ही मानते हैं, वह इसलिए कि इस शैली को अधिक गम्भीर नहीं बनाया जा सकता।

इस शैली में स्वर की चमत्कारिकता पर अधिक बल दिया जाता है। अतः इस शैली का गायन के लिए विशेष प्रकार के अभ्यास की आवश्यकता होती है।

उपशास्त्रीय संगीत की प्रमुख विधाएँ इस प्रकार हैं :-(1). ठुमरी, (2). दादरा, (3). टप्पा, (4). होरी, (5). कजरी, (6). चैती, (7). सादरा इत्यादि।

चैती मुख्य रूप से एक ऋतु प्रधान गीत का प्रकार है जो होली की समाप्ति के बाद चैत महीने में गाया जाता है। चैत शब्द की उत्पत्ति 'चित्रा' में 'अण्' प्रत्यय लगने से हुआ है। यह एक चन्द्रमास का नाम है जिससे चन्द्रमा चित्रा नक्षत्र में स्थित रहता है। यह महीना अंग्रेजी के मार्च-अप्रील में पड़ता है। इससे बने और कई शब्द जैसे- चैत्री, चैत्रिक, चैत्रिन हैं।[3] इन सभी शब्दों का अर्थ भी चैत मास से ही होता है। लोकभाषा का चैती शब्द चैत्री के अपभ्रंश के रूप में प्रयोग किया जाता है, जिसका अर्थ चैत मास की पूर्णिमा होता है।

प्राकृतिक सुन्दरता की दृष्टि से चैत मास का एक अनुपम सौन्दर्य है। इस महीने में कोयल कूकने लगती है, भौरें गूंजार करने लगते हैं, आम की नई-नई मंजरों में छोटे-छोटे दाने उग आते हैं, पेड़ों पर नयी-नयी पत्तियाँ का उगना इस महीने की अनुपम छटा को विखेरता है।

चैत की कहानी, संध्या शुभ्र चांदनी और कोकिला के मादक स्वरों का वर्णन करते हुए प्रसिद्ध कवि कालिदास कहते हैं कि :- चैत मास की बासंतिक सुषमा से परिपूर्ण लुभावनी शामें छिटकी चाँदनी, कोयल की कूक, सुगन्धित पवन, मतवाले भौरें की गूँजार और रात में आसव-पान से श्रृंगार भाव को जगाए रखने वाली रसायन ही है।[4]

डॉ. सुधा सहगल के अनुसार - होली के पर्व के पश्चात् चैत मास का प्रारंभ होता है तथा इस विधा का रसास्वादन विशेष रूप से इसी महीने में ही किया जाता है। अधिकांशतः इन गीतों में ऋतु वर्णन के साथ-साथ विरह का रूप भी स्पष्ट दिखाई देता है। साहित्य में भगवान राम का स्मरण निहित होता है। इन गीतों में कला एवं भाव दोनों पक्षों का प्रभाव होता है। इन गीतों की प्रतीक योजना में भाषा सौष्ठव है, सुन्दर शैली है। इस शैली में जो

अनायास-भाव सौन्दर्य एवं अनुभूति प्राप्त होती है इसका कारण इसके स्वाभाविक रचना प्रणाली है।[5] चैती गीतों में कहीं-कहीं भाव व्यंजना अत्यंत अनुपम हो उठती है और उसमें व्यंग्य तथा चंचलता भी होती है।

चैती गायन शैली के उद्‌भव का प्रश्न बहुत ही जटिल है।लोक संगीत मानव की आदिम एवं प्रारंभिक अवस्था का संगीत है जिससे यह स्पष्ट होता है कि इसका बीज सृष्टि के साथ ही अंकुरित हो गया था। चैती लोक संगीत का ही एक प्रकार है, अतः इसका उद्‌भव लोकसंगीत के साथ ही माना जाता है। यह गीत ऋतु गीत के अन्तर्गत आता है जिससे इसे मौसमी गीत भी कहा जाता है। इस गीत के उद्‌भव का कोई निश्चित इतिहास नहीं है। लोक संगीत की यह सहज एवं सुलभ शैली अनायास ही एक कंठ से दूसरे कंठ में आकर के लोक में प्रचलित हो गई। धीरे-धीरे इस शैली का प्रचार सम्पूर्ण लोक में हो गया जिससे लोगों के बीच इसकी लोकप्रियता बढ़ती गई।

चैती का गायन लोक संगीत के साथ-साथ उपशास्त्रीय संगीत के अन्तर्गत भी किया जाता है। इसका उपशास्त्रीय स्वरूप मुख्य रूप से ठुमरी में ही देखने को मिलता है इसलिए चैती का गायन भी ठुमरी की तरह मिश्र रागों में किया जाता है। जहाँ हमें एक ओर चैती में रस भाव से युक्त ठुमरी का आस्वादन मिलता है वहीं दूसरी ओर ध्रुपद-धमार जैसे शास्त्रीय संगीत में गायी जाने वाली चैतियों में शास्त्रीय संगीत की छाया स्पष्ट रूप से देखने को मिलती हैं।

लोक संगीत की चैती के पदों को कभी शास्त्रीय गायक ने सुना और उसे अपने शैली में उतार कर गाना प्रारंभ किया होगा। चैती की मौलिकता में उन्होंने कहीं कमी नहीं की, तथा उसकी मौलिकता को सुरक्षित रखते हुए अपनी ओर से उन्होंने कहीं-कहीं सुन्दर स्वर समूहों का प्रयोग करके चैती का शास्त्रीयकरण कर दिया। इन चैतियों को उन्होंने उपशास्त्रीय शैली में गाया तथा इसे ऐसा रूप प्रदान किया जिसका आनंद ग्रामीण एवं शहरी दोनों क्षेत्रों के लोग इसे समान रूप उठा सके। इसी कारण यह शैली उपशास्त्रीय संगीत के अन्तर्गत कही जाने लगी, तथा इसका विकास गांव से शहर और शहर से महानगर की ओर होता चला गया।

बिहार में भी चैती का क्षेत्र सीमित था। इसका प्रचलन उत्तर बिहार में नहीं था, किन्तु घूमते-फिरते कहीं से यह गीत सुनाई दिया और मनोहर लगा जिसके फलस्वरूप मिथिला के निवासियों ने भी इसे प्रेम के साथ अपना लिया और चैती के पद यहां भी लिखे जाने लगे। इस तरह चैती गीतों का सम्पर्क सूत्र दिनों-दिन बढ़ता ही चला गया। चैती गीतों की मौलिकता बरकरार होकर विभिन्न शास्त्रीय गायक के गले में जाने के कारण इसकी सुन्दरता दिनों-दिन बढ़ती ही गई। इस तरह से चैती गाँव की छोटी चहारदिवारियों से निकलकर शहर के शास्त्रीय मंच पर आ गई और विभिन्न वाद्ययंत्रों से विभूषित होकर सम्पूर्ण जनमानस में छा गई।

आधुनिक समय में चैती का गायन लोक एवं उपशास्त्रीय दोनों संगीत के अन्तर्गत किया जाता है। चैती गीत के मुख्य रूप से दो भाग होते हैं, स्थाई तथा अन्तरा। एक चैती गीत में एक से अधिक अन्तरा भी होते हैं। लोक संगीत की चैती में स्थाई का गायन करने के बाद अन्तरा का गायन किया जाता है। सभी अन्तराओं का गायन करने के बाद अंतिम अन्तरा की समाप्ति में इसका गायन द्रुत कहरवा ताल में किया जाता है तथा दो-तीन आवर्तन के बाद इसकी समाप्ति की जाती है। इस गीत में अधिकतर 'हो रामा' शब्द का प्रयोग किया जाता है जिसमें भगवान श्रीराम की बाल-अवस्था से लेकर सम्पूर्ण जीवन का वर्णन किया जाता है जैसे :-

''बाजे रे बाजे अवध बधैया हो रामा,
राम, लखन, भरत, शत्रुध्न,
प्रकट भयो चारों भैया हो रामा।
नृप दशरथ अति उदिस भये,
कंचन देत लुटैया हो रामा॥'' [6]

इस प्रकार, कई चैती गीत हैं जो श्रृंगार रस से ओत-प्रोत हैं। इसमें मुख्य गायक इस गीत का गायन मध्य सप्तक में करते हैं और उनके सहयोगी गायक लोक संगीत की चैती में इसका गायन तार सप्तक में करते हैं जिससे सुनने में यह अत्यंत प्रिय लगता है।

उपशास्त्रीय संगीत की चैती गीत की भी रचना लोकसंगीत की तरह ही होती हैं। इस चैती गीत के स्थाई का गायन मध्य विलंबित लय में प्रारंभ करते हैं। उसके बाद इसके स्थाई के शब्दों को विभिन्न प्रकार के स्वर-समूहों में पिरोकर इसका अलग-अलग तरीके से बोल-बनाव किया जाता है जिससे अनेक भावों एवं रसों की उत्पत्ति होती है।[7] इस प्रकार इसके स्थाई का फैलाव करते हुए अन्तरा का गायन किया जाता है। अंतिम अन्तरा के गायन के बाद इसमें लोक संगीत की चैती की तरह ही इसका गायन द्रुत कहरवा ताल में किया जाता है। कई आवर्तन तक इसका गायन द्रुत लय में करने के बाद पुनः पूर्व ताल में इसका गायन किया जाता है और तिहाई के साथ समाप्त किया जाता है। कभी-कभी शास्त्रीय गायक इसके गायन के बीच में भी सौन्दर्य उत्पन्न करने के लिए इसका गायन द्रुतलय में करते हैं जिसके साथ संगतकार भी अपने वादन में विभिन्न प्रकार के लग्गी-लड़ियों का प्रयोग करते हैं जिससे उसकी सुन्दरता में चार चाँद लग जाती है। इस प्रकार उपशास्त्रीय संगीत की चैती की सुन्दरता शास्त्रीय गायकों के गले में आकर और निखर गया। आधुनिक काल में बनारस के सुप्रसिद्ध गायक छन्नूलाल मिश्रा उपशास्त्रीय संगीत सुप्रसिद्ध चैती गायक हैं, जिनके कई चैती गीतों का रिकार्डिग उपलब्ध है।

चैती की गायन के लिए ज्यादातर मिश्र रागों का प्रयोग किया जाता है। इसकी धुनें काफी, पहाड़ी, पीलू आदि रागों पर आधारित होती है। इसके गायन के लिए दीपचंदी, अद्धा, तिताला एवं कहरवा तालों का प्रयोग किया जाता है एवं इसके साथ हारमोनियम, तबला, ढ़ोलक आदि वाद्ययंत्रों की संगति की जाती है।

संदर्भ

1. उपशास्त्रीय संगीत अंक जनवरी 2002, एस. एस. पाण्डे के आलेख से पृ.09
2. वही, पृ. 09
3. सहगल, डॉ. सुधा, बेगम अख़्तर व उपशास्त्रीय संगीत, पृ. 07
4. द्विवेदी, डॉ. पूर्णिमा, ठुमरी एवं महिला कलाकार, पृ. 189
5. इण्टरनेट, www.gaonconnection. com
6. सहगल, डॉ. सुधा, बेगम अख़्तर व उपशास्त्रीय संगीत, पृ. 06
7. शर्मा, डॉ. अमिता, शास्त्रीय संगीत का विकास, पृ. 101

आधुनिक भारत में संगीत-शिक्षण का गौरवशाली इतिहास

*प्रो. पुष्पम नारायण, **निधि कुमारी

शोध सारांश :

भारत में संगीत-शिक्षा का गौरवशाली इतिहास रहा है। 18वीं शताब्दी में 'घराने' एक प्रकार से औपचारिक संगीत-शिक्षा के केन्द्र थे परंतु ब्रिटिश शासन काल का आविर्भाव होने पर घरानों की रूपरेखा कुछ शिथिल होने लगी क्योंकि पाश्चात्य संस्कृति के व्यवस्थापक कला की अपेक्षा वैज्ञानिक प्रगति को अधिक मान्यता देते थे और आध्यात्म की अपेक्षा इस संस्कृति में भौतिकवाद प्रबल था। भारतीय संस्कृति की आध्यात्मिक पृष्ठभूमि के अन्तर्गत कला को जो पवित्रता एवं आस्था का स्थान प्राप्त था तथा जिसे कुछ मुसलमान शासकों ने भी प्रश्रय दिया और संगीत को मनोरंजन का उपकरण मानते हुए भी इसके साधना पक्ष को विस्मृत न करते हुए संगीतज्ञों तथा शास्त्रज्ञों को राज्य अथवा रियासतों की ओर से सहायता देकर संगीत के विकासात्मक पक्ष को विस्मृत नहीं किया। परन्तु ब्रिटिश राज्य के व्यवस्थापकों ने संगीत कला के प्रति भौतिकवादी दृष्टिकोण अपनाकर उसे यद्यपि व्यक्तित्व के विकास का अंग माना, परंतु यह दृष्टिकोण आध्यात्मिकता के धरातल पर स्थित न था। उन्होंने अन्य विषयों के समान ही एक विषय के रूप में ही इसे स्वीकार किया, परन्तु वैज्ञानिक प्रगति की प्रभावशीलता के कारण यह विषय अन्य पाठ्य विषयों के बीच लगभग उपेक्षित ही रहा।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु :

घराने, औपचारिक, संगीत-शिक्षा, ब्रिटिशकाल, पाश्चात्य संस्कृति आध्यात्मक, भौतिकवाद, मनोरंजन, संगीतज्ञ रियासत।

प्रस्तावना :

भारतीय संगीत के पुनरूत्थान की दृष्टि से इस समय में घरानों की अंतिम कड़ी के रूप में पं. भातखण्डे एवं पं. विष्णु दिगम्बर पलुस्कर यह दो ऐसे महान संगीतज्ञ हुए जिन्होंने संगीत के पुनरूद्धार के लिए परिश्रम किए और संगीत के आध्यात्मिक धरातल को सुदृढ़ रखते हुए ही उसको सर्वजन सुलभ बनाने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। पं. भातखण्डे जी स्वयं एक शिक्षित व्यक्ति थे जिन्होंने प्रमुख रूप से विधि (Law) शिक्षा ग्रहण की थी परंतु संगीत में विशेष रूचि रखने के कारण उन्होंने संगीत को वर्तमान स्थिति के अनुकूल बनाने की दृष्टि से संगीत के कुछ मान्य सिद्धान्तों एवं क्रियात्मक प्रयोगों में परिवर्तन व परिवर्द्धन किए। संगीत शास्त्र (1-4) 'संगीत पद्धतियों का तुलनात्मक अध्ययन, उत्तर भारतीय संगीत का इतिहास, श्री मल्लक्ष्य संगीतम' क्रमिक पुस्तक मालिका (1-6) आदि ग्रंथ लिखकर संगीत को विद्यार्थियों के लिए सुलभ बनाने का प्रयत्न किया। अनेकानेक संगीतज्ञों से मिलकर प्राचीन बंदिशें एकत्रित करने का तथा सरल स्वरलिपि पद्धति का निर्माण कर उन बंदिशों को संरक्षण प्रदान किया।

* शोध निर्देशिका, विभागाध्यक्ष, विश्वविद्यालय संगीत एवं नाट्य विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा
** गवेषिका

उन्होंने ही रागों को दस थाटों में वर्गीकृत करने का सफल प्रयास किया।

भारतीय संगीत के पुनरूत्थान में पं. विष्णु दिगम्बर पलुस्कर का भी योगदान महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने भिन्न-भिन्न स्थानों का भ्रमण करके संगीत का प्रचार एवं प्रसार करते हुए समाज में पुनः संगीत के प्रति सम्मानीय भाव स्थापित किया जो सम्भवतः मध्यकाल एवं उत्तर मध्यकाल की राजनीतिक परिस्थितियों के कारण लुप्त हो चुका था और संगीत साधारण जनता के लिए केवल मात्र विलासिता का उपकरण ही रह गया था। पं. विष्णु दिगम्बर ने भी संगीत बाल प्रकाश, संगीत बाल बोध आदि पुस्तकें लिखकर विद्यार्थियों के लिए संगीत सामग्री को उपलब्ध कराया तथा स्वतंत्र रूप से एक स्वरलिपि व लय के सूक्ष्म विभाजनों को सांकेतिक चिह्नों द्वारा इंगित करने तथा प्राप्त बंदिशों को संरक्षण प्रदान करने का कार्य किया। इसके अतिरिक्त इन दोनों महान विभूतियों के प्रयत्नों से अनेक संगीत विद्यालय स्थापित किए गए।

18वीं शताब्दी का अन्त तथा 20वीं शताब्दी के आरंभ भारतीय संगीत के पुनरूत्थान का काल माना जाता है। इस समय वह कला जो सभ्य समाज से बहिष्कृत व तिरस्कृत होकर राजा महाराजाओं की विलासपूर्ण मनोरंजन का साधन बन कर रह गई थी। अनुकूल धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक वातावरण से एक अपूर्व चेतना का कारण बनी जिसका उदाहरण बड़ौदा में स्वर्गीय मौलाबक्श धग्गे खाँ द्वारा 1886 में प्रस्थापित सर्वप्रथम संगीत विद्यालय था जो बाद में बड़ौदा रियासत की ओर से प्रदान की गई आर्थिक सहायता से संचालित किया जाता था। सन् 1901 में लाहौर में की गई गंधर्व महाविद्यालय की स्थापना संगीत शिक्षा के क्षेत्र में एक क्रान्तिकारी परीक्षण था जिसमें प्राचीन गुरूकुल प्रणाली तथा आधुनिक संस्थागत शिक्षण प्रणाली का अद्भुत समन्वय था। इस विद्यालय में निश्चित समय पर आकर सीखने वाले जिज्ञासुओं के रूप में रहकर गुरु के सान्निध्य में दीर्घकाल तक संगीत की साधना करते रहे।

वस्तुतः पं. विष्णु दिगम्बर पलुस्कर के समक्ष एक ओर भारतीय संगीत आध्यात्मिकता थी तो दूसरी ओर तत्कालीन ब्रिटिश सरकार द्वारा स्थापित ईसाई मिशनरी संस्थाओं के रूप में चलाए गए कॉलेज आदि की व्यवस्था थी जिसमें शिक्षा प्रदान करना एक मानवीय लक्ष्य था तथा सेवा-भाव की प्रधानता थी, अतः पाँच मई 1901 को लाहौर में गान्धर्व महाविद्यालय की स्थापना इसी उद्देश्य से की गई। इसके लिए सुव्यवस्थित अभ्यास क्रम तथा सुसंस्कृति निर्व्यसनी एवं चरित्रवान, कुशल संगीत शिक्षकों का प्रबन्ध भारत के बड़े-बड़े शहरों में स्थापित गांधर्व महाविद्यालय की अनेक शाखाओं के लिए किया गया। इन शिक्षकों को 'उपदेशक' की संज्ञा दी गई। 1908 में गांधर्व महाविद्यालय का एक केन्द्र बम्बई में खोला गया। प्रयोगात्मक रूप में यह विद्यार्थियों के भोजन-वस्त्रादि का प्रबन्ध विद्यालय की ओर से किया गया। विद्यालय की साफ-सफाई, भोजन प्रबन्ध, सामग्री चयन आदि सभी व्यवस्थाओं का भार विद्यार्थियों पर डाला गया और एक प्रकार से विद्यालयीय वातावरण को गुरूकुल वातावरण के समकक्ष बनाने का प्रयत्न किया गया। अनुशासन, संयम, नियमबद्धता तथा क्रम को विशेष महत्त्व देते हुए एवं धार्मिक संस्कारों की शिक्षा से अनुप्राणित संगीत शिक्षा प्रदान करना ही उसका प्रमुख लक्ष्य माना गया।

संगीत शिक्षा को सामाजिक संरक्षण प्रदान करने की दृष्टि यह विद्यालय समाज की धन-राशि पर ही आश्रित था। स्वयं संगीत कार्यक्रम आयोजित करके जो धन जनता से प्राप्त होता था उसे ही पुनः विद्यालय स्तर पर खर्च कर दिया जाता था क्योंकि पंडित जी का उद्देश्य धन अर्जित करना नहीं वरन् संगीत विद्या को अन्य विद्याओं के समान समाज में एक प्रतिष्ठित स्थान दिलवाना था। फलस्वरूप उसके नियमन के लिए तथा संगीत शिक्षा को विधिवत बनाने के लिए पाठ्यक्रम, पाठ्यपुस्तकों, स्वरलिपि तथा परीक्षा के उपरान्त कुछ उपाधि वितरण का उपयोग में करके संगीत शिक्षा को एक विशिष्ट आकार प्रदान करने का प्रयास किया गया।

धीरे-धीरे पूना, नागपुर, बम्बई तथा अन्य अनेक स्थानों पर गान्धर्व महाविद्यालय की अनेक शाखाए

स्थापित हो गई। इन शाखाओं में प्रबन्ध की एकरूपता स्थापित करने की दृष्टि से दिसम्बर 1931 ई. में अखिल भारतीय गान्धर्व महाविद्यालय मंडल की स्थापना पं. नारायण मोरेश्वर खरे एवं पं. शंकर राव व्यास के नेतृत्व में की गई, जिसके संचालन एवं संगठन की व्यवस्था में पंडित ओंकार नाथ ठाकुर, पं. वामन राव आम्टे, प्रो. देवधर आदि (पं. विष्णु दिगम्बर पलुस्कर के अनेक शिक्षक) ने अपने महत्त्वपूर्ण योगदान से मंडल के संचालन में निरन्तर वृद्धि की। इस संस्था के माध्यम से संगीत शिक्षा कार्य, संगठनात्मक कार्य, कलाकारों एवं विद्वानों की सामाजिक प्रतिष्ठा का कार्य, शिक्षकों एवं कलाकारों की सामाजिक समस्याओं के समाधान खोजने का कार्य, संगीत की साहित्य सुदृढ़ता का कार्य, संशोधनात्मक कार्य तथा जनसाधारण में शास्त्रीय संगीत के प्रति अभिरूचि उत्पन्न करने आदि का कार्य अत्यन्त सुचारू रूप से किया गया। यद्यपि विष्णु दिगम्बर जी ग्वालियर घराने के अनुयायी थे परन्तु उनके द्वार आकर, प्रस्थापित 'गान्धर्व महाविद्यालय' विशिष्ट गायकी की परम्परा का विस्तार करनेवाली संस्था के रूप में स्थापित नहीं की गई थी बल्कि इसका उद्देश्य केवल मात्र संगीतकारों को संगीत क्षेत्र में कार्य करना, संगीतकारों से संगीत शिक्षण कार्य में लाभ उठाना तथा संगीतकारों के लिए समाज में प्रतिष्ठा स्थापित करना और उन सब कार्यों से संगीत को अन्य कलाओं तथा विधाओं के समान स्तर पर सामाजिक रूप से ग्राह्य बनाना था। अतः संगीत के प्रति आस्था रखनेवाला जिज्ञासु किसी भी घराने या किसी भी सम्प्रदाय का अनुयायी क्यों न हो, इस संस्था में संगीत सीखने का अधिकारी हो सकता था। इस प्रकार विष्णु दिगम्बर जी के घराना परम्परा से संगीत की शिक्षा संस्थागत शिक्षण के रूप में संगीत शिक्षा के प्रचार एवं प्रसार के कार्य में महान योगदान दिया।

गान्धर्व महाविद्यालय मंडल की सफलता का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि प्रारंभिक से लेकर विशारद अलंकार एवं आचार्य स्तर की परीक्षा तक गान्धर्व महाविद्यालय के लगभग 450 केन्द्रों की ओर से लगभग तीस हजार परीक्षार्थी प्रतिवर्ष परीक्षा देते थे। इस सम्पूर्ण व्यवस्था में लगभग दो हजार से अधिक संगीत शिक्षक कार्यरत हैं। मंडल के प्रकाशन विभाग द्वारा संगीतोपयोगी पुस्तकों का प्रकाशन तथा 'संगीतकला बिहार' पत्रिका का प्रकाशन विशेष रूप से उल्लेखनीय रहा है। मंडल की ओर से त्रैवार्षिक अखिल भारतीय संगीत शिक्षक सम्मेलन का आयोजन, संगीत शिक्षकों की समस्याओं, विचार विनिमय, मार्ग दर्शन, संगीत शिक्षा की गतिमानता, शास्त्र और क्रिया में एकसूत्रता आदि लाने की दृष्टि से अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुआ है।

पं. विष्णु दिगम्बर जी के शिष्यों में पं. विनायक राव पटवर्धन ने 'नाट्य संगीत प्रकाश', 'राग विज्ञान' (1-7), 'बाल-संगीत (23), 'माझे गुरु चरित्र' आदि कई पुस्तकें संगीत के शैक्षणिक दृष्टिकोण से लिखी और 1952 ई. में विष्णु दिगम्बर संगीत विद्यालय' की स्थापना की। पं. विष्णु दिगम्बर पलुस्कर के पुत्र पं. दत्तात्रेय विष्णु पलुस्कर को भी उन्होंने संगीत की शिक्षा प्रदान की। पं. ओंकारनाथ ठाकुर ने 'प्रणव भारती' तथा 'संगीतांजलि' (1-6) नामक पुस्तकें लिखकर संगीत की सेवा की। पं. बी.आर. देवधर ने बम्बई में 'स्कूल ऑफ इंडियन म्यूजिक' नामक संस्था की स्थापना जिसका उद्घाटन पं. विष्णु दिगम्बर ने 13 नवम्बर 1925 को अपने करकमलों से किया। गान्धर्व महाविद्यालय के आधार पर ही इस संस्था में भी रविवार को एक घंटे के लिए निःशुल्क शिक्षण प्रारंभ किया गया। संगीत के प्रचार और प्रसार की दृष्टि से विद्यालय की ओर से गुणी कलाकारों को आमंत्रित कर जलसे आयोजित करने का कार्य भी किया गया। संस्था के संचालन में आर्थिक कठिनाइयों के कारण शिष्यों ने समाज के घनिष्ठ वर्ग से धन इकट्ठा करना आरंभ किया। इस प्रयास को व्यवस्थित रूप देने की दृष्टि से श्री मोतीराम पैंजी ने 'बाम्बे म्यूजिकल सर्कल' नामक संस्था की स्थापना की।

'बाम्बे म्यूजिकल सर्कल' के प्रत्येक सदस्यों से प्रतिमास एक रूपया चन्दे के रूप में लिया जाता था। संस्था में विविध जलसों और सांगीतिक कार्यक्रमों

से प्रभावित होकर सिनेकृष्ण कम्पनी के संचालक ने 1931 में बम्बई में स्कूल ऑफ इंडियन म्यूजिक का पहला चित्रपट (वृत्तचित्र) तैयार किया। इस प्रकार संगीत के क्षेत्र में पं. विष्णु दिगम्बर जी ने जहाँ संगीत के क्रियात्मक पक्ष को समाज में प्रवाहित करने का सफल एवं सतत् प्रयास किया वह संगीत शिक्षण के शास्त्र पक्ष में पं. भातखंडे का योगदान अपूर्व एवं अलौकिक रहा। 1909-1910 से भातखंडे जी के ग्रंथों का सृजनकाल आरंभ होता है। उन्होंने सर्वप्रथम 'श्रीमल्लक्ष्य संगीतम्' नामक ग्रंथ संस्कृत भाषा में लिखा और 'चतुर' उपनाम से प्रकाशित कराया, तत्पश्चात् 1930 ई. में 'हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति' नामक ग्रंथ अपने निजी काम 'विष्णु शर्मा' के नाम से प्रकाशित कराया। रागों के दस थाटों में विभाजन करते हुए रागों के प्रत्यक्ष उदाहरण देकर उसके स्वरूप तथा चलन भेद स्पष्ट करनेवाली तालबद्ध सरगमों का संग्रह करके 'स्वर मल्लिका' नामक पुस्तक को प्रकाशित कराया। इसी काल में श्री गणपति बुक भीलवड़ीकर से 400 गीत प्राप्त किए। इन्होंने दक्षिण के पं. रामामात्यकृत 'स्वरमेल कलानिधि' का अनुवाद किया। तत्पश्चात् 'संगीत परिजात' राग विबोध, 'संगीत सारामृतोद्धार' की श्रुति स्वर चर्चा पर टिप्पणी देकर उन्हें प्रकाशित कराया। 1911 ई. में अष्टोत्तर शतलाल लक्ष्मण' शीर्षक के ताल शास्त्र पर संस्कृत भाषा में तथा संगीत रत्नाकर' एवं संगीत दर्पण के स्वराध्यायों के मूल पाठ सहित गुजराती में भाषान्तर तथा प्रकाशन कराया। अप्पा तुलसीकृत 'राग कल्पद्रुमोकर' 'राग चन्द्रिका सार' तथा पुण्डरीक विट्ठल के सद्रादय' का भी प्रकाशन कराया।

1914 में हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति' का द्वितीय भाग, पुण्डरीक विट्ठी कृत 'रागमाला', राग मुंजरी अप्पा तुलसीकृत 'अभिनव तालम प्रकाशन कराने के साथ-साथ शारदा संगीत मंडल के तत्वावधान में संगीत की शिक्षा का कार्य भी प्रारंभ किया। 1915-16 ई. में बड़ौदा में आयोजित अखिल भारतीय संगीत समारोह के सचिव पद से अंग्रेजी वक्तव्य दिया। सन् 1917 में ग्वालियर में 'माधव संगीत विद्यालय' की स्थापना की गई। यहाँ के विद्यालय का कार्य राजा भैया पूछ वाले को सौंपा गया। इसी बीच 'क्रमिक पुस्तक मालिका' के प्रथम भाग तथा भावभट्ट द्वारा रचित अनूप संगीत 'रत्नाकर' तथा संगीत अनुपांकुश का प्रकाशन भी कराया। 1920 ई. में बड़ौदा में संगीत विद्यालय की स्थापना की 1920 ई. में ग्वालियर एवं बड़ौदा के विद्यालयों में पाठ्यक्रम निर्धारण हेतु पाठ्यपुस्तकों की योजना बनाकर 1921 ई. में 'क्रमिक पुस्तक मालिका के द्वितीय भाग, संस्कृत भाषा के स्वरचित 'अभिनव राग मंजरी' तथा भावभट्ट विरचित 'अनूप संगीत विलास' का प्रकाशन कराया। 1922 ई. में हरिद्वार में एक सेमिनार का आयोजन करके भाषा एवं राग शुद्धि की दृष्टि से सर्वमान्य पाठ विरचित किए। इसी वर्ष ' क्रमिक पुस्तक मालिका' का तृतीय भाग भी प्रकाशित कराया।

1923 ई. माधव संगीत विद्यालय में स्नातकीय स्तर की परीक्षा का संचालन कराया तथा क्रमिक पुस्तक मालिका' का चतुर्थ भाग भी प्रकाशित कराया। 1925-26 ई. में अखिल भारतीय संगीत परिषद के चतुर्थ अधिवेशन को आयोजित किया तथा मैरिस कॉलेज ऑफ म्यूजिक की स्थापना लखनऊ में की जो भातखण्डे संगीत विश्वविद्यालय के नाम से विख्यात है। 1927 ई. राग दर्पण' का प्रकाशन करने के उपरान्त 1928 ई. में लखनऊ के विद्यालय की व्यवस्था अपने शिल्प श्रीकृष्ण नारायण रातंजनकर को सौंप दी। 1929 ई. से 1939 ई. के मध्य 'क्रमिक पुस्तक मालिका' के पाँचवें व छठे भाग का लेखन कार्य किया। 1932 ई. में ग्वालियर व लखनऊ के विद्यालयों में परीक्षाओं का संचालन किया तथा हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति का चतुर्थ भाग प्रकाशित कराया। ये सभी पुस्तकें संगीत के विद्यालयों के संगीत के पाठ्य क्रम में अत्यन्त उपयोगी है।

निष्कर्षः

भारतीय संगीत का जो वर्तमान स्वरूप दृष्टिगत होता है, इसका एक लम्बा इतिहास रहा है। भारतीय संगीत के पुनरूत्थान में खासकर पं. भातखण्डे एवं पं. विष्णु दिगम्बर जो घराने के अंतिम कड़ी थे,

महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। संगीत शिक्षा से संबंधित, पाठ्य क्रम, पाठ्यपुस्तक तथा विद्यालय स्थापित करने में इन दो व्यक्तियों की सराहनीय भूमिका रही है। संगीत बाल बोध, संगीत बाल प्रकाश आदि पुस्तकें लिखकर विद्यार्थियों के लिए संगीत सामग्री को उपलब्ध कराया। साथ ही स्वतंत्र रूप से एक स्वरलिपि पद्धति का निर्माण भी कराया। इन दोनों महान विभूतियों के प्रयत्नों से अनेक संगीत विद्यालय व महाविद्यालय भी स्थापित किए गए। हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति के सभी भाग वर्तमान संगीत विद्यालयों, महाविद्यालयों के लिए महत्त्वपूर्ण पुस्तकें सिद्ध हुई है।

संदर्भ सूची-

1. पाण्डेय विजय कुमार, भारतीय संस्कृति और कला, साहित्य संगम, इलाहाबाद, संस्करण प्रयाग, 2003
2. शर्मा भगवत शरण, भारतीय संगीत का इतिहास, हाथरस, (उत्तर प्रदेश) 2011, संगीत कार्यालय
3. चौबे सुशील कुमार, साहित्य में घरानों की चर्चा, उत्तर प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, लखनऊ, 1977
4. गर्ग लक्ष्मी नारायण, निबंध संगीत, संगीत कार्यालय, हाथरस (उत्तर प्रदेश) 2016
5. श्रीवास्तव श्रीमती सुधा, संगीत के मूलाधार, कृष्ण ब्रदर्स, महात्मा गाँधी मार्गेर, 2005

गुरमत संगीत के प्रमुख वाद्य

बलदीप कौर

सारांश

गुरमत संगीत गुरु ग्रंथ साहिब की बाणी का अनुकरण करता है और जब भी गुरबाणी कीर्तन अथवा गुरमत संगीत कार्यक्रम होते हैं उनमें पंजाब में प्रचलित वाद्यों का बजना अपनी विशिष्टता को प्रस्तुत करता है। सर्वप्रथम गुरु नानक देव जी ने जहां सिख धर्म की नींव रखी वहीं कलजुग मह कीर्तन प्रधाना की अमूल्य निधि के साथ रबाब वाद्य का प्रचलन किया और अपने साथी भाई मरदाना जी को हमेशा बाणी गायन में रबाब वाद्य के साथ संगत करने को कहा। गुरु नानक देव जी ने एक विशिष्ट रबाब मरदाना जी को भेंट की। तीसरे गुरु, गुरु अमरदास जी ने सारंदा वाद्य का अविष्कार किया। गुरु गोविंद सिंह जी गुरबाणी कीर्तन में तानपूरा स्वयं बजाते थे। इस प्रकार तंत्री वाद्य गुरमत संगीत को गति प्रदान करने वाले वाद्य हैं जो आज भी गुरमत संगीत सम्मेलन एवं गुरुद्वारों में कीर्तन के समय बजाए जाते हैं। अवनद्ध वाद्यों में पखावज, मृदंग, तबला, ढोलक, ढोल गुरमत संगीत के ऐसे वाद्य हैं जो संसार में सभी जगह पसंद किए जाते हैं। खड़ताल, चिमटा, ढोलक आदि को शबद कीर्तन, कीर्तन चौकियों में बजाना न केवल गुरमत संगीत की विशेषता है अपितु पंजाब की प्रांजल गीतकारी व लोक संगीत का आधार है।

मुख्य बिन्दु–*गुरमत संगीत, गुरबाणी कीर्तन, रबाब, सारन्दा, ताउस, खड़ताल।*

''कलजुग मह कीर्तन प्रधाना गुरमुख जपियै लाए धेयाना'' गुरमत संगीत का आधार शबद कीर्तन है क्योंकि शबद कीर्तन के माध्यम से गुरबाणी का गायन होता है। गुरमत संगीत में गायन व वादन को गुरबाणी शबद कीर्तन का अनुकरणीय माना जाता है। शबद कीर्तन प्रस्तुति हेतु वादन को कोई स्वतंत्र स्थान प्राप्त नहीं है इसलिए इसमें विशेष वाद्यों का प्रयोग किया जाता है।

गुरु ग्रंथ साहिब में प्रत्येक शबद के पूर्व शबद की राग का उल्लेख है जिससे यह स्पष्ट होता है कि गुरमत संगीत में राग-नाद एवं वाद्य का प्रयोग होता है।

"राग नाद सभ सच है कीमत कहीं न जाए।
रागै नादै बाहरा इनी हुकम न बूझया जाए।।"

गुरमत संगीत में प्रयुक्त होने वाले वाद्यों का उल्लेख करने से पहले भारतीय संगीत के वाद्य का अर्थ, भारतीय संगीत एवं गुरमत संगीत के वाद्यों के वर्गीकरण पर विचार करना आवश्यक प्रतीत होता है क्योंकि पंजाब भारत के उत्तर भारत में स्थित है। दोनों का परस्पर प्रभाव अवश्यंभावी है। गुरमत संगीत का जन्म पंजाब प्रांत में हुआ और पंजाब प्रांत में इसका अधिक प्रचलन है।

वाद्य शब्द का अर्थ- वाद्य शब्द वद् धातु से बना है अर्थात् वह साधन जो नाद उत्पन्न कर सकता है वह वाद्य है। "संगीतात्मक ध्वनि तथा गति को प्रकट करने के उपकरण को वाद्य कहा जाता है।" इस प्रकार वाद्य दृश्य है और उससे उत्पन्न होने वाली ध्वनि श्रव्य वाद्य हैं।

संपूर्ण विश्व के क्रियाकलाप एवं गति का ज्ञान नाद से ही होता है। नाद एवं गति का नवीनतम

*पीएच.डी. शोधार्थिनी, संगीत एवं प्रदर्शन कला विभाग, इलाहाबाद विष्वविद्यालय, इलाहाबाद, bkaur13135@gmail.com (9616911981)

स्वरूप स्वर एवं लय ही संगीत का मूल आधार माना जाता है और वाद्य न केवल लय का प्रतिनिधित्व करता है अपितु इसकी गति को और प्रखर कर देता है। मानसोल्लास संगीत ग्रंथ में निम्नांकित श्लोक से संगीत में वाद्य की प्रधानता का उल्लेख मिलता है-

"वाद्ये न राजते गीतं न नृत्यं
वाद्य-वर्जितम् तस्माद वाद्यं प्रधानस्यात।।"

वाद्य उत्पत्ति- आदिकाल से ही यह माना जाता है कि वाद्यों की उत्पत्ति का आधार धार्मिक है। भगवान शिव ने पिनाक का आविष्कार किया। पिनाक तंत्र वाद्यों का पिता माना जाता है। डमरु नामक वाद्य का निर्माण ब्रह्मा जी ने किया।

तंत्री वाद्यों में वीणा प्रथम तंत्री वाद्य के रूप में प्राप्त होती है जो सदैव सरस्वती जी के हाथों में विराजमान है।

वाद्यों का वर्गीकरण- गुरमत संगीत का प्रारंभ एवं प्रचलन भारत के उत्तरी भू-भाग पंजाब प्रांत से आरंभ होकर संपूर्ण विश्व में प्रसिद्धि प्राप्त कर रहा है अतः गुरमत संगीत के वर्गीकरण से पहले हमें भारतीय संगीत के वर्गीकरण पर विचार कर लेना चाहिए क्योंकि भारत में वाद्यों का प्रचलन आंशिक विभिन्नता को छोड़कर एक समान सा है।

आचार्य भरतकृत नाट्यशास्त्र के वाद्य के 28वें अध्याय के पहले श्लोक में वाद्य वर्गीकरण का उल्लेख निम्नवत है-

"ततं चैवावनहंच घनं सुशिरमेक्च।
चतुर्विधं तु विज्ञेयमातोद्यं लक्ष्णान्वितम्।।"

आचार्य भरत ने समस्त वाद्यों को आतोघ कहा तथा इनकी संख्या चार निर्धारित की- तत्, सुषिर, घन, अवनद्ध।

"ततं तन्त्रीदृतं ज्ञेयमवनद्धं तु पौषकस्म्।
घनं तालस्तु विज्ञेय सुषिरो वंश उच्यते।।"

इस प्रकार तत्, अवनद्ध, घन, तथा सुषिर क्रमशः तंत्री वाद्य, पुष्कर वाद्य, ताल वाद्य तथा वंशी वाद्य का प्राचीनतम वर्गीकरण वैज्ञानिक आधार पर आज भी स्वीकार किया जाता है। संगीत मकरंद के अनुसार आहत नाद वाद्य पांच संगीतमयी ध्वनियों से उत्पन्न होता है - नखज, वायुज, चर्मज, लोहज एवं शरीरज। इन पांच में से शरीरज कंठ ध्वनि नैसर्गिक वाद्य है। शेष चार वाद्य मानवकृत है अर्थात् वीणा नखज, वंशी वायुज, मृदंग चर्मज तथा ताल, मंजीरा लोहज वाद्य का निर्माण मनुष्य ने किया। भारतीय संगीताचार्य वाद्यों के वर्गीकरण में एकमत नहीं है कुछ वाद्यों की तीन, चार, पांच श्रेणियां स्वीकार की है।

तीन में-तत्, घन, सुषिर।
चार में-तत्, वितत, घन, सुषिर।
पांच में-तत्, वितत, अवनद्ध, घन, सुषिर।

भारतीय संगीत में वाद्यों का वर्गीकरण इस प्रकार सर्वमान्य है तत, अवनद्ध, घन, सुषिर निम्नलिखित दोहे एवं चौपाई से भी स्पष्ट होता है कि भारतीय संगीत में वाद्यों की 4 श्रेणियां सर्वमान्य है।

चौपाई-

चार भांत के बादय बखानो।।
तत अर सुखर मोद मन मानो।
सुन आनँध और घन जान।।
इन की बिध अब कहत बखान।

दोहा-

बीनादक जे बादय सभ तिन को है तँत नाम।
बंश काहला आद है सुखर कहैं अभिराम।
चरम मढयो जा को बदन सो आनँध बखान।
कासय ताल को आद कर सभ घन की बिध जान।।

गुरमत संगीत के अनुसार वाद्यों का वर्गीकरण अल्प अंतर के साथ लगभग वही है जो भारतीय संगीत के वाद्यों के वर्गीकरण में उल्लेखित है गुरमत संगीत में विद्वानों ने वाद्य वर्गीकरण को 5 श्रेणियों में विभाजित किया है। गुरमत संगीत गुरबाणी गायन का स्रोत है और गुरु ग्रंथ साहिब में पंच शबद एवं पंच बजित्र अर्थात पांच प्रकार के वाद्यों के वर्गीकरण का संकेत है।

दोहा-

"तत तंती बित चरमका, घन कांषी को जा।
घटह मुँखर, स्वासन सुँखर, बाद्य पंच पहचान।।"

उपरोक्त दोहे से भी स्पष्ट होता है कि गुरमत संगीत में पांच प्रकार के वाद्यों का प्रचलन है 1-तत 2-बित 3-घन 4-मुखर एवं 5-सुखर।

तत् वाद्य- ऐसे वाद्य जिनमें तार का प्रयोग होता है उन्हें तत् अर्थात् तंत्री वाद्य कहते हैं इनमें रबाब, सितार, सरोद, सारन्दा, इसराज, ताऊस, दिलरूबा, तानपूरा आदि। इन तंत्री वाद्यों को अंगुलियों अथवा पत्र या जवा से बजाया जाता है।

बित्त वाद्य- चमड़े से मढ़े वाद्य यथा- ढोल, ढोलक, मृदंग (पखावज), तबला आदि वाद्य बित्त अथवा अवनद्व वाद्य की श्रेणी में आते हैं जो ताल (ठोक) देने से बजाए जाते हैं।

घन वाद्य- धातु से बने वाद्य जो दोनों हाथों से बजाए जाते हैं घन वाद्य कहलाते हैं। जैसे- मंजीरा, चिमटा, झांझ, घंटा, करताल (खड़ताल) आदि।

मुखर वाद्य- ऐसे वाद्य जो अंदर से खाली होते हैं जैसे घड़ा आदि इनके मुख पर हाथों से आघात कर ध्वनि उत्पन्न की जाती है को मुखर वाद्य कहा जाता है। कई विद्वान इनके इस नादात्मक गुण के कारण इस श्रेणी को नाद श्रेणी भी कहते हैं।

सुखर (सुषिर) वाद्य- जो वाद्य मुख से हवा देकर अथवा अन्य विधि से हवा देकर बजाए जाते हैं उन्हें सुखर अर्थात् सुषिर वाद्य कहा जाता है। बांस, लकड़ी अथवा धातु की बनी खोखली नाद जिसमें ऊपर को छेद बनाए जाते हैं जैसे-बांसुरी। हारमोनियम एक पश्चिमी वाद्य है जिसमें लगे पंखे से हवा देकर बजाया जाता है। इस प्रकार हारमोनियम भी सुषिर वाद्य की श्रेणी में आता है।

इस बात का पूर्व में ही उल्लेख किया जा चुका है कि गुरमत संगीत का आधार गुरबाणी है इसलिए गुरबाणी गायन को प्राथमिकता प्रदान की गई है और वाद्यों का स्वतंत्र वादन न होने के कारण वाद्य गौण हैं। इस प्रकार गुरमत संगीत में गुरबाणी गायन में वाद्यों का स्वतंत्र प्रदर्शन नहीं होता। गुरु ग्रंथ साहिब में वाद्यों का वर्णन समाहित है जो गुरमत संगीत गायन को गति प्रदान करता है। यथा-

"फील रबाबी बलद पखावज कौआ ताल बजावै।
पहर चोलना गदहा नाचै भैसा भगत करावै।।"

गुरमत संगीत में प्रयोग होने वाले मुख्य वाद्य- गुरमत संगीत में रागात्मक शबद कीर्तन में तंत्री वाद्यों का प्रचलन है जिनमें रबाब, सारन्दा, ताऊस, दिलरुबा, तानपूरा विशेष हैं इनके अतिरिक्त मृदंग, पखावज, तबला, ढोलक, खड़ताल, चिमटा, मंजीरा वाद्यों का भी प्रयोग होता है। लोकगीत और वार गायन में सारंगी बजाई जाती है। वाद्यों के संदर्भ में इस बात का उल्लेख करना अति आवश्यक प्रतीत होता है कि सिक्ख धर्म के गुरुओं ने सिख संगतों को न केवल वाद्य बजाने के लिए उत्साहित किया अपितु वाद्यों का आविष्कार भी किया।

रबाब- सिख धर्म के संस्थापक गुरु नानक देव जी का अवतार इस जगत में व्याप्त कुरीतियों, अज्ञानता का अंधकार दूर करने एवं सामाजिक सुधार हेतु हुआ। उन्होंने अपने उपदेश समाज में गायन विधा को अपनाकर किया और रागात्मक कीर्तन के माध्यम से सिद्ध किया कि मानव हृदय में अगर कुछ पहुंच सकता है या हृदय को प्रभावित कर सकता है तो वह संगीत ही है। गुरु नानक का यही संगीत गुरमत संगीत का आधार बना जो शबद कीर्तन को लयात्मक गति प्रदान करता है। स्वर, ताल, लय संगीत के आधार हैं और लय में रहने के लिए वाद्य की संगत का अपना विशेष महत्व है। गुरु नानक देव जी ने गुरबाणी कीर्तन के लिए जो वाद्य चुना उस वाद्य का नाम रबाब है। गुरु नानक देव जी शांतमयी हृदय को शीतलता प्रदान करने वाले मधुर स्वर से प्रभु की वाणी का गायन करते और मीठे स्वर हेतु मीठी धुन वाले वाद्य की आवश्यकता को देखते हुए उन्होंने रबाब वाद्य का चयन किया। सिख धर्म के महान विद्वान भाई गुरदास जी ने अपनी वारों में लिखा है-

"भला रबाब वजाएंदा मजलस मरदाना मीरासी।।"
"इक बाबा अकाल रूप दूजा रबाबी मरदाना।।"

रबाब शब्द रबˌआब दो शब्दों का संयुक्त रूप है जिसमें रब का अर्थ ईश्वर है और आब का अर्थ धारा है। इस प्रकार रबाब एक ऐसा वाद्य जिसे गुरबाणी कीर्तन समय बजाने से अनहद संगीत की मधुर धारा जलधारा के समान बह उठती है। लोगों के मन को शीतलता तथा शांति प्रदान करती है।

इस प्रकार रबाब गुरु नानक की शीतल मधुर गायन का अनुकरण करती है।

भाई गुरदास जी की उपरोक्त वार में मरदाना जी के नाम का वर्णन है मरदाना जी जाति के मरासी थे उन्हें संगीत का ज्ञान था इसलिए गुरु नानक देव जी ने मरदाना को एक वादक के रूप में अपने साथ लिया और रबाब वादन में उसे ज्ञान देकर प्रवीणता प्रदान की। गुरु नानक देव जी ने भैरोआणा नामक स्थान के भाई फिरंदा जिन्हें फेरू नाम से संबोधित किया जाता था से एक विशिष्ट प्रकार की रबाब बनवाई और अपने शिष्य मरदाना को भेंट की।

गुरु ग्रंथ साहिब में भी रबाब का वर्णन हुआ है जल बिन कैसे बजे रबाब उपरोक्त से स्पष्ट होता है कि जील तार का भी रबाब में प्रयोग होता रहा है। जब भी गुरु नानक देव जी बाणी का गायन करते तो मरदाना से कहते "मरदानया ! शबद चित कर, तौ बाझ, बाणी सार नहीं आवंदी तब गुरु बारे आखया मरदानया रबाब वजाए" उपरोक्त से सिद्ध होता है कि गुरमत संगीत में गुरु नानक की बाणी में रबाब वाद्य का प्रयोग हुआ जो गुरमत संगीत का प्रथम वाद्य माना जाता है। रबाब वाद्य के प्रमुख अंग निम्नलिखित हैं- 1-डांड 2-तुम्बा 3-मांद 4-घुड़च घणी, 5-तार घणी, 6-तार, 7-स्थान 8-जवा। रबाब को बजाने के लिए हाथ की उंगलियां अथवा जवां का प्रयोग किया जाता है। जवां लकड़ी या हाथी के दांत का बना होता है।

सारंदा- सारंदा एक तंत्री वाद्य है जो उत्तर भारत का मुख्य वाद्य है। हरियाणा, राजस्थान, पंजाब प्रदेश में इस वाद्य का प्रयोग लोकगीत में होता है। गुरमत संगीत में इस वाद्य का विशेष स्थान है। विद्वानों का मत है कि सारंदा नाम के वाद्य का गुरबाणी गायन में प्रयोग सिख धर्म के तीसरे गुरु, गुरु अमर दास जी ने किया। नगमाते आसफ़ी में इस वाद्य को तीसरे गुरु अमरदास जी की इजाद माना जाता है।

गुरमत संगीत की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि से यह भी अभिमत प्राप्त होता है कि इस सारंदा नामक वाद्य को सिखों के पांचवें गुरु, गुरु अर्जुन देव जी ने अपनी विशिष्ट विधि द्वारा तैयार कर कीर्तनकारों को दिया तथा इसे बजाने की भी शिक्षा प्रदान की।

ताऊस वाद्य- ताऊस वाद्य भी तंत्री वाद्यों में से एक वाद्य है। इसराज वाद्य के पीछे के भाग को यदि मोर स्वरूप में बना दिया जाए तो वह वाद्य ताऊस कहलाता है। अरबी भाषा में ताउस का अर्थ मोर होता है। गुरमत संगीत में इस वाद्य को सिखों के छठवें गुरु, गुरु हरगोबिंद साहिब के दरबार में बजाया जाना स्वीकार किया गया है। गुरमत संगीत के महान संगीतकार गज्जा सिंह जी इस वाद्य के प्रसिद्ध वादक माने जाते हैं।

दिलरुबा वाद्य- गुरमत संगीत में पिछले गत दो सौ वर्षों से गुरबाणी कीर्तन में इसका प्रयोग हो रहा है। भारत के उत्तरी भाग पंजाब-हरियाणा, कश्मीर में यह वाद्य प्रचलित है। लोक संगीत में यह वाद्य सुनने को मिलता है। दिलरुबा तंत्री वाद्य है जिसको घोड़ें के बालों से बने गज द्वारा बजाया जाता है। पंजाब में दिलरुबा वाद्य को बजाने वाले संगीतकारों में उस्ताद हरनाम सिंह का नाम प्रसिद्ध है।

तानपूरा- शास्त्रीय संगीत में जो स्थान तानपूरे को प्राप्त है उतना अन्य किसी वाद्य को नहीं। तंबूर जिसे तंबूरा भी कहा जाता है का परिवर्तित नाम तानपूरा है। तानपूरा गायन संगीत का आधार माना जाता है। तंबूर वाद्य का संबंध तंबूर ऋषि अथवा तंबूर नाम के एक गायक से संबंधित बताया जाता है जिन्होंने स्वर ज्ञान एवं गायकी के साथ स्वर देने हेतु इस वाद्य का निर्माण किया। इस प्रकार प्राचीन काल से संगीत में तानपूरे का प्रचलन रहा है और आज भी इसका प्रयोग संगीतकार अवश्य करते हैं ताकि स्वर से विचलित न हो। पहले तानपुरा दो तारों वाला होता था इसके पश्चात् संवाद सिद्धांत के आधार पर चार तारवाला तंबूरा प्रचार में आया। तंबूरे का प्रसंग संगीत पारिजात नामक ग्रंथ में हुआ। अबुल फज़ल ने अपनी रचना आईने अकबरी में तंबूरे को स्वर वीणा हेतु परिचित कराया है। तानसेन के ध्रुपद में तंबूरे का उल्लेख इस प्रकार है-

"ताल पखावज आवज बाजत ढोलक और तंबूरा
वीणा रबाब गुरज डफ मुरली मधुर धुनी घोरा।।"

उपरोक्त से स्पष्ट है कि तंबूरा (तानपुरा) वाद्य का मध्य काल में बहुत प्रयोग होता था। गुरमत संगीत में भी तानपुरे के प्रयोग के उदाहरण मिलते

हैं। सिखों के दसवें गुरु, गुरु गोबिंद सिंह जी स्वयं इस वाद्य के साथ रागमयी शबद कीर्तन किया करते थे। वर्तमान समय में गुरमत संगीत के विद्वान तानपुरे के साथ कीर्तन करते हैं। आधुनिक समय में इलेक्ट्रॉनिक तानपूरे का अधिक प्रयोग किया जा रहा है।

मृदंग पखावज- गुरु गोबिंद सिंह जी की बाणी दसम ग्रंथ में त्व प्रसाद सवइऐ के तीसरे सवइऐ की प्रथम दो पंक्तियां इस बात का प्रत्यक्ष उदाहरण है कि उस समय मृदंग का प्रयोग हुआ करता था-

''जीत फिरै सभ देस दिसान को बाजत ढोल मृदंग नगारे।।''

ध्रुपद व धमार शास्त्रीय संगीत की सबसे प्राचीन विधा मानी जाती है जिसमें पखावज वाद्य का प्रयोग किया जाता है। इन गायन शैलियों की प्रकृति गंभीर होने के कारण इसमें पखावज की संगति को ही विद्वान उपयुक्त मानते हैं।

गुरमत संगीत में मृदंग का प्रयोग प्रारंभ से होता रहा है। यह प्रमाण गुरु ग्रंथ साहिब में मिलता है-

"बाजे बजह मृदंग अनाहद कोकल री राम नाम बोलै मधुर बैन अत सुहिया।।"

गुरमत संगीत में 17वीं एवं 18वीं सदी तक मृदंग, पखावज का प्रयोग होता रहा है क्योंकि इस समय तक ध्रुपद गायन की प्रधानता थी। श्री गुरु तेग बहादुर जी जो सिखों के नवम गुरु है अपनी असम यात्रा के दौरान पंजाब लौटते समय वाराणसी के एक सिख के घर में रुके उस सिख ने गुरु जी को एक मृदंग भेंट की वह स्थान आज भी संगत मृदंगवाली नाम के गुरुद्वारे से प्रसिद्ध है।

तबला- अवनद्ध वाद्यों में तबला एक उपयोगी एवं लोकप्रिय वाद्य माना जाता है। शास्त्रीय संगीत की सबसे प्राचीन विधा ध्रुपद तथा धमार के साथ पखावज बजाने की प्रथा रही, परंतु आज पखावज के अतिरिक्त तबला वाद्य भी ध्रुपद व धमार के साथ संगत करने के लिए बजाया जाता है। यह वाद्य शास्त्रीय, उपशास्त्रीय एवं अन्य विधाओं के साथ बजाया जाता है। जितनी ख्याति वाद्य के रूप में तबले को प्राप्त है उतनी अवनद्ध वाद्यों में किसी भी वाद्य को नहीं। कहा जाता है कि पखावज के बीच से दो टुकड़े कर तबले का निर्माण हुआ। पंजाब में बांये तबले पर गीला आटा लगाया जाता था। परंतु वर्तमान में स्याही का ही प्रयोग होता है।

गुरमत संगीत में तबले का आरंभ 19वीं शताब्दी से माना जाता है। पंजाब में तबले को जोड़ी भी कहा जाता है। वर्तमान में शबद कीर्तन में तबले का ही प्रचलन है और कीर्तनकार इस वाद्य को ही प्राथमिकता देते हैं।

ढोलक, खड़ताल, चिमटा, छैणे-

गुरमत संगीत में जितना ढोलक, खड़ताल, चिमटा एवं छैणे का प्रयोग होता है। शायद उतना अन्यत्र नहीं। इसका प्रयोग पंजाब के लोक संगीत में होता है। इन वाद्यों को सिख संगत अपने शबद कीर्तन के साथ बजाती हैं। संत महात्मा विशेषकर इसका प्रयोग करते हैं। नगर कीर्तन, कीर्तन चौकी, स्त्री सत्संग में इन वाद्यों के प्रयोग का प्रचलन है।

हारमोनियम- हारमोनियम शब्द ग्रीक भाषा के हार्मनी शब्द का रूपांतर है। यह पश्चिम के वैज्ञानिकों द्वारा अविष्कृत वाद्य है। वर्तमान में इस वाद्य का प्रचलन भारतीय संगीत में बहुत अधिक हो गया है इसका मुख्य कारण यह है कि तंत्री वाद्यों को स्वर में मिलाना अत्यंत कठिन एवं अनुभवी संगीतकारों द्वारा संभव होता है इसलिए सामान्य रूप से बजाए जाने वाले हारमोनियम वाद्य जिसमें स्वर मिलान की कोई आवश्यकता नहीं होती एक साधारण व्यक्ति भी इसे बजा सकता है। यह सुषिर वाद्यों की श्रेणी में आता है जो पंखे से हवा देकर बजाया जाता है। इसे स्वर पेटी के नाम से भी जाना जाता है।

गुरमत संगीत में हारमोनियम का प्रचलन 19वीं शताब्दी के अंतिम काल से प्रारंभ हुआ। वर्तमान में गुरबाणी कीर्तन गायन में हारमोनियम जिसे पंजाबी भाषा में प्राय बाजा या पेटी कहकर संबोधित किया जाता है। संगीत में परिपक्व कुछ संगीतकारों जो आज भी तंत्री वाद्य का अपने कीर्तन में प्रयोग करते हैं को छोड़कर सामान्यतः सभी शबद कीर्तन करने वाले रागी हारमोनियम का प्रयोग करते हैं क्योंकि

इसमें कोमल, मध्य एवं तीव्र स्वरों का मिश्रण गायक के गले अनुरूप स्वयं ही बन आता है।

निष्कर्ष- गुरमत संगीत के उपरोक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि गुरमत संगीत में वाद्यों का प्रारंभ गुरु नानक देव जी के शिष्य मरदाना के रबाब वाद्य से हुआ। आज गुरमत संगीत में छात्र एवं छात्राएं गुरुओं द्वारा दी गई प्रेरणा से निरंतर प्रगति की ओर है। गुरबाणी के गायन में तंत्री वाद्य एवं अवनद्ध वाद्यों को बजाने में परिपक्व होंगे वहीं उनमें आध्यात्मिक गुणों का भी विकास होगा। देश-विदेश में गुरमत संगीत के संगीतकार, कीर्तनकार इन वाद्यों का शबद कीर्तन में कुशलता पूर्वक प्रयोग कर सकेंगे। भविष्य में संगीत के छात्र गुरबाणी गायन में प्रवीण होंगे तथा गुरमत संगीत के माध्यम से विश्व प्रख्यात भारतीय संगीत को और अधिक प्रभावशाली बनायेगें।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी

1 गुरमत संगीत प्रबन्ध व पासार, सिंह डॉ. गुरनाम , पब्लिकेशन ब्यूरो, पंजाबी यूनिवर्सिटी, पटियाला 2012

2 गुरमत संगीत पर हुण तक मिली खोज (भाग इक तों पंज), प्रकाशक, चीफ खालसा दीवान, अमृतसर, 1958

3 महान कोष, (गुर शबद रत्नाकर), भाई कान्ह सिंह नाभा, भाषा विभाग, पंजाब, पटियाला, 1976

4 वारां भाई गुरदास, जवाहर सिंह, किरपाल सिंह, अमृतसर, 1957

5 श्री गुरु नानक चमत्कार, (उतरारध/पुरबारध), वीर सिंह (भाई), खालसा समाचार, हाल बज़ार, अमृतसर।

6 गुरु अमरदास राग रत्नावली, तारा सिंह (प्रो.), लोक संपर्क विभाग, पंजाब, 1979

संगीत रामायण के रचयिता पं. रामाश्रय झा 'रामरंग' जी

प्रियंका सहवाल

शोध सार :-

उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत में पंडित रामाश्रय झा 'रामरंग' जी का विशिष्ट स्थान है। शास्त्रीय संगीत के रागों पर जो गूढ़ विचार पंडित जी प्रस्तुत किये हैं वह अनुकरणीय है। पंडित जी की अनेक रचनाओं में एक अनुपम रचना संगीत रामायण की है। पंडित जी श्री तुलसीदासकृत श्रीरामचरितमानास को आधार बना कर संगीत रामायण की रचना की है। इस ग्रन्थ में प्रचलित तथा अप्रचलित एवं पंडित जी द्वारा सृजित नवीन रागों में बंदिशों का भंडार है। बंदिशों का भाव, समय तथा साहित्य के सामंजस्य का विशेष ध्यान देते हुए पंडित जी ने इस ग्रन्थ की रचना की है।

सूचक शब्द :- *श्रीरामचरितमानस, श्रीराम, चरित्र, ग्रन्थ, शास्त्रीय, वैदिक युग*

उद्देश्य :-

संगीत रामायण पर विचार करने का मेरा मुख्य उद्देश्य है कि इस ग्रन्थ में निहित सांगीतिक तथा साहित्यिक गूढ़ता से परिचित हो सकूँ। मुझे आशा है की इस शोध पत्र के माध्यम से संगीत रामायण तथा पंडित जी के श्रीरामचरितमानस के ज्ञान के विविध पक्षों को लिखित रूप में प्रस्तुत कर सकूँ, जो कि भविष्य में इस विषय से सम्बन्धित एक उपयोगी तथ्य सामग्री के रूप में उपलब्ध हो सकेगी। इस कार्य के लिए पुस्तकों तथा पत्रिकाओं से सामग्री एकत्र की गयी है।

परिकल्पना :-

उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत के लिए संगीत रामायण एक वरदान स्वरूप है। राग की शुद्धता तथा सुचिता के साथ एवं राग के सभी तत्वों के सामंजस्य के साथ इस ग्रन्थ का लेखन किया गया है। प्रस्तुत शोधलेख में संगीत रामायण के विविध पक्षों की विवेचना की जायेगी।

विषय प्रवेश :-

जनमानस के लिए आदर्श भगवान श्रीराम के चरित्र को समय-समय पर अनेक विद्वानों ने अपनी सोच से लेखन के द्वारा समाज के सम्मुख प्रस्तुत कर के अपनी लेखनी को पवित्र किया है। भगवान के चरित्र के अमर गायक युगभाष्कर आदरणीय श्री तुलसीदास जी ने श्रीरामचरितमानस में भगवान के आदर्श चरित्र को जनमानस के सम्मुख ग्रामीण भाषा (अवधी) में रखा। श्री तुलसीदास जी से पूर्व ग्रंथों की भाषा सामान्यतः संस्कृत ही हुआ करती थी। संस्कृत भाषा विद्वत समाज के द्वारा बोली तथा समझी जा सकने वाली भाषा रही है। श्री तुलसीदास जी ने भगवान श्रीराम के चरित्र को जनसामान्य के द्वारा गायन तथा श्रवण के लिए ग्रामीण जनता द्वारा बोली तथा समझी जा सकने वाली भाषा में रचना कर के सर्वसुलभ बनाया। समयान्तर

प्रियंका सहवाल : संगीत विभाग, तिलकधारी पी. जी. कॉलेज, जौनपुर, उत्तर प्रदेश

पर उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत के मूर्धन्य वाग्गेयकार पंडित रामाश्रय झा 'रामरंग' जी ने श्री तुलसीदास जी की श्रीरामचरितमानास को आधार मान कर 'संगीत रामायण' की रचना की। दोनों ग्रन्थ के प्रादुर्भाव के समय लगभग समान परिस्थितियों का सृजन हुआ था। जनसामान्य तक भगवान श्रीराम का आदर्श चरित्र पहुंचाने तथा सर्वसुलभ बनाने के हेतु से श्रीरामचरितमानस की रचना की। उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत में प्रचलित बंदिशों में फूहड़ श्रृंगार के शब्दों से संगीत को सभ्य समाज में आशानुरूप स्थान नहीं प्राप्त हो पा रहा था तब पंडित जी ने भगवान श्रीराम के चरित्र का सहारा ले कर संगीत में व्याप्त कलुषता को पवित्र करने का प्रयास किया। यह प्रयास परिणिती 'संगीत रामायण' की रचना के रूप में हुई।

पंडित रामाश्रय झा 'रामरंग' जी का जन्म 11 अगस्त 1928 ई. तदनुसार कृष्णपक्ष एकादशी तिथि में मधुबनी जिला के अंतर्गत खुजरा नामक ग्राम में हुआ। पंडित जी के पिता जी पं. सुखदेव झा तथा माता जी श्रीमती खजनी झा थीं। पंडित जी की विद्यालयी शिक्षा प्रथम या द्वितीय दर्जे तक ही हो सकी थी। पंडित जी के परिवार में भक्तिमय परिवेश होने के कारण घर में समय-समय पर संत, विद्वानों तथा गुरुजनों का आगमन होता रहता था। विद्वानों के एकत्रित होने पर सामान्यतः उनके चर्चा का विषय संगीत, धर्म, दर्शन एवं सामाजिक होता था। घर में सृजित वातावरण का प्रभाव पंडित जी पर पड़ा। घर में रह कर हिंदी, मैथिलि, ब्रज आदि भाषाओं का अध्ययन आगंतुक श्रेष्ठजनों के सानिध्य में किया। बचपन से ही पंडित जी धार्मिक ग्रंथों तथा संगीत में विशेष रूचि थी। बालपन में गाँव के मंदिर में भजन-कीर्तन तथा आरती में शामिल होना पंडित जी की दिनचर्या का अंग था। पंडित जी ने अपनी संगीत की प्रारंभिक शिक्षा अपने पिता पं. सुखदेव झा जी तथा चाचा पं. मधुसूदन झा जी से ग्रहण करने के बाद संगीत की विधिवत शिक्षा पं. भोला नाथ भट्ट जी के सानिध्य में प्राप्त की। पंडित जी अपने गुरु जी के सानिध्य में पच्चीस वर्षों तक उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत की चारो पट की गायकी (ख्याल, ध्रुपद, टप्पा, ठुमरी) का विधिवत ज्ञानार्जन किया। पंडित जी ने अपनी युवा अवस्था में बनारस की एक नाटक कंपनी में किया। पंडित जी को श्रीरामचरितमानस कंठस्थ था। इस का प्रभाव पंडित जी की परवर्ती रचनाओं में स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। पंडित जी द्वारा 'रामरंग' उपनाम धारण करना यह दर्शाता है कि उनकी भगवान राम में अटूट श्रद्धा थी। पंडित जी प्रयाग में रहते हुए सर्वप्रथम 1955 में लूकरगंज संगीत विद्यालय में संगीत अध्यापक के रूप में अपनी सेवा प्रदान की। इसी क्रम में 1960 से पंडित जी ने प्रयाग संगीत समिति में अपनी सेवाएं दीं। इसी समय इलाहाबाद विश्वविद्यालय के संगीत विभाग के अध्यक्ष प्रो. उदयशंकर कोचक ने पंडित जी की संगीत मर्मज्ञता से प्रभावित हो कर विश्वविद्यालय के संगीत विभाग में आप की नियुक्ति की। बाद में पंडित जी ने संगीत विभाग के अध्यक्ष के रूप में भी अपने दयित्व का निर्वहन किया। पंडित जी विश्वविद्यालय के प्रोफेसर पद पर कार्य करते हुए स्वयं ही अपनी विद्यालयी शिक्षा के सम्बन्ध में कहते थे -

विद्यालय न गये कबहूँ अरु,
छुए कलम नहीं कागज़।
'अभिनव गीतांजलि' को लेखक,
कैसे कहुं अपने को सजल।
राम कृपा से लिखे सबहि,
संगीत राग स्वर दर्पण।
'रामरंग' यह लेखन सब विधि,
गुरु गोविन्द को अर्पण।।

पंडित रामाश्रय झा 'रामरंग' जी भगवान श्रीराम के उपासक थे। पंडित जी की उपासना तथा भगवान श्रीराम के प्रति श्रद्धा उनके लेखन में स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। पंडित जी ने श्री तुलसीदास जी के द्वारा निबद्ध श्रीरामचरितमानास को शास्त्रीय संगीत की बंदिशों में निबद्ध किया। पंडित जी द्वारा रचित 'संगीत रामायण' में ध्रुपद, धमार तथा ख्याल की बंदिशों के रूप में निबद्ध किया गया हैं।

पंडित जी की जीवनचर्या तथा उनके विचार में सात्विकता सहज ही परिलक्षित होता था। पंडित जी द्वारा रचित बंदिशों में भी इसका प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। पंडित जी जिस समय नवीन बंदिशों का सृजन कर रहे थे उस समय प्रचलित बंदिशों में दो प्रकार की विषमता दृष्टश्राव्य थी।

प्रथम बंदिशों के फूहड़ श्रृंगार का आधिक्य, द्वितीय बंदिशों का काव्य राग के गायन समय के अनुरूप ना होना। 'उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत का जन्म दरबारों में हुआ था। अतः इसमें प्रयुक्त होने वाली बंदिशों में श्रृंगार रस का होना स्वाभाविक था क्योंकि मध्यकाल के शासकों को श्रृंगार रस प्रिय था। समय के साथ श्रृंगार के साथ फूहड़ता ने भी प्रवेश पा लिया। बंदिशों में पिया से मिलने की व्याकुलता, सास-ननद के कुटिल स्वाभाव की चर्चा इत्यादि विषयों का आधिक्य दृष्टिगोचर होता है।' इन बातों का ध्यान रखते हुए पंडित जी ने अपनी बंदिशों की रचना की। पंडित जी ने अनेक नवीन रागों का सृजन किया था। 'पंडित जी के नव सृजित कुछ प्रमुख रागों के नाम इस प्रकार है - मंगल गूजरी, वैदेही भैरव, बैरागी तोड़ी, भंखारी, सरस्वती सारंग, नटनागरी, चन्द्रमल्हार, महेंद्र मल्हार, अंजनी मल्हार, अंजनी कल्याण, केसरी कल्याण, देवकल्याण, विष्णु कल्याण, तिलक मल्हार, राम कल्याण, कृष्ण कल्याण, मारुति कल्याण, तीरभुक्ति, रामप्रिया, आदि।'

वैदिक काल में भारतीय शास्त्रीय संगीत को मंदिरों में स्थान प्राप्त था। वैदिक युग में संगीत को मुक्ति का माध्यम माना जाता था। इस समय संगीत की विषयवस्तु भी सात्विक थी। वैदिकोत्तर काल में संगीत मंदिर से निकल नाट्य के साथ मंच तक पहुँच गया। इस समय तक भी संगीत में सात्विकता थी। मंचों पर नाट्य के पार्श्व में संगीत की प्रस्तुति दी जाने लगी। धीरे-धीरे संगीत ने अपना स्वतंत्र स्वरूप स्थापित कर लिया। भरत काल के बाद संगीत मंच प्रस्तुति में अपना स्वतंत्र स्वरूप लेने लगा था। मुसलमानों के आक्रमण तथा राज्यारोहण के बाद संगीत ने राजदरबारों में प्रवेश पा लिया। राजदरबार में संगीत के पोषक राजा-महाराजाओं की इच्छा के अनुरूप संगीतज्ञों को व्यवहार करना पडा। इस परिवेश का प्रभाव संगीत पर भी पड़ा। इस काल में संगत में आमूलचूल परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है। अधिकतर राजा-महाराजाओं को श्रृंगार रस का संगीत पसंद किया। राजा की इस प्रवृति को ध्यान में रख कर तात्कालीन समय के संगीतज्ञों ने संगीत में श्रृंगार रस का समावेश किया। इस प्रक्रिया से संगीत तथा संगीताचार्यों के समान्य मानव के मानस पटल पर पूर्व स्थापित प्रतिष्ठा का ह्रास हुआ। अंग्रेजी शासन के आगमन के पश्चात् अधिकतर राजा जो अपने अस्तित्व के लिए जूझ रहे थे, संगीत के प्रति उदासीन हो गये। फलतः संगीत दरबारों से निकल कर कोठे पर पहुँच गया। संगीत की इस यात्रा ने उस समय गायन की जाने वाली बंदिशों में श्रृंगार का ऐसा प्रयोग हुआ कि जब संगीत जनसामान्य के मध्य आया तो या सर्वग्राह्य नहीं रहा। संगीत के उत्थान के लिए अनेक विद्वान तथा संगीत प्रेमियों ने अनेक प्रयास किया। इन भगीरथ प्रयास में सभी विद्वानों ने अपनी-अपनी सहभागिता निभायी। पंडित रामाश्रय झा 'रामरंग' जी के द्वारा रचित संगीत रामायण तथा अन्य अनेक भक्तिपरक बंदिशें, संगीत जगत द्वारा किये जा रहे इस पुनीत यज्ञ में एक आहुति थी।

पंडित जी सभी देवी-देवताओं का अपनी बंदिशों के माध्यम से पूजन अलपत किया किन्तु भगवान श्रीराम के चरित्र पर उनके द्वारा पूरी रामायण लिखा जाना भगवान श्रीराम के लिए उनके अंतर्मन में विशेष स्थान होना प्रमाणित करता है।

संगीत रामायण में श्रीरामचरितमानस के समान सात काण्ड हैं बालकाण्ड, अयोध्याकांड, अरण्यकाण्ड, किष्किन्धाकाण्ड, सुन्दरकाण्ड, लंकाकाण्ड तथा उत्तरकाण्ड। उक्त ग्रन्थ का आरम्भ भगवान गणेश की वंदना से की गयी है जिसकी पंक्तियाँ अधोलिखित हैं-

श्री गणेशी वंदना राग- भैरव ताल चौताल

स्थाई:- *प्रथम सुमीर मन, गन ईश गजानन, सिधि के सदन बुद्धि वाणी विनायक।*

अंतरा :- *शंकर सुवन जगत के बंदन, देवन में प्रथम देव रिधि-सिद्धि दायक।*
संचारी :- *सुमिरत नाम संवारत काज सकल, विद्या बारिध विघन विनाशक।।*
आभोग :- *पूरन करो आस आसरा तिहारी, "रामरंग" दिन की तू ही सहायक।।*

भावार्थ :-

हे मन! सिद्धि के सदन अग्रगण्य भगवान गणेश को सर्व प्रथम स्मरण करो। जो भगवान शंकर के पुत्र हैं तथा देवताओं में प्रथम पूज्य हैं। भगवान गणेश रिद्धि-सिद्धि के दायक हैं। उनके नाम का स्मरण करते ही सभी कार्यों का सुधार हो जात हैं। वह विद्या के समुद्र हैं तथा विघ्न के विनाशकरता हैं। 'रामरंग' कहते हैं, हे प्रभु! इस दीन के आप ही सहायक हैं आप से ही आशा है।

ग्रन्थ को आरम्भ करने से पूर्व पंडित जी ने वंदना प्रकरण में गणेश जी, माता सरस्वती, भगवान शंकर, भगवान श्री राम, माता जानकी, गुरुदेव भगवान, देवता असुर, संत तथा असंत और हनुमान जी की वंदना करते हुए पवित्र ग्रन्थ के पार्वती जी की तपस्या का तथा भगवान शंकर जी का विवाह, भगवान श्रीराम का जन्मोत्सव इस प्रकार श्रीरामचरितमानस में वलणत कथा के अनुसार संगीत रामायण की कथा भी आगे बढ़ती है। इस ग्रन्थ की रचना में पंडित जी ने बंदिशों के गायन का समय काव्य के भावानुरूप समय, समयानुकूल राग इत्यादि का विशेष ध्यान दिया है। संगीत रामायण में इस पवित्र ग्रन्थ की आरती भी दी गयी है। संगीत रामायण की आरती की पंक्तियाँ अधोलिखित हैं -

राग तिलक कामोद ताल त्रिताल (मध्यलय)

स्थायीः- *आरती करौ रामायण जी की। जामे शुभ चरित सियावर की।*
अंतरा :- *शारद नारद गावत डोलत, सनकादिक शिव जय जय बोलत, कीरति सुवन अंजनी की।*
अंतरा :- *वेद पुराण शास्त्र ग्रंथन की, सार अंश सम्मत सब हीं की, कली मल हरनी की।*
अंतरा :- *व्यास आदि कवी संतत वरनत, काग भुसुंडी गरुण गुन गावत, मंगल करनी की।*
अंतरा :- *बाल्मीकि तुलसी जस गावे, गावत 'रामरंग' सुख पावे, भव भी हरनी की।।*

भावार्थ :-

मैं रामायण जी की आरती करता हूँ जिसमें भगवान श्रीराम जी का शुभ चरित है। सरस्वती जी, नारद जी झूम-झूम के गा रहे हैं। शंकर जी जय जयकार कर रहे हैं। वेद, पुराण, शास्त्र आदि ग्रन्थ सार रूप में कह रहे हैं कि भगवान का नाम जाप कलियुग के पापों का नाश करने वाला है। व्यास आदि कवि तथा कागभुसुंडी और गरुण जी इस मंगलकारी नाम का गुणगान कर रहे हैं। तुलसीदास जी तथा बाल्मीकि जी भगवान के नाम का भवसागर के भय को हरने वाले इस यश को गा रहे हैं तथा रामरंग जी इसे गा कर सुख पा रहे हैं।

पंडित जी ने श्रीतुलसीदास जी कृत श्रीरामचरितमानस को अत्यंत सूक्ष्मता से अध्ययन किया था। मोटे तौर पर श्रीरामचरितमानस की कहानी सभी को पता है लेकिन पंडित जी ने श्रीरामचरितमानस में वलणत मनु-शतरूपा की तपस्या, ब्रह्मा, शिव एवं देवताओं द्वारा भगवान नारायण की स्तुति आदि प्रसंगों को संगीत रामायण में उद्धृत कर के श्रीतुलसीदास कृत श्रीरामचरितमानस में अपनी सूक्ष्म समझ को पुष्ट किया है। प्रस्तुत हैं कुछ ऐसे प्रसंग जो पंडित जी के श्रीरामचरितमानस की सूक्ष्म समझ को सिद्ध करते हैं -

1. महाराज मनु तथा उनकी रानी शतरूपा ने भगवान की तपस्या की। भगवान ने सपत्नी महाराज मनु की तपस्या से प्रसन्न होकर दर्शन दिया तथा वर मांगने को कहा। अपने सम्मुख भगवान की मनहर छवि को अपलक देखते हुए तपस्वी दम्पति ने भगवान को अपने पुत्र रूप में पाने का वरदान पाया। संगीत रामायण में इस प्रकार उद्धृत है -

राग देशकार, ताल-झपताल

स्थाई :- *मनु शतरूपा कियो तप भारी, ताते दियो दरस मुनि मन हारी।*
अंतरा :- *मांगन कह्यो वर, मांग्यो सम्हारी, सूत रूप पाऊं तोहे, भक्त भय हारी।।*

भावार्थ :-

मनु तथा शतरूपा ने अत्यंत कठोर तप किया। तब मुनि के मन को मोहित कर लेने वाले भगवान ने दर्शन दिया। भगवान ने वर मांगने कहा। तब महाराज मनु तथा शतरूपा ने भक्त के भी का नाश करने वाले भगवान को पुत्र रूप में पाने का वर मांगा।

2. वैदिक मार्ग को छोड़ कर आसुरी प्रवृति की ओर जन सामान्य का झुकाव पृथ्वी पर लम्पटों, चोरों, जुआरियों, गुरु द्वोहियों, माता-पिता के सेवा से विमुख रहने वाले लोगों का आधिक्य हो जाने से धरती कराह उठीं। इस पीड़ा से व्याकुल हो कर ब्रह्मा जी के पास गाय का रूप धारण कर के गयीं तथा अपनी व्यथा सुनायीं। ब्रह्मा जी धरती का कष्ट सुन के उन्हें सांत्वना देते हुए कहते है - भगवान अवतार लेंगे और धरती को ऐसे बोझ से मुक्त करेंगे। संगीत रामायण में ब्रह्मा जी का धरती को सांत्वना देने का सम्वाद बंदिश रूप इस प्रकार है -

राग शुद्ध सारंग, ताल- रूपक (विलंबित)

स्थाई :- *धरनी धरो मन धरी, जानत जन की पीर प्रभु जन विपति विनासी।*
अंतरा :- *दीना नाथ दीन दुःखहारी, 'रामरंग' जाने प्रभु सब घट बासी।।*

भावार्थ :-

ब्रह्मा जी धरती को सांत्वना देते हुए कहते हैं। हे धरती ! मन में धीरज रखो। भगवान सबकी पीड़ा जानते हैं तथा विपत्ति का विनाश करते हैं।

3. भगवान के वनवास प्राप्त करने की बाद वन गमन के क्रम में प्रयागराज पहुँचने पर महलष भारद्वाज से मिलना तथा चर्चा करना। यह प्रसंग श्रीरामचरितमानस में अध्यात्म तत्व को दरसाने वाला प्रसंग है। इस प्रसंग की गूढता को समझते हुए पंडित जी ने संगीत रामायण में इस प्रकार वलणत किया है -

राग विहाग, त्रिताल (मध्यलय)

स्थाई :- तीरथपति प्रभु देखे आय, अनुज सीय संग न्हाय त्रिवेनी भरद्वाज सिर नायउ आय।
अंतरा :- बहुबिध करि सम्मान पूजि पद, भरद्वाज वर मांगे,
तब पड़ कमल मधुप मेरो मन रहय सदा अनुरागे, वचन सुनि हरसे रघुकुल राम।।

भावार्थ :-

भगवान तीर्थराज प्रयाग पहुँच कर लक्ष्मण जी तथा सीता जी के साथ त्रिवेणी में स्नान किया तथा भरद्वाज जी को प्रणाम किया। भरद्वाज जी ने राम जी को भगवान मानकर सम्मान किया तथा पूजन किया तथा भगवान जी को प्रसन्न जान कर अपने मन को भगवान के पद कमल में लगाए रहने का वरदान माँगा। भगवान श्रीराम ने मुनि का प्रेम देख कर प्रसन्न हुए।

निष्कर्ष :-

पंडित रामाश्रय झा 'रामरंग' जी प्रखर प्रतिभा के धनी थे। आपने अपनी चिंतनशीलता एवं लगनशीलता से संगीत जगत में एक विशिष्ट स्थान प्राप्त किया। पंडित जी ने अपनी बंदिशों के सृजन के माध्यम से संगीत को सभ्य समाज के लिए सुलभ बनाया। संगीत को समाज में प्रचारित तथा सर्व सुलभ बनाने के लिए भातखंडे जी तथा पलुस्कर जी ने जो काम किया पंडित जी ने उसके आगे के कार्य को निर्वाह करने की जिम्मेदारी ग्रहण की तथा सफलता पूर्वक इसे किया भी। पंडित भातखंडे जी तथा पंडित पलुस्कर जी ने संगीत को सर्वसुलभ बनाने के लिए शैक्षणिक संस्थाओं की स्थापना करने, विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में संगीत को एक विषय के रूप में सम्मिलित कराने, पुरानी बंदिशों का संकलन, लेखन शैली का आविष्कार तथा ऐसे अनेक कार्य किये। कालांतर में संगीत में प्रचलित बंदिशों में फूहड़ श्रृंगार के शब्दों के समावेश से सम्बंधित राग की बंदिशों का गायन अपने परिवार में अथवा सभी समाज में प्रस्तुत करना मर्यादा के अनुरूप नहीं जान पड़ता था। ऐसी परिस्थिति में पंडित रामाश्रय झा 'रामरंग' जी ने संगीत रामायण तथा अभिनव गीतांजलि जैसी अनुपम कृतियों से संगीत के प्रचार में अनूठा योगदान किया।

नेपाल में प्रचलित 'नेवारी संगीत' में प्रयुक्त विभिन्न वाद्यः एक अध्ययन

*मोहन शोभा महर्जन, **डॉ. राजेश केलकर

शोध सारः

प्रस्तुत शोधपत्र में शोधार्थी द्वारा नेपाल में प्रचलित 'नेवारी संगीत' में प्रयुक्त मुख्य वाद्यों का अध्ययन किया गया है। प्राचीन काल से ही अपने अलग पहचान बनाने में सफल नेपाल के नेवारी जाति संगीत पक्ष में भी उतना ही सबल और सक्षम है। इस शोधपत्र के माध्यम से शोधार्थी नेवारी संगीत में प्रयुक्त विभिन्न वाद्यो की जानकारी एकत्र करने की प्रयास कर रही है, जो इस शोधपत्र की भूमिका है। इस अध्ययन के अधीन शोधार्थी ने नेवारी संगीत में प्रयुक्त वाद्यों का प्रकार, बनावट, बजाने की विधि, वाद्यो का प्रयोग एवं महत्व के विषय में संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया है।

***मुख्य शब्दः** नेपाली वाद्य, नेवारी संगीत, नेवर, वाद्य प्रकार*

प्रस्तावनाः

नेवारी संगीत नेपाल का एक लोक संगीत प्रकार है, जो नेपाल में बसनेवाली नेवारी जाति द्वारा निलमत तथा प्रचलित है। नेवारी जाति नेपाल की आदिवासी जनजाति में मानी जाती है, जो काठमांडौ राजधानी शहर तथा उसके आसपास के जिलों में ज्यादा रहवास करती है। नेपाली इतिहास में नेवार एक जात अथवा जाति न होकर विविध जातियों के मिश्रण से नेवार विभाजित हुई है ऐसा उल्लेख किया गया है। इतिहासकारों के अनुसार नेपाल में लिच्छवी काल (225 ई.सं के बाद शुरू हुई शासन) से पहले ही नेवार जाति रहवास करते थे और शासक भी नेवार ही होते थे। नेपाल के इतिहास शिरोमणि बाबूराम आचार्य के अनुसार मंगोल नस्ल के नेवांग/नेवाः/नेवाहांग जाति के लोग ही आज के नेवार आदि पूर्वज हैं। विद्वानों का यह भी मत है की, क्राइस्ट के 600 साल पूर्व नेपाल में नेवार जातियों का रहवास रहा है।(1)

प्राचीन काल से रहवास नेवार जाति के अन्य जातियों के सामने अपना अलग एवं विशेष स्थान लेने में सफल हैं। नेपाल की राजधानी काठमांडू शहर में अवस्थित होने के कारण भी यह संगीत की व्यापकता पूरे नेपाल में प्रचलित सभी प्रकार के लोक संगीत में नेवारी संगीत का एक विशेष स्थान है। प्राचीन काल से प्रचलित नेवारी संगीत में विभिन्न गीत प्रकार गाया जाता है। उन सभी गीत प्रकारों में विभिन्न प्रकार के वाद्यों का प्रयोग होता है। नेवार समाज में कोई हिन्दू धर्म को मानते है तो कोई बुद्ध धर्म को मानते है। इन दोनों प्रकार के जातियां अपने अपने ढंग से संगीत की साधना एवं प्रस्तुतीकरण करते हैं। संपूर्ण नेवारी जाति में एक ही नेवारी भाषा का प्रयोग किया जाता है, जिसे नेवारी में "नेवाःभाय" (भाषा) कहते है।

नेवारी संगीत के विभिन्न प्रकार जैसे- दाफा संगीत, जो प्राचीन काल से प्रचलित संगीत है, बारहमासा गीत, श्रम गीत, चर्या(स्तुति) गीत, सामाजिक गीत इत्यादि में ज्यादातर नेवारी भाषा का

*शोधछात्रा

**मार्गदर्शक, गायन विभाग, फैकल्टी ऑफ़ परफॉर्मिंग आर्ट्स, द महाराजा सयाजीराव यूनिवसिटी ऑफ़ बड़ौदा, वडोदरा

ही प्रयोग किया गया है, परंतु दाफा संगीत में अन्य भाषा जैसे संस्कृत, मैथिली, हिंदी भाषा का भी प्रयोग पाया गया है। नेवारी संगीत का मुख्य प्रयोग विभिन्न पर्व, जात्रा पर्वो एवं त्यौहार में प्रयोग किया जाता है। इन अलग अलग त्यौहारों में गायन के साथ साथ भिन्न भिन्न प्रकार के वाद्यों का प्रयोग किया जाता है। संख्यात्मक रुप में अन्य नेपाली लोक संगीत की तुलना में नेवारी संगीत में वाद्यों का ज्यादा प्रयोग पाया गया है। नेवारी वाद्यों के इतिहास को देखा जाए तो नेवारी जाति अपने सभ्यता के विकासक्रम के अन्य क्षेत्र के साथ साथ संगीत के क्षेत्र का भी विकास हुआ है। पर्याप्त शोध एवं अनुसंधान की कमी के कारण नेवारी संगीत की वाद्य परंपरा का निश्चित समय कहना मुश्किल है। परंतु ऐतिहासिक प्रमाण के आधार पर नेवारी वाद्य परंपरा लिच्छवी काल में जाकर व्यापक और व्यवस्थित माना गया है। लिच्छवी काल के बाद 12 वीं सदी के बाद मल्ल शासन काल में और ज्यादा व्यापक एवं मजबूत रूप लेने में सफल हुआ है।(2) प्राचीन समय नेवारी विद्वान संगीतज्ञों के अथाह निरंतर साधना और लगाव, प्रेम की वजह से वर्तमान समय तक इसकी मधुर संगीत देखने और सुनने को मिल रहा है।

वाद्यों का चारों प्रकार तत् ,अवनध, सुषिर एवं घन वाद्यों में से नेवारी वाद्यो में ज्यादातर अवनध, सुषिर और घन वाद्यों का प्रयोग ज्यादा किया गया है। कुछ विद्वान प्राचीन शिलालेख, मूर्तिकला, चित्रकलाओं को देखकर ततवाद्यों का प्रयोग मानते है।(3) नेवारी संगीत में प्रयोग किया जाने वाले बहुसंख्यक वाद्यों में से कुछ प्रमुख वाद्य है जैसे-

अवनध वाद्य में -धिमय् वाद्य, खिं वाद्य, धाः वाद्य, नाय खिं वाद्य

सुषिर वाद्य में - पोंगा वाद्य, मुहाली वाद्य, काँ वाद्य, नेकुं वाद्य, बांसुरी वाद्य

घन वाद्य में - ताः वाद्य, बभू, भुस्या वाद्य इत्यादि।

उल्लेखित वाद्यों में से सबसे ज्यादा प्रयोग किये जाने वाले वाद्यों का वर्णन एवं प्रयोग इस प्रकार हैः

धिमय् वाद्य : धिमय् वाद्य नेवारी संगीत परंपरा में सबसे ज्यादा प्रयोग होता है, जो अवनध वाद्य के अंतर्गत आता है। यह वाद्य लकड़ी को अंदर से पूरा खोखला बनाकर बाहर से चमड़े से मढ़कर बनाया जाता है। यह विभिन्न छोटे और बड़े आकार में बनाई जाती है। सबसे बड़े आकर के धिमय् को 'माँ धिमः' बोलते है जो मुख्य चाडपर्वों में बजाया जाता है। दूसरा छोटा आकार का धिमय् को 'यलय प्वः धिमः' कहते है। धिमय् शब्द संस्कृत भाषा के 'डिण्डिम' शब्द से विकास माना गया है। 'डिण्डि' का अर्थ है अनुकरण। पाली भाषा में दिन्दिम, दण्डिम और पाकृत भाषा डिण्डिम शब्द का अर्थ है नगारा, एक प्रकार की वाद्य है। नेपाली भाषा (नेवारिभाषा) में डिण्डिम शब्द ढिंमड से ढेंमस, ढेंमस से ढ्यमस उस के बाद धेमस और धिमस अपभ्रंस होते होते धिमय् शब्द का विकास माना गया है।(4)

ये देखने में ढोल की तरह होता है, जो एक तरफ लकड़ी से और दूसरी तरफ हाथ से बजाया जाता है। अन्य वाद्यों की तुलना में धिमय् वाद्य प्रमुख वाद्य माना जाता है, क्योंकि इस वाद्य का ज्यादा प्रयोग विभिन्न धार्मिक एवं सांस्कृतिक कार्यक्रम में किया जाता है। इस वाद्य को नेवारी जाति के ज्यापू लोगों का प्रमुख वाद्य माना जाता है जो की ज्यादात्तर खेती का काम करते है। वर्तमान समय में इस वाद्य का प्रशिक्षण तीव्र रूप में हो रही है। पुरुष ही नहीं बल्कि महिलाएं भी इस में सहभागी हो रही हैं।

खिं वाद्य : अवनध वाद्य खिं नेवारी 'दाफा संगीत' में प्रयुक्त मुख्य वाद्य है। यह वाद्य लकड़ी को अन्दर से पूरा खोखला बनाकर बाहर से चमड़े से मोड़कर बनाया जाता है। नेवारी संगीत में खिं के विभिन्न प्रकार बजाई जाती है जैसे खिं, कोताः खिं,।ः खिं, मग खिं इत्यादि। किसी प्रकार के खिं बिना खरी का होता है, तो किसी में खरी होता है। इस वाद्य की लम्बाई लगभग 30 इंच का होता है जो बीच का भाग थोडा फूला हुआ होता है। इस वाद्य में दो गोलाकार भाग होता है। दाएं हाथ से बजाने वाला भाग छोटा गोलाकार का होता है जिसे 'नासः' कहते है और बाएँ हाथ से बजाने वाले भाग बड़ा गोलाकार का होता है जिसे 'मांका' कहते है। जिस खिं में खरी होता है उसे दोनों तरफ हाथों से बजाया जाता है और जिस में खरी नहीं होता है उसे दाएं

तरफ हाथ से और बाएँ तरफ लकड़ी से बजाने की चलन है।[5] खिं वाद्य की सभी प्रकार भगवान की आराधना, स्तुति गायनों में मुख्य संगत वाद्य के रूप में बजाया जाता है। वर्तमान समय में भी इस वाद्य का प्रयोग तीव्र एवं उच्च स्थान में लिया जाता है।

धाः वाद्य : नेवारी संगीत में प्रचलित अन्य अवनध वाद्य की तरह धाः वाद्य भी विशेष अवनध वाद्य के स्थान प्राप्त है इस वाद्य को गुंला वाद्य भी कहते है, क्योंकि यह वाद्य नेवारी गुंला (श्रावन) महीने में बजाया जाता है। श्रावन महीने के अलावा विभिन्न बौद्ध धर्मावलंबी के बुद्धपूजा, लाखे प्याखं (नाच), महाकाली प्याखं आदि पर्वों एवं त्यौहार में बजाया जाता है। इस वाद्य को नेवारी जाति के शाक्य, वज्राचार्य, तुलाधर, ताम्रकार, कःसा, मानन्धर इत्यादि उपजातियां बजाते हैं।

धाःवाद्य भी धीमय् वाद्य की तरह लकड़ी को अन्दर से खोखला करके दोनों भाग में चमड़ी से ढककर बनायी जाती है। इस वाद्य में भी खरी नहीं लगाया जाता है इसलिए बाएँ के तरफ लकड़ी से और दाएं तरफ की भाग में हाथ से बजाया जाता है।[6]

मुहाली वाद्य : मुहाली वाद्य सुषिर वाद्य है, जो नेवारी जाति के जोगी अर्थात कुश लोगों द्वारा बजाई जाती है। प्राचीन समय से इन्हीं जाति द्वारा बजाते आए हुए मुहाली वाद्य वर्त्तमान समय में भी यथावत है। यह वाद्य विशेष मंगलकार्यों में बजाई जाती है। मुहाली वाद्य में तीन भाग होता है। सबसे पहले फूला हुआ भाग धातु का होता है। बीच का भाग लकड़ी से बना होता है जो अन्दर से खोखला होता है और मुंह से फूंकने का भाग कुल्फी नल ताड, तारी पेड़ के पत्ते से बना होता है। नेवारी भाषा में इस वाद्य को मुहाली, म्वाहाली तथा मायली भी कहते है। इस वाद्य का विभिन्न प्रकार है जैसे साधारण मुहाली, पूजा मुहाली, कुकी मुहाली, भमरा मुहाली, रसन मुहाली, नमोध मुहाली, दमाई मुहाली, चाःतु (घुमाहुआ) मुहाली, देशी मुहाली इत्यादि। नेवारी भाषा में संबोधित मुहाली वाद्य को अन्य भाषा में शहनाई, शनाई कहते है।[7] नेवारी संगीत के अंतर्गत आने वाले सुषिर वाद्यों में विशेषतः मुहाली, बांसुरी और बय है, जिसमे वाद्य के बीच छिद्र होता है। अन्य सुषिर वाद्यों जैसे-प्वांगा, काहा, नेकु, हों, ध्वनि इत्यादि में बीच में छिद्र नहीं होता है, इसलिए ये वाद्य एक ही सुर में बजता है।

पोंगा वाद्य : पोंगा वाद्य का प्रयोग नेवारी दाफा संगीत में होता है। यह सुषिर वाद्य है। यह वाद्य ताम्बा का बना होता है जिसकी लम्बाई लगभग 36 इंच का होता है। यह वाद्य बॉस की तरह होता है, जिसका फूंकने का भाग छोटा गोल और आवाज निकलने का भाग बड़ा गोल होता है। इस वाद्य में तीन टुकड़ा होता है जो बजाने के समय में जोड़कर बजाया जाता है। दाफा संगीत में इसका मुख्य काम गायकों को अगला भाग क्या गाना है इस बात की जानकारी देना है। इस वाद्य से दाफा गायन में ताल मेल मिलाने का कार्य करता है इसलिए पोंगा वादक को दाफा गायन शैली एवं अन्य संगत वाद्यों का जानकार होना अति आवश्यक माना जाता है। प्राचीन समय से अत्यंत प्रचलित पोंगा वाद्य वर्त्तमान समय में वादकों के संख्या कम होने के कारण दाफा संगीत समूह में इस वाद्य का वादन बहुत ही कम पाया गया है।[8]

काँ वाद्य : सुषिर वाद्य के अंतर्गत आने वाला काँ वाद्य, नेवारी संगीत में अपना अलग ही स्थान है। इस वाद्य की बनावट लम्बी होती है, परंतु बांसुरी की तरह बीच में छेद नहीं होता है। इसलिए एक ही प्रकार का सुर बजता है। यह वाद्य नायखिं वाद्य तथा धीमे वाद्य के साथ बजाया जाता है। इस वाद्य का प्रयोग विभिन्न जात्रा पर्व एवं रथ परिक्रमा में बजाया जाता है। इस वाद्य को जात्रा पर्व के रथ यात्रा में हमेशा पहला स्थान में रखा जाता है, इसके बाद ही अन्य वाद्यों का क्रम रखा जाता है। यह वाद्य जात्रा पर्व के अलावा मृत्यु के बाद शव को आर्याघाट ले जाने के समय में भी बजाया जाता है।

नेकुं वाद्य : नेकुं वाद्य भैंस की सिंग से बनाया जाता है। इस में एक ही प्रकार की आवाज निकलती है। इस वाद्य को पूरे साल में केवल सावन महीने में ही बजाया जाता है, जिसे नेवारी गुंला महीना कहते है। गुंला महीने में बौद्ध धर्माबलम्बीयाँ सुबह के समय में नेंकू वाद्य, धीमे वाद्य, धाः वाद्य, भुस्या वाद्य आदि बजाके नगर परिक्रमा करके भगवान की आराधना करते है।

ताः वाद्य : ताः वाद्य अष्ट धातु का बना होता है जो घन वाद्य के अंतर्गत आता है। हिन्दुस्तानी संगीत में इस वाद्य को करताल या मंजीरा कहते है। नेवारी संगीत में इस वाद्य को ताल नियंत्रक वाद्य है। हरेक प्रकार के गायन जैसे- दाफा संगीत, भजन, स्तुति, वज्रयान चर्या गीति में विभिन्न प्रकार के नृत्यों में इस वाद्य को अनिवार्य बजाया जाता है। इसलिए इस वाद्य का व्यापकता बढ़ी है। अनुसंधान कर्ताओं के आधार पर आठवीं सदी के विभिन्न मूलतयों में ताःवाद्य वादन की आकृति मिलने से इस वाद्य प्राचीनता भी स्पष्ट होता है। नेवारी परंपरा अनुसार ताः वाद्य को बजाने से पूर्व तांत्रिक विधि द्वारा पूजा करते है फिर गुरु अपने शिष्यों को बजाने के लिए देते हैं। इस वाद्य में दो ही बोल बजता है 'तिं' जो उंचा सुर है और 'छू' जो मंद्रस्वर में होता है। नेवारी संगीत में ताःवाद्य को प्रमुख वाद्य मानते है इसलिए जो व्यक्ति इस की वादन करता है, उस व्यक्ति को प्रमुख वादक मानते है।(9)

भुस्या : नेवारी संगीत में भुस्या वाद्य भी ताः वाद्य की तरह घन वाद्य है जो अष्ट धातु से बना होता है। यह वाद्य ताःवाद्य के तुलना में बड़ा है जिस की गोलाकार 10 इंच होता है। इस वाद्य की मोटाई पतला होता है इसलिए बजाते समय इसकी आवाज बड़ा सुनाई देता है। इस वाद्य को पकड़ने के लिए आसानी हो इसलिए वाद्य के गहरे भाग में छेद करके डोरी बंधा होता है। भुस्या वाद्य विभिन्न अवनध वाद्य जैसे - धाः, नाय खिं, धीमें वाद्य इत्यादि के साथ संगत में बजाया जाता है।(10) नेवारी समाज में कोई भी त्यौहार, पर्वो, जात्रा, शुभ कार्य कहीं प्रदर्शनी, मेला इत्यादि में भुस्या वाद्य की गूंज अवश्य ही सुनने को और देखने को मिलता ही है।

निष्कर्ष : प्रस्तुत शोधलेख में शोधार्थी द्वारा नेपाल में प्रचलित 'नेवारी संगीत' में प्राचीन समय से वर्तमान समय तक प्रचलित लोक वाद्यों का अध्ययन करने का प्रयास किया गया है। शोध पत्र के प्रारम्भ में शोधार्थी ने नेवारी जाति का संक्षिप्त परिचय देते हुए विभिन्न नेवारी संगीत में गाया जाने वाले गीत प्रकारों का नाम उल्लेख किया है। उसके बाद उस गीत प्रकारों में प्रयुक्त होने वाले मुख्य वाद्यों का प्रकार बताया गया है। फिर उन वाद्यों का परिचय बताया गया है। नेवारी संगीत में उन वाद्यों का प्रयोग बजाने का समय, वर्त्तमान समय तक उसकी प्रयोग एवं प्रसिद्धि के विषय में शोधार्थी द्वारा उल्लेख किया गया है।

संदर्भ :

1. तुलाधर प्रा.प्रेमशांति. नेपालभाषा साहित्यको इतिहास. नेपाल प्रज्ञा-प्रतिष्ठान कमलादी काठमांडौ. पृ. 21
2. प्रजापति सुभाषराम. (वि.सं.2063). संस्कृतिभित्रा. नेवाटेक इन्कार्पोरेटेड, सियाटल वाशिङ्टन, सं.रा. अमेरिका. पृ. 9
3. प्रजापति सुभाषराम. (2006). पुलांगु नेपालभाषा नाटकया संगीत पक्ष. नेवाटेक इन्कार्पोरेटेड, वाशिङ्टन, सं.रा. अमेरिका. पृ. 27
4. प्रजापति सुभाषराम. (वि.सं.2063). संस्कृतिभित्र. नेवाटेक इन्कार्पोरेटेड, सियाटल वाशिङ्टन, सं.रा. अमेरिका. पृ. 63
5. मानन्धर त्रिरत्न.(2015). हांदे दाफाया म्हसिका व म्येया स्वरलिपि. कृष्ण मानन्धर. वंतु, पृ. 3
6. शाक्य यचु. धाः बाजंया म्हसिका. पृ. 23
7. लाछि गणेशमान (वि.सं 2072). अमूर्त सांस्कृतिक सम्पदामा मद्यपुर. तेजकृष्णा फाउण्डेशन, चपाचो, मद्यपुर थिमी. पृ. 4
8. मानन्धर त्रिरत्न.(2015). हांदे दाफाया म्हसिका व म्येया स्वरलिपि. कृष्ण मानन्धर. वंतु, पृ. 4
9. प्रजापति सुभाषराम. (वि.सं.2063). संस्कृतिभित्रा. नेवाटेक इन्कार्पोरेटेड, सियाटल वाशिङ्टन, सं.रा. अमेरिका. पृ. 75
10. शाक्य यचु. धाः बाजंया म्हसिका. पृ. 24

भक्ति संगीत की अनन्य साधिका मीरा

संदीप मुखर्जी, डॉ. कुमार अम्बरीश चंचल

सार

भक्ति काव्य और संगीत एक ही रस स्त्रोत से अनुप्राणित है। भक्त या हृदय की रागत्मिका वृत्ति में रस प्राणता भी है और संगीत की आनन्द माधुरी भी इसी प्रकार काव्य की रस प्राणता राग-वृत्ति से असंश्लिष्ट नहीं। भक्ति, श्रद्धा, विश्वास व संगीत से एक ही रस धारा से ओत प्रोत हैं आलौकिक, आध्यात्मिक स्वर से देखने पर ये एक दूसरे से अभिव्यंजित है। भारत में भक्ति और संगीत की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। ज्ञान और योग मार्ग के साथ ही संगीत और भक्ति की प्रतिष्ठा स्वतंत्र रूप से प्राप्त होती है। वेद, महाभारत, भागवत् नारदभक्ति सूत्र, शाण्डिल्य सूत्र आदि में संगीत और भक्ति की व्याख्या प्राप्त हैं। संगीतकार और भक्त के लक्षण और गुण प्रायः सर्वज्ञ समान है। भक्ति का मानव जीवन में प्रत्येक देश और युग में एक महत्वपूर्णस्थान रहा है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में भक्ति का अस्तित्व यह सिद्ध करता है कि यह विश्वव्यापी है।

शब्दकुंजी—भक्ति, रस, काव्य, राग, गीत

भक्ति शब्द भज सेवायाम् धातु से क्तिन् प्रत्यय लगाकर बना है, जिसका अर्थ है भगवान का सेवा प्रकार।

शाण्डिल्य भक्ति सूत्र में भक्ति की व्याख्या इस प्रकार है-

''.....सा परानुर नितरीश्वरे''[1]

अर्थात ईश्वर में परम अनुशक्ति ही भक्ति है

श्री मद भागवत् में भक्ति का लक्षण इस प्रकार वर्णित है-

''स वे पुसां परोधर्मो यतो भक्तिर धो क्षेणे अहैतुक्य प्रतिहता यथाडत्या संप्रसीदति''[2]

अर्थात मनुष्यों के लिए सर्वश्रेष्ठ धर्म वही है, जिससे भगवान श्री कृष्ण में भक्ति हो - भक्ति भी ऐसी जिसमें किसी प्रकार की कामना न हो और जो नित्य निस्तर बनी रहे। ऐसी भक्ति से हृदय आनन्द स्वरूप परमात्मा की उपलब्धि करके कृतकृत्य हो जाता है।

भागवत प्रेम की प्राप्ति के लिए या मानसिक विकारों का शमन करके जो भजन गाये जाते है- भक्ति संगीत कहलाता है। भक्ति संगीतयोग का ही एक स्वरूप है। ईश्वर आराधना के लिए भक्ति संगीत से बढ़कर दूसरा साधन ही नहीं है। भक्ति संगीत द्वारा जब परमात्मा स्वयं प्रभावित और प्रसन्न हो जाते है तो उनकी अनुकूलता से संसार का ही नहीं बल्कि मोक्ष सहित सब कुछ मिल जाता है। भक्ति संगीत में लीन होने पर सहृदय मानव को शीघ्र ही भाव-समाधि का अवर्णनीय, अलौकिक आनन्द रस प्राप्त होता है। वह सुख केवल उसी व्यक्ति के अनुभव की वस्तु है, शब्दों द्वारा अभि व्यक्ति का विषय नहीं। भक्ति संगीत के द्वारा संगीत के आनन्द के साथ भाव रूपी रस का पान भी किया जा सकता है जो अतुलनीय है। भक्ति गान में सहज उद्रेक, नवोन्मेष, सद्यः स्फूर्ति, स्वच्छन्दता तथा अनाडम्बर इत्यादि विशेषताएँ स्वयं आ जाती है। भक्ति भाव को उद्दीप्त करने वाली मूल प्रेरणा उसमें निरन्तर व्यक्त रहती है और उसी के द्वारा भाव का विस्तार नियन्त्रित होता है। मूर्त के अन्दर जो अमूर्त एकरसता और सौन्दर्य विद्यमान है, भक्तिगान के द्वारा कलाकार उसे उद्घाटित कर सकता है।

भक्ति संगीत के अन्तर्गत भजन, कीर्तन संकीर्तन, हरिकथा या किसी विशेष्य ईष्ट के प्रति विशेष रचनाओं से युक्त पद आदि भक्ति परक काव्य को

शोध छात्र, संगीत एवं मंच कला संकाय, बी.एच.यू., वाराणसी
सहायक अध्यापक, संगीत एवं मंचकला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

ही भजन कहते है। भजन की परम्परा सभी समाजों में प्रचलित हैं व्यक्तिगत रूप से एवं सामूहिक रूप से भजन गाये जाते है। कला, संगीत की दृष्टि से स्वर्ण युग कहलाता है। मीराबाई सूरदास, तुलसी, कबीर, मलूकदास इत्यादि के मानस से प्रसूत यह पुण्य वाणी शत-शत नर-नारियो को भक्ति से आप्लावित करने में पूर्ण समर्थ प्रतीत होती है। आज भी मीरा के भाव प्रवण पदों में प्रेम विह्वल भक्ति उनके ईष्ट आराध्य भगवान भी कृष्ण के लिए उनके संगीतमय रागमय पद अर्पित होते है।

मीरा बाई मध्य काल की वह भक्ति क्रान्तिकारी स्वतंत्र महिला थी, जो अपने आराध्य की भक्ति में लोक मर्यादा को छोड़कर वृन्दावन आ गयी और अपने मधुर भक्तिमय संगीत से अपने प्यारे प्राण वल्लभ को रिझाने लगी। मीराबाई स्वयं गीत लिखती और उसे राग, लय, ताल, में बद्ध करके गाती थी। मीरा भक्ति एवं संगीतमय पदों के लिए हमेशा चर्चित रही आपके पदों को तीन श्रेणी में रखा जा सकता है-

लीला सम्बन्धी पद

- जीवन के पद
- व्यक्तिगत अनुराग के पद

सगुण भक्ति के क्षेत्र में मीरा माधुर्य भाव की उपासिका रही इनके पदो में स्वकीया और परकीया दोनों का ही विलक्षण वर्णन है। इनके विरह में वेदना का जो तत्व है वह हृदय को अन्दर तक प्रभावित करता हैं। संगीत के क्षेत्र में मीरा के पद अत्यन्त लोकप्रिय है। इनकी पूरी पदावली राग-रागिनियों से निबद्ध है। इनकी भाषा राजस्थान का पुट लिए हुए ब्रज है इसमें खड़ी बोली और फारसी की भी झलक मिलती है।[3]

मीरा बाई का जन्मस्थान सन् 1498 में राजस्थान के मेड़ता के अन्तर्गत कुड़की ग्राम में हुआ इनके पिता का नाम रत्नसिंह था।[4] बाल्यकाल में ही इनकी माँ का स्वर्गवास हो गया था। इनके बाबा राव जोधा जी ने इनका पालन-पोषण किया। ये कृष्ण भक्त थे इन्हीं के प्रभाव स्वरूप मीरा बाई बाल्यकाल से ही भक्ति की ओर उन्मुख होने लगी थीं। इनका विवाह सिसोदिया वंश के कुंवर भोजराज के साथ हुआ कालान्तर में कुंवर भोजराज जी की मृत्यु हो गयी। उसके बाद मीरा पूर्णतया अपने प्राण प्रियतम गिरधर गोपाल की होकर कृष्ण भक्ति में समर्पित हो गयी लेकिन मीरा के परिवार सम्बन्धी देवर विक्रमादित्य आदि तरह-तरह से अत्याचार शुरू कर दिये। अतः वे धार्मिक यात्रा पर निकल पड़ी और वृन्दावन धाम में पहुँची। तत्पश्चात् 1543 ई.[5] में द्वारका धाम पहुँची। कालान्तर में मीरा की ख्याति भक्ति सन्त गायिका के रूप में होने लगी।

मीरा अपने गिरधर गोपाल की दिवानी प्रेमभक्त थी। उनकी भक्ति का माध्यम था भजन या कीर्तन। मीरा के गीतों में कम से कम नब्बे[6] राग-रागिनियों का प्रयोग मिलता है। राजस्थानी, ब्रज तथा गुजराती इन तीन भाषाओं में मीरा ने पद रचें उनकी पद-रचना शैलियों में शास्त्रीय संगीत के साथ-साथ लोक गीतों की धुनों का भी अद्‌भूत सम्मिश्रण हुआ। मीरा ने गरबा गीत की प्रथा डाली जो आज भी गुजरात में लोकप्रिय है। मीरा बाई का एक राग मीरा की मल्हार है जो उन्होंने स्वयं बनाया। आप गायन, वादन, नृत्य तीनों में पारंगत थी। मीरा की सांगीतिक भक्तिपरक साधना का लक्ष्य एक ही था। वह अपने प्रियतम श्री कृष्ण का रंजन कर भक्ति की पराकाष्ठा को प्राप्त करना। श्रीकृष्ण जी के साथ मीरा के मन की स्थित कभी वियोग तो कभी संयोग की थी अपनी भक्ति के लिए उन्होंने काव्य और संगीत का माध्यम अपनाया।

उदाहरण स्वरूप-

मीरा बाई के सांगीतिक रागमय पद

1. पद- मतवारो बादल आया
   राग - देस

मतवारो बादल आयों रे,
हरि को संदेसो कछु नाहिं लायोरे,
दादुर मोर पपीहा बोले,
कोयल सबद सुनायो रे,
कारी अंधियारी बिजली चमके,
विराहिन अति डरपायो रे,
गाजे बाजे पवन मधुरिया,
मेहा अति झड़ लायो रे,
फूके नाग बिरह अति जारी मीरा'
मन हरि भायो रे।[7]

2. पद-मेरे तो गिरिधर गोपाल राग-मधुबहार
मेरे तो गिरिधर गोपाल, दूसरो न कोई
जाके सिर मोर मुकुट मेरो पति सोई
तात-मात भ्रात-बन्धु अपनो न कोई
छांड़ि दयी कुली की कानि, कहा करि है कोई
संतन दिंग बैठि-बैठि लोक लाज खोई
चुनरी के कीने टूक ओढ लिन्ही लोई
मोती-मूंगा उतार दी नै बनमाला पोई
अंसुवन जल सींचि सींचि प्रेम बेल बोई
अब तो बेल फैल गयी, आणंद फल होई
दूध की मथनियां बड़े प्रेम से बिलाई
माखन जब काढ़ि लियो छाछ पिए कोई
भगति देखि राजी हुई जगत देखि रोई
दासी 'मीरा' लाल गिरिधर तारो अब मोही[8]

3. पद- तुम बिन मेरी कौन खबर ले
राग- भैरवी
तुम बिन मोरी कौन खबर ले गोवरधन
गिरिधारी मोर मुकुट मकराकृत
कुण्डल पीतामबर छवि न्यारी
भरी सभा में द्रौपदी ठाड़ी राखो लाज हमारी
भीष्म कर्ण द्रौण दुशासन तिन मेरी अपत बिसारी
'मीरा' प्रभु! पीछे पछतै हो, जब मोहे देखो उधारी।[9]

4. पद- श्री गिरिधर आग्र नाचूँगी
राग- हमीर
श्री गिरिधर आगे नाचूंगी
नाचि नाचि पिव रसिक रिझाऊँ प्रेमी जन कूँ जाचूंगी
प्रेम-प्रीति की बांधि धुंधरू सुरत की कछनी काहूंगी
लोक लाज कुल की मर्यादा, या मै एक न राखूँगी
पिव के पलंगा जा पौढूँगी 'मीरा' हरी रंग राचूंगी।।[10]

5. पद - माई मैनें गोविंद लीनो मोल
राग-मॉड
माई मैनें गोविंद लीनो मोल
कोई कहे सस्ता, कोई कहे महंगा, लीनो तराजू तोल
कोई कहे घर में कोई कहे वन में राधा के संग खिलोल
मीरा के प्रभु गिरिधर नागर आवत प्रेम के डोल।।[11]

6. राग पीलू में निबद्ध ये पद ठुमरी के रूप में प्रसिद्ध है-
पपैया रे पिव की बोली न बोल
सुण पावेली विरहिणी रे, थारी राखेली पांख मरोर
चोंच कटाऊँ पपैया रे ऊपर कालो रे लूण
पिव मेरा मै पीव की रे तू पिव कहे सो कूण
धारा सबद, सुहावणा रे, जो पिव मेला आज
चोंच मढाऊँ धारी सोवनीरे, कागा तू ले जाए
प्रीतम जासूं यूं कहै धारि बिरहण धान न खाय
मीरा दासी व्याकुली पिव पिव करत बिहाय
*बेगि मिलो प्रभु अन्तर जामी तुम बिन रहो न जाय।।*12

निष्कर्ष

काव्यमयी पदों में सांगीतिक तत्व व रागों का प्रयोग कर मीरा एक संगीत सिद्ध भक्ति निष्ठ व कृष्ण भक्ति द्वारा अपने (मीरा काव्य) को भक्ति रस में पूर्णतः समाहित है।

सन्दर्भ सूची

1. शाण्डिल्य भक्ति सूत्र भक्ति चन्द्रिका सम्पादक गोपीनाथ कबिराज पृ. 5
2. श्री मद्भागवत, 1-2-6
3. हिन्दी भक्ति काव्य एवं गायन संगीत, सिरोठिया, डॉ. ईभा, पृ. 55
4. वही पृ. 55
5. वही पृ. 54
6. ख्याल गायकी और भक्ति रस, पाण्डे डॉ. अमिता, पृ. 78
7. मीरा संगीत सम्पादक, गर्ग डॉ. लक्ष्मी नारायण, पृ. 11
8. वही पृ. 133
9. वही पृ. 125
10. वही पृ. 130
11. वही पृ. 89
12. उत्तर भारत की विभिन्न धार्मिक परम्पराओं में संगीत, सम्पादक, श्रीवास्तव डॉ. संगीता, पृ. 157

समस्तीपुर की संगीत कला साधना में स्वतंत्रता पूर्व के कलाकारों का योगदान

*सुमन सौरभ, **डॉ. लालति कुमारी

सारांश :

संगीत प्राचीन काल से हम इंसानों के जीवन का एक अहम हिस्सा रहा है। संगीत एक दर्द-निवारक की तरह काम करता है अलबत्ता यह निवारण जेहनी तौर पर होता है। संगीत का विकास एक उन्नत संस्कृति की भी पहचान होती है। अन्य सभी कलाओं की तरह संगीत का भी पल्लवन व विकास एक स्थिर और गंभीर संस्कृति में ही संभव हो पाता है। इसी प्रकार किसी भी क्षेत्र की सांस्कृतिक विरासत या वहाँ की चेतना, वहाँ के मानस का निर्माण उसके आसपास के भौगोलिक स्थितियों का भी परिणाम होता है। हम सभी विद्वान इस बात से भिज्ञ हैं कि समस्तीपुर जो एक जिले के रूप में जाना जाता है, वह कभी दरभंगा अनुमंडल के रूप दर्ज किया जाता था। 14 नवम्बर 1972 को स्वतंत्र जिले के रूप में अस्तित्व में आया। सभी विद्वान इस बात से भी भिज्ञ होंगे कि दरभंगा महाराज और उनके परिवार के संरक्षण में वहाँ की कलाओं का काफी विकास हुआ। संगीत भी उनमें से एक था। अतः हम इसका प्रभाव समस्तीपुर जिले पर भी देख सकते हैं। इस कारण समस्तीपुर जिले में भी संगीत का संपूर्ण विकास हो पाया है। हम आजादी के बाद की स्थिति को जानते हैं और वर्तमान से हमारा संबंध है। हम जानते हैं कि हारमोनियम एक वादय के रूप में प्रचार-प्रसार में विशेषकर उत्तरी बिहार के क्षेत्रों में समस्तीपुर जिले का एक महत्त्वपूर्ण योगदान है किंतु यह भी जानना रुचिकर होगा कि यह परंपरा आजादी पूर्व से चली आ रही थी। इस लेख का उद्देश्य उन्हीं गायकों, वादकों एवं नृत्यकारों की पड़ताल करना है जिन्होंने समस्तीपुर जिले के संगीत के क्षेत्र में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

कुंजी शब्द : संगीत, संगीतकार, समस्तीपुर, वादन, गायन, नृत्य, स्वतंत्रता पूर्व

प्रस्तावना :

संगीत का मानव जीवन में अहम स्थान है। गायन, वादन तथा नृत्य के समावेश को संगीत कहते हैं। संगीत एक यौगिक क्रिया है, जिससे शरीर मन और प्राण तीनों में शुद्धता और चैतन्यता आती है। संगीत मनुष्य पर सकारात्मक प्रभाव डालता है। इसके माध्यम से मनुष्य में एकाग्रता बढ़ती है। संगीत हमारे शरीर पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है। संगीत हमारे जीवन शैली का अभिन्न हिस्सा है। हर उम्र के व्यक्ति संगीत पसंद करते हैं, भले ही उनकी पसंद अलग-अलग हो, यह उनकी उम्र, पृष्ठभूमि तथा प्रकृति पर निर्भर करता है। संगीत की अनुभूति मनुष्य अत्यंत प्राचीन काल से करता आ रहा है। संभवत उसने अपना वाद्ययंत्र घास, सरकंडों के डंठलों तथा खोखले बांस से बनाया होगा, जो आगे चलकर आधुनिक उपकरणों में परिवर्तित होते गए और शब्दों के संयोजन ने गीतों और गानों को जन्म दिया। जैसे-जैसे सभ्यता संस्कृति का विकास होता गया वैसे-वैसे बेहतर वाद्य उपकरण तथा गीतों की शैलियों का विकास होता गया। ''संगीत वातावरण

* शोध छात्रा, वि.वि. संगीत एवं नाट्य विभाग, ल.ना.मि.वि.वि. दरभंगा

** सहायक प्राध्यापक, बी.एम.ए. कॉलेज, बहेड़ी

की नीरसता, एकरसता, ऊब और भारीपन को दूर कर सरसता, समरसता, उमंग और उत्साही परिवेश का निर्माण करते हैं।''[1] विज्ञान की तरक्की के कारण हम आज संगीत किसी भी समय कहीं भी सुन सकते हैं। यह हमारे व्यस्त जीवन की थकावट और तनाव को दूर करने में मदद करता है। आज के समय में संगीत का बहुत बड़ा व्यापार है। यह केवल शांति और सुकून नहीं पहुँचाता बल्कि भविष्य में एक अच्छा करियर बनाने का भी रास्ता प्रदान करता है। शादी-विवाह, उत्सव, त्यौहारों पर संगीत के बिना अधूरा लगता है। टॉलस्टाय ने कहा है—''अपने भावों की क्रिया रेखा, रंग, ध्वनि या शब्द द्वारा इस प्रकार अभिव्यक्ति करना कि उसे देखने या सुनने में भी वहीं भाव उत्पन्न हो जाए ''कला'' हैं।''[2] कला ही है जिसमें मानव मन में संवेदनाएँ उभारने, प्रवृत्तियों को ढालने तथा चिंतन को मोड़ने, अभिरुचि को दिशा देने की अद्‌भुत क्षमता है। भिज्ञ है कि कला का एक अभिन्न अंग संगीत रहा है। ''प्राचीन काल की शिक्षा में साधनों, विषयों तथा उपविषयों का अभाव था लेकिन संगीत विषय को अनिवार्य रूप से सिखाया जाता रहा।''[3] संगीत के बिना शिक्षा अधूरी है। शिक्षा का अंतिम उद्देश्य मानवीय विकास है। गुलजार साहब कहते हैं—''संगीत के लिए हमारे जीवन में एक प्राकृतिक जगह है। सुबह उठ कर पूजा के श्लोक, तकरीबन उसी समय दूध वाला आता है, अपनी ही साइकिल की घंटी और साथ में सीटी बजाने से लेकर एक फकीर के गाने की आवाज से लेकर हमारी माँ की खाना पकाते समय की गुनगुनाहट और रात में लोरियों की गर्माहट, संगीत हमारे जीवन की खाली जगह को भर देता है और इसीलिए संगीत सबको पसंद है।''[4]

संगीत के क्षेत्र में समस्तीपुर का अप्रतिम स्थान है। यह इसलिए भी संभव हो पाया है क्योंकि यहाँ की संस्कृति बहुत सहज, सुंदर और धर्मनिरपेक्ष रही है। लोक-काव्य का अपना महत्त्व हम समस्तीपुर में देख सकते हैं। विद्यापतिनगर या विद्यापतिधाम का होना ही इस बात की गवाही है कि विद्यापति जैसा महान लौकिक साहित्यकार ने अपनी अंतिम सांस ऐसे महान भूमि पर ली। इसी प्रकार घर-घर का अनिवार्य हिस्सा बन चुकी पद्मश्री शारदा सिन्हा जी ने भी अपने संगीत के माध्यम से इस क्षेत्र को और समृद्ध किया है। बावजूद इसके जिस प्रशंसा का यह क्षेत्र हकदार है, संभवतः वह पहचान समस्तीपुर को नहीं मिल पाया है।

यह निर्विवादित कथन है कि मिथिला की पावन भूमि अनादि काल से वैदुष्य पूर्ण सारस्वत साधकों की पावन साधना भूमि रही है। महाकवि विद्यापति, महान नैयायिक उदयनाचार्य, गुदड़ी के लाल महान समाजवादी नेता कर्पूरी ठाकुर राष्ट्रीय राजनीति के चाणक्य के नाम से चर्चित बाबू सत्यनारायण सिंह समस्तीपुर क्षेत्र से ही है। समस्तीपुर के निवासियों की मूल आजीविका खेती है। यहाँ की मिट्टी की उर्वरा शक्ति बहुत अधिक है। कृषि के क्षेत्र में अपनी वैज्ञानिक प्रयोगों एवं उत्पन्न प्रजाति की खोज के लिए प्रख्यात राजेंद्र कृषि विश्वविद्यालय समस्तीपुर जिला के पूसा में अवस्थित है। समस्तीपुर में साक्षरता दर की बढ़ोतरी का प्रतिशत पुरुषों तथा महिलाओं में देखी जा सकती है। समस्तीपुर जिले में ब्रिटिश काल में अनेक औद्योगिक इकाइयाँ कार्यरत थी। समस्तीपुर जिले के उत्तर पश्चिम में बूढ़ी गंडक की गोद में बसा हुआ पूसा अपने इतिहास के अनेक परिवर्तनों का साक्षी है। पूसा प्रखंड के अंतर्गत लक्ष्मीनारायणपुर वैनी ग्राम के समस्तीपुर अनुमंडलीय खादी ग्रामोद्योग समिति वर्ष 1965-66 से कार्यरत है। इस संस्था का खादी जगत में गौरवपूर्ण इतिहास रहा है। मसीना बीज निगम उन दिनों मक्का की बीज तैयार करने के लिए पूरे देश में जाना जाता है। समस्तीपुर स्थित पुरातात्विक एवं ऐतिहासिक स्थलों की जानकारी यह बताती है कि यह क्षेत्र ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक रूप से विकसित था। इतिहास बताता है कि बिहार के प्रसिद्ध जाट-जाटिन नृत्य की शुरुआत इसी गाँव के जाट और जाटिनों से हुई थी।

उक्त विषय की सरलता हेतु हम इस विषय को तीन भागों में बाँट सकते हैं— गायन, वादन और नृत्य के कलाकार।

गायन :

गन्नू मलिक—''आजादी पूर्व शास्त्रीय गायक कलाकार में गन्नू मलिक का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह पश्चिम

से आकर भैरोखैरा में ग्राम ताजपुर में बस गए थे। यह मूलतः ध्रुपद गायक थे। वैसे यह सभी प्रकार के गीत गाने में कुशल थे। आस-पास के जमींदारों के यहाँ इनके कार्यक्रम होते थे।''[5]

पंडित धाना गिरी मिश्रा—''यह समस्तीपुर के पचपैका के निवासी थे। पूरे इलाके में अपनी संस्कृति ज्ञान और पंडित्य के कारण ''घाना पंडित'' के नाम से विख्यात थे। यह हारमोनियम बजाने के साथ गीत, गाना तथा भक्ति गीतों की रचना भी करते थे। इनकी प्रसिद्धि भजन कीर्तन गाने के कारण थी। इन्होंने घरहो के रूपकांत जी से संगीत सीख था।''[6]

सत्यनारायण चौधरी—''सत्यनारायण चौधरी जी ने पचगछिया घरां के प्रसिद्ध गायक मंगल लाल से शास्त्रीय संगीत की शिक्षा प्राप्त की थी। ये ध्रुवपद धमार, ख्याल, ठुमरी, विद्यापति संगीत, गीत, गजल, भजन सभी प्रकार के गीत गाते थे। ये एक सुरीले तथा प्रभावशाली गायक थे। अपने क्षेत्र में इन्होंने शास्त्रीय संगीत का प्रचार-प्रसार किया। कई लोगों को शास्त्रीय संगीत की शिक्षा दी थी। ये एक संपन्न जमींदार थे।''[7]

पंडित श्रीकांत मिश्र—''पंडित श्रीकांत मिश्र ने शास्त्रीय संगीत में गायन के अंतर्गत ख्याल, ध्रुपद, ठुमरी, विद्यापति संगीत सीखा था। यह लोक संगीत भी गाते थे। आजादी के दिनों में पूजा प्रखंड के खादी भंडार, पूर्णिया के कुर्सेला स्टेट तथा विभिन्न अवसरों पर समस्तीपुर क्षेत्र के ग्रामीण इलाकों में गायन प्रस्तुति के लिए इन्हें आमंत्रित किया जाता था। यह हारमोनियम, सारंगी, तबला बजाने में निपुण थे। श्रीकांत चौबे-दलसिंहसराय के शास्त्रीय संगीत के प्रतिष्ठित संगीतकार एवं गुरु के रूप में जाने जाते थे। राम अवतार मिश्र-समस्तीपुर के अंग ख्याल के गायक राम अवतार मिश्र ख्याल, ठुमरी, भजन, विद्यापति गीत विशेष रूप से गाते थे। आजादी से पहले विभिन्न कार्यक्रमों में समस्तीपुर, दरभंगा, मुजफ्फरपुर आदि शहरों में संगीत की प्रस्तुति के लिए बुलाए जाते थे।''[8]

श्रीकांत चौबे—''श्रीकांत चौबे, ग्राम मुसापुर, दलसिंह सराय के निवासी थे। ये शास्त्रीय संगीत के प्रतिष्ठित संगीतकार एवं गुरु के रूप में प्रख्यात थे। श्रीकांत चौबे ने शास्त्रीय संगीत की शिक्षा पटना निवासी अपने समय के प्रख्यात कलाकार बुलाकी महाराज से प्राप्त किया था जिनका असली नाम हरिनारायण कपूर था।''[9]

राम औतार मिश्र—''पं. राम औतार मिश्र समस्तीपुर जिला के मालती बिचौलिया ग्राम के निवासी थे। ये ख्याल अंग के गायक थे, जिनमें, ख्याल, ठुमरी, भजन, विद्यापति गीत, विशेष रूप से गाते थे। स्वतंत्रता पूर्व झुलना उत्सव के अवसर संगीत कार्यक्रमों के लिए समस्तीपुर, दरभंगा, मुजफ्फरपुर आदि शहरों में इनकी बुलाहट होती थी।''[10]

वादन

वादक कलाकार

बाबा ठाकुर दास—''ये कुशल पखावज वादक थे। उस समय आकाशवाणी पटना में उनका कार्यक्रम होता था। लोगों से मिली जानकारी के अनुसार इन्होंने अयोध्या के बाबा भगवान् दास से पखावज सीखा था, बाबा भगवान दास, स्वामी पागल दास के गुरु थे।''[11]

छोटो बाबू—''पखावज वादक एवं हारमोनियम में महान कलाकार स्वर्गीय छोटो बाबू उर्फ बृजकिशोर राय उन कलाकारों में से थे जो कला साधना को तपस मानकर अपने जीवन में उतारे थे। तरुणावस्था में ही अथक परिश्रम व अटूट अभ्यास की बदौलत ही यह कलाकार संगीत की दुनिया में देदीप्यमान की तरह चमकने लगे। आगे चलकर इन्होंने तबला वादन भी सीखा।''[12]

रामचंद्र झा मृदंगाचार्य—''नाम से ही यह स्पष्ट है कि यह मृदंग वादक थे। आजादी पूर्व मृदंग वादन में पूरे इलाके में इनकी ख्याति थी। आसपास के 50 गाँवों में इनका नाम था। ताजपुर के ध्रुपद गायक गन्नू मलिक, पंडित रामचंद्र झा के कारण विद्यापति नगर से लेकर मोहिउद्दीनगर तक मृदंग वादन के माध्यम से शास्त्रीय संगीत का प्रचार-प्रसार किया।''[13]

जमुना प्रसाद चौधरी—''समस्तीपुर के स्वर्गीय यमुना प्रसाद चौधरी अपने समय के सिद्धहस्त पखावज वादक हुए हैं। उन दिनों आकाशवाणी पटना से इनके कार्यक्रम प्रसारित होते थे। यमुना बाबू ने

पखावज वादन की शिक्षा बाबा ठाकुर दास से प्राप्त किया था। ठाकुर दास ही अयोध्या के पखावज वादन की भगवानदास के वैष्णव परंपरा पखावज वादक थे। विश्व प्रसिद्ध पखावज वादक स्व. राम शंकर दास, पागल दास, स्व. भगवान दास के ही शिष्य थे। अपने क्षेत्र के तथा अपने समय के सभी ध्रुवपद गायकों के साथ संगति थी।''[14]

नर्तन :

(नर्तक कलाकार)

छट्टू पोद्दार–''छट्टू पोद्दार अपने समय के माने हुए कलाकार थे। ये सुरीले सुकंठ गायक भी थे। यह गजल, लोकगीत, कविता, ठुमरी, विद्यापति तथा गीत गोविंद के पद को गाकर नृत्य किया करते थे। बड़े लोगों के यहाँ उस जमाने में जनेऊ, मुंडन, विवाह इत्यादि के अवसर पर छट्टू पोद्दार का नृत्य आयोजन एक प्रतिष्ठा की बात मानी जाती थी। इनका नृत्य शास्त्रीय शैली के अन्तर्गत भाव प्रधान था।''[15]

सुगम संगीत एवं लोक संगीत गायक–

रामखेलावन राय—''कल्याणपुर समस्तीपुर के निवासी रामखेलावन राय अपने समय के प्रसिद्ध लोक भजन गायक थे। लोगों के अनुसार मंजीरा उनके कमर में हर समय बंधी रहती थी। जोरदार आवाज के मालिक थे तथा अधिकतर लोक धुन गाया करते थे। दूर-दूर तक कीर्तन गाने में इनका नाम था।''[16]

खंतर कामती—''यह रोसरा के क्षेत्र के लोक गाथा गाने वाले प्रसिद्ध कलाकार थे। गाथा गायक के रूप में 20 गाँव तक इनका नाम था। ये लोक गाथाओं को गाकर सुनाया करते थे। ज्यादातर यह लोरिकायन, आल्हा-उदल, नटूवा दयाल सिंह, चौहरमल आदि गाथा गाते थे। खंतर कामती जी को मिथिला के लोकगाथाओं से अनन्य प्रेम था। खंतर कामती हसनपुर बाजार के निकट ही किसी गाँव के रहने वाले थे।''[17]

रामस्वरूप यादव—''यह चौपहरा गायक थे। इनकी मंडली में 9 लोग थे। हरमोनियम, झाल, मृदंग आदि बजाने वालों के साथ अन्य लोग समूह में गाते थे। ये ग्राम तुसहो, पो. बिथान के रहने वाले थे। यह आजादी के पूर्व के भजन कीर्तन गायक थे। प्रस्तुत गीत को यह बार-बार गाते थे– जागो नटवर प्रभु नटवर रनिया बीतल भई भोर। इसका गायन वे राग भैरवी में किया करते थे।''[18]

तिलकधारी पासवान– ''स्वतंत्रता पूर्व के लोक गायक कलाकार थे। उस जमाने में ऐसे लोग व्यवसायिक नहीं होते थे। सम्मानपूर्वक जो भी प्राप्त हो जाता था। सहस्र स्वीकारकर लेते थे। ये ग्राम मर्रया से संबंध रखते थे। इन्होंने लोकगायक के रूप में प्रसिद्धि पाई। 1975 में इनका देहांत हुआ। ये लोक रागों जैसे– सोहर, समदाउन, बटगमनी, उदासी, चैतावर, मल्हार, बसंत आदि में भजन लोकगीत गाते थे। पूरे इलाके में विभिन्न सामाजिक आयोजन पर ये आमंत्रित किए जाते थे। इनकी टोली में हारमोनियम, ढोलक, कंसी बजाने वाले लोग थे।''[19]

उपसंहार—

हमने इस लेख के मार्फत यह अनुभव किया कि स्वतंत्रता से पहले भी ऐसे कला के साधक रहे हैं, जो कि संगीत के क्षेत्रों यथा गायन, वादन, नर्तन एवं सुगम एवं लोक संगीत से जुड़े रहे जो समस्तीपुर जिले के हैं और इनका प्रभाव हम सस्मतीपुर के संगीत के योगदान में देख सकते हैं। यह निश्चित ही एक महत्त्वपूर्ण पहलू है, जिसे उजागर करना हम सभी का प्रयास होना चाहिए। यह जानकारी इस बात पर भी जोर देती है कि पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग प्रशासन एवं धार्मिक न्याय बोर्ड के साथ-साथ आम नागरिकों को भी इसके संरक्षण हेतु आगे आना पड़ेगा।

समस्तीपुर के संगीत गतिविधि की जानकारी स्वतंत्रता पूर्व से ही मिलती है। किसी भी विद्या अथवा प्रणाली को अपनाए रखना है उसको जीवन देता है। किसी भी विकास को संबल प्रदान करता है। समस्तीपुर इस दृष्टि से संगीत के विकास में स्वतंत्रता पूर्व से ही सक्रिय रहा है। सुदूर ग्रामीण अंचलों में शास्त्रीय संगीत के प्रति आम लोगों में रुझान तथा उसकी साधना संगीत के विकास को दर्शाता है। यह लगातार बरकरार रहे ऐसी सदिच्छा जताई जानी चाहिए।

संदर्भ

1. https://www.gkexams.com/ask/73401-Shiksha-Me-Saneet-Ka-Mahatva
2. https://hi.wikipedia.org/wiki/%E0%A4%95%E0%A4%B2%E0%A4%BE
3. https://archive.divyahimachal.com/2016/05/f'k{kk&esa&vfuok;Z&gks&la/amp/
4. https://fizikamind.in/f'k{kk&esa&laxhr&dk&egRo
5. पांडे बाबू सुबलाल के पौत्र और पांडे मदन जी के पुत्र श्री पांडे परनदेव, साह नथुनी, सिंह उमेश प्रसाद, ताजपुर निवासी के द्वारा मिली जानकारी के आधार पर दिनांक-10.08.2014, ताजपुर
6. गिरी पंडित घाना के वयोवृद्ध 80 वर्षीय श्री मिश्र रामाश्रय के द्वारा प्राप्त जानकारी पर आधारित, स्थान-पचपैका, दिनांक-05-02-2012
7. शर्मा कपिल द्वारा मिली जानकारी पर आधारित, दिनांक-04-10-2014
8. मिश्र श्याम मोहन, मिश्र श्रीकांत के पौत्र से मिली जानकारी के आधार पर, वर्ष-2014, स्थान-वैनी पूसा
9. मतवाला आर.एस. से मिली जानकारी के आधार पर, दिनांक-28.07.2014
10. श्री मिश्र अमन से मिली जानकारी के आधार पर, दिनांक-03.11.13 स्थान-खादी भंडार, पूसा
11. मिश्र पंडित रामाश्रय जी से बातचीत पर आधारित जानकारी, दिनांक-05.02.2012, स्थान-पचपैका, दलसिंह सराय
12. राय रामनरेश-ताल दर्शन मंजरी, पृष्ठ 40-41, पाठक पब्लिकेशन, महाजनी टोला, इलाहाबाद वर्ष 1998
13. सिंह रामसिंगार गायक से प्राप्त जानकारी पर, दिनांक-10.02.2012, स्थान-मोहिउद्दीन नगर
14. यमुना बाबू के शिष्य डॉ. अनिल चौधरी के प्राप्त जानकारी के आधार पर, स्थान बंगाली टोला, दरभंगा, दिनांक-18.02.2013
15. भेंटवार्ता-झा पंडित रामचन्द्र, दिनांक-09.04.2014, स्थान-विशनपुर बथुआ
16. डॉ. झा त्रिपुरारि से भेंट कर प्राप्त जानकारी के आधार पर
17. शर्मा कपिल 'गायक' द्वारा मिली जानकारी के आधार पर
18. राय रामनरेश एवं शर्मा कपिल से प्राप्त जानकारी के आधार पर
19. पंडित मिश्र शिवनंदन, पटसा निवासी वयोवृद्ध गायक से मिली जानकारी के आधार पर

विशाखदत्त के नाटकों में यथार्थ चित्रण

*डॉ. पुष्पम नारायण, **सुनिता भारती

सारांश :

संस्कृत नाटकों की परंपरा में विशाखदत्त का एक विशेष स्थान है। विशाखदत्त की नाट्य-रचना मुद्रा-राक्षस पूर्ण रूप में अस्तित्व में है; तथा देवीचन्द्र गुप्त का एक छोटा खंड भोज लिखित 'श्रृंगारप्रकाश' और रामचंद्र-गुणचन्द्र लिखित 'नाट्यदर्पण' में उद्धरण के रूप में मिलता है। अभिनवगुप्त और भोज की रचनाओं में विशाखदत्त के एक तीसरे नाटक 'अभिसारिकावंचितक' का भी उल्लेख है, किन्तु रचना अप्राप्य है। अतः उपरोक्त दो रचनाओं, मुद्राराक्षस और देवीचन्द्रगुप्त के आधार पर ही विशाखदत्त के व्यक्तिव और कृतित्व की समालोचना की जाती है।

नाट्यशास्त्रीय रूढ़ियों का अनुपालन करते हुए विशाखदत्त ने परंपरा से बिलकुल अलग हट कर तथ्यात्मक इतिहास को अपनी रचनाओं का विषय बनाया है। 'मुद्राराक्षस' और 'देवीचन्द्रगुप्त' क्रमशः चौथी शताब्दी ईसा पूर्व के पूर्वार्ध और चौथी-पांचवीं शताब्दी के उत्तर भारत, खासकर पाटलिपुत्र के इतिहास की कुछ भूली-बिसरी कड़ियों को जोड़ता है तथा अपने रचना-काल (पांचवीं शताब्दी के प्रारंभ) की राजनैतिक, धार्मिक और सामाजिक परिस्थियों का भी निरूपण करता है। 'देवीचन्द्रगुप्त' के प्राप्त होने बाद ही गुप्त सम्राटों के वंशावली में रामगुप्त (370-375 ई. पूर्व) के अस्तित्व का पता चल सका। शिलालेखों, सिक्को, दान-पत्र और अन्य साहित्यिक श्रोतों से रामगुप्त के अस्तित्व की पुष्टि की गई। वस्तुतः विशाखदत्त की यह दोनों रचनाएं संस्कृत नाट्य-साहित्य में यथार्थ चित्रण के श्रेष्ठ उदाहरण हैं, जिनका उपयोग इतिहास के श्रोत में किया गया है; और जो इस मिथक को मिथ्या साबित करता है कि संस्कृत नाटक मात्र धार्मिक-कथाओं पर आधारित होते हैं।

Key Words: *Vishakhadatta, Devichandragupta, Mudra Rakshasa, Signet Ring, Sanskrit Drama*

भूमिका (Introduction)

संस्कृत नाटकों की परंपरा पांचवीं से सातवीं शताब्दी ईसा पूर्व से ईस्वी सन की बारहवीं शताब्दी तक रही। आधुनिक यूरोपीय देशों में ईस्वी सन की चौदहवीं शताब्दी में जब नाट्य-साहित्य का प्रादुर्भाव हुआ तब तक संस्कृत साहित्य अपना उत्कर्ष और पतन देख चुका था। प्राचीन ग्रीक और चीन की सभ्यता में रंगकर्म का इतिहास या तो संस्कृत के समकालीन है अथवा बाद का; किन्तु इससे पुराना नहीं माना जा सकता। यह भी प्रमाणित है कि संस्कृत नाटकों पर विदेशी प्रभाव नहीं रहा है। प्रोफ. मैकडोनेल के शब्दों में "भारतीय साहित्य की महत्ता इसकी मौलिकता में निहित है,..... भारत और चीन के अतिरिक्त कोई ऐसा दूसरा देश नहीं जिसके पास भाषा-साहित्य, धार्मिक-सिद्धांत, कर्मकांड, सामाजिक और नाट्यशास्त्रीय रीतियों की तीन हजार साल की अटूट परंपरा का इतिहास हो"।

संस्कृत नाटकों की इस समृद्ध परंपरा में नाटकों के प्रतिपाद्य विषयों में विविधता देखने को मिलती है। धर्म, रोमांस, इतिहास, समाज, राजनीति इत्यादि

*शोध-निर्देशक, विभागाध्यक्ष, संगीत एवं नाट्य विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा।
**शोध छात्र, संगीत एवं नाट्य विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा।

विषय संस्कृत नाट्य-साहित्य में प्रयुक्त हुए हैं। पाश्चात्य लोगों के द्वारा एक सिद्धांत आरोपित किया जाता है कि "जहाँ पश्चिमी देश जीवन और उसके चुनैतियों में विश्वास करता है, भारत, संसार को माया समझ कर जीवन के बाद के चिंतन में व्यस्त रहा है"। इस भ्रामक मान्यता को भी संस्कृत नाटकों ने ही तोड़ा है। इसके लिए अमेरिकन नाट्य समीक्षक जोसफ वुड क्रुट्च का कथन उद्धृत करना ही पर्याप्त होगा जो उन्होंने 1924 के क्रिसमस में 'मृच्छकटिकम' का प्रदर्शन देखने के बाद कहा थारू "इस नाटक में दर्शकों को 'परिशुद्ध कलात्मक रंगमंच' का एक प्रमाणिक उदाहारण देखने को मिलता है, जिसके बारे में सिद्धांतवादी बात करते हैं। यह प्रदर्शन दर्शकों का ध्यान 'पूरब के वास्तविक ज्ञान' की ओर खींचता है जो किसी रहस्य-सिद्धांत से उद्भूत नहीं है बल्कि ईसाइयत की परंपरा से भी ज्यादा सत्य और गहरा है... एक नाटक जो सच न हो कर भी एक सच है... यह किसी नीतिज्ञ के होठों अथवा उसके कलम के निकला हुआ शब्द-प्रवाह नहीं बल्कि एक संवेदनशील लेखक के ह्रदय की पुकार है..."।

यह भी कहा जाता है कि संस्कृत नाटकों में यथार्थ चित्रण का अभाव है, और यहाँ 'यथार्थ' से तात्पर्य केवल सामाजिक-राजनैतिक समस्याओं से होता है। जबकि 'यथार्थ' से सभी प्रकार के तथ्यों यथा, ऐतिहासिक, भौगोलिक, धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक इत्यादि के उपस्थापन का तात्पर्य होना चाहिए। संस्कृत नाटकों का भंडार इन विषयों से परिपूर्ण है। जहाँ एक ओर 'मृच्छकटिकम' में शूद्रक ने एक श्रृंगारिक कथा के माध्यम से तत्कालीन समाज के सत्य को दिखाया है, वहीं विशाखदत्त ने 'देवीचन्द्रगुप्त' और 'मुद्रा-राक्षस' के माध्यम से इतिहास के तथ्यों को पुनर्जिवित किया है। इसके अतिरिक्त लगभग सभी संस्कृत नाटकों से तत्कालीन (रचना काल के) समाज और धार्मिक परम्पराओं का परिचय मिलता है।

सामाजिक और राजनैतिक समस्याएं किसी सभ्यता और संस्कृति के संक्रमण काल की विशेषताएं होतीं हैं, जिनका प्रमुखता से साहित्य पर प्रभाव होता है। संस्कृत नाटकों के उद्भव, विकास और उत्कर्ष की जो अवधि है वह भारतीय संस्कृति और सभ्यता के स्थायित्व का काल है, जिसमें सामाजिक और धार्मिक जीवन की मान्यताओं में कोई विरोधाभास अथवा परिवर्तनकारी प्रतिक्रिया घटित नहीं हो रहा था, जैसा कि बीसवीं शताब्दी में था, जब नए-नए सामाजिक और राजनैतिक विचारधाराएँ अपनी स्थापना के लिए संघर्षरत थीं और प्रगतिवादी रंगमंच में राजनीति-प्रेरित इन द्वंदात्मक विषयों का चित्रण किया जाने लगा।हालाँकि इस काल में भारत का राजनैतिक परिदृश्य उथल-पुथल भरा रहा है। भारत पर ईसा पूर्व चौथी शताब्दी से ही बाहर से आक्रमण होते रहे, राजनैतिक समीकरण बनते बिगड़ते रहे, साम्राज्य स्थापित और विखंडित होते रहे, किन्तु इन सबका प्रभाव यहाँ के सांस्कृतिक-सामाजिक-धार्मिक-संरचना पर नहीं पड़ा। वह इसलिए कि यह एक परिपक्व और प्राकृतिक रूप से स्थापित संस्कृति है, जिसमें विजेताओं को भी विजित करके उन्हें स्वयं में समेट लेने की नैसर्गिक क्षमता है। इसलिए यह कहा जाता है कि 'भारत' बहुत पुराना है किन्तु कभी बूढ़ा नहीं होता।अतः नाट्य रचनाओं में 'विशिष्टता के साथ सामाजिक समस्याओं के चित्रण' का प्रश्न नहीं उठा। साथ ही, भारतीय संकल्पना में नाटक जन-मनोरंजन के साधन थे, इसलिए नाट्यशास्त्रीय रूढ़ियों में विभत्स और हिंसात्मक दृश्यों के मंचन को हतोत्साहित किया गया है।किन्तु यथार्थ तत्वों का समावेश संस्कृत नाटकों का एक प्रमुख अभिलक्षण है, जिसकी पड़ताल समय-समय पर की जाती रही है और इस वर्तमान पत्र में भी की गई है।

प्रस्तुत पत्र में यथार्थ निरूपण के उदहारण के रूप में विशाखदत्त के नाटक 'मुद्रा-राक्षस' और 'देवीचन्द्रगुप्त' के विषय-वस्तु का अध्ययन किया गया है और उनमें निहित ऐतिहासिक तथ्यों को खोजने का प्रयास किया गया है।

शोध सामग्री/प्रक्रिया (Material and methods@methodology)

प्रस्तुत शोध कार्य में प्रमुख सामग्री नाटक 'मुद्रा-राक्षस' का प्रमाणिक संस्करण और कतिपय शोध पत्र हैं जिनकी सूची सन्दर्भ में दी गई है। देवीचंद्रगुप्तम सम्पूर्ण प्राप्त नहीं है। इसके तीन प्रसंग भोज कृत श्रृंगार-प्रकाश में और छः प्रसंग रामचंद्र-गुणचन्द्र के नाट्य-दर्पण में मिलते हैं।विभिन्न श्रोतों में इन प्रसंगों का अनुवाद दिया गया है।

उपरोक्त प्राथमिक श्रोतों के अध्ययन से एकत्रित सामग्री (तथ्यों) की तुलना के लिए इतिहास और पुरातत्व के पुस्तकों का अध्ययन किया गया एवं शोध-शिक्षक से निर्देश लिया गया।

अध्ययन क्षेत्र (Study area) : संस्कृत नाट्य-साहित्य

परिणाम एवं विवरण (Results and discussion)

विशाखदत्त : परिचय और काल–संस्कृत नाटककार विशाखदत्त के जीवन और जीविका के बारे अधिक जानकारी नहीं है। सम्पूर्ण रूप से प्राप्त नाटक मुद्रा-राक्षस के प्रस्तावना में नाटककार को महाराज भास्करदत्त का पुत्र एवं सामंत बटेश्वर दत्त का पौत्र कहा गया है। नाटक के प्रशस्ति खंड (भरतवाक्य, सप्तम अंक, श्लोक 19) में 'पार्थिवचन्द्रगुप्त'का नाम अभिभावक/संरक्षक राजा के लिए किया गया है, जिसकी तुलना विष्णु के वाराह अवतार के साथ की गई है। चूँकि चन्द्रगुप्त मौर्य का सम्बन्ध वैष्णव पंथ से नहीं था, अतः नाटक में उल्लिखित नाम संभवतः गुप्तवंशीय सम्राट चन्द्रगुप्त द्वितीय के लिए हुआ है क्योंकि चन्द्रगुप्त वैष्णव था जिसका विष्णु के वाराह अवतार का उपासक होना एक स्थापित तथ्य है। उदयगिरी गुफा में, जो चन्द्रगुप्त द्वितीय के एक गवर्नर के द्वारा बनाया गया था, विष्णु के वाराह अवतार की स्तुति करता हुआ चन्द्रगुप्त द्वितीय की एक प्रतिमा उत्कीर्ण है। अतः 'पार्थिवचन्द्रगुप्त' नाम चन्द्रगुप्त द्वितीय के लिए ही प्रयुक्त किया गया प्रतीत होता है।

नाटक के विभिन्न संस्करणों में चन्द्रगुप्त के स्थान पर अवन्तिवार्मा, दंतिवार्मा, रंतिवर्मा और रान्तावर्मा आदि नाम मिलते हैं, जिनकी पहचान कश्मीर से लेकर दक्षिण भारत के विभिन्न काल के राजाओं के रूप में की जाती है। चूँकि ये नाम प्रशस्ति के पद में हैं, अतः विभिन्न विद्वानों का मत है कि ये उन राजाओं के नाम हैं जिनके संरक्षण में बाद के नाट्य-प्रदर्शन हुए होंगें। इनमें चन्द्रगुप्त का नाम बदल कर संरक्षक राजा कर दिया गया है।

नाटक मुद्रा-राक्षस के पंचम अंक के श्लोक 11 में 'हूण' जाति का उल्लेख है, जिससे विशाखदत्त का चन्द्रगुप्त द्वितीय के परवर्ती राजाओं के काल के होने का अनुमान होता है, क्योंकि पांचवीं शताब्दी तक भारत में हूणों का पदार्पण नहीं हुआ था। इस सन्दर्भ में कुछ विद्वानों का यह मत है किचूँकि चौथी शताब्दी के अंत तक ओक्सस नदी के पास, अफगानिस्तान एवं पश्चिमोत्तर भारत के सीमान्त में हूणों के जमाव होने लगा था, अतः चन्द्रगुप्त द्वितीय के समकालीन विशाखदत्त द्वारा हूण सैनिकों का उल्लेख अनपेक्षित नहीं है।

उपरोक्त कारणों से विशाखदत्त को चन्द्रगुप्त द्वितीय के काल का, ईस्वी सन चौथी शताब्दी के अंत अथवा पांचवीं शतब्दी के प्रारम्भ का माना जाता है। इसलिए इन्हें कालिदास का भी समकालीन होना चाहिए। चूँकि इनके पिता और पितामह क्रमशः महाराज (क्षेत्राधिकारी/गवर्नर) और सामंत थे; अतः इनका गुप्त राजसभा और राजनीति से सम्बद्ध रहे हो सकते हैं। संभवतः यही कारण है कि विशाखदत्त ने अपने दोनों नाट्य-रचनाओं का विषय राजनीति से ही लिया है। कुछ ऐसे भी प्रमाण उपलब्ध हैं जिनसे विशाखदत्त का गुप्त राजवंश के साथ किसी प्रकार के वैवाहिक सम्बन्ध का अनुमान लगाया जाता है।

देवीचंद्रगुप्त : विशाखदत्त रचित नाटक देविचन्द्रगुप्त आज तक पूर्ण रूप में उपलब्ध नहीं है। अतः इस नाटक से सम्पूर्ण कथानक का हमें पता नहीं है। किन्तु खंड-खंड में प्राप्त इस नाटक के कुछ अंशों से पता चलता है कि यह नाटक ऐतिहासिक सत्य घटना पर आधारित है। इस नाटक के जो अंश उपलब्ध हैं, उससे यह ज्ञात होता है कि"रामगुप्त नाम का एक राजा था, जिसके राज्य पर गिरनार (काठियावाड़) के शक राजा ने आक्रमण किया था। अपने मंत्री की सलाह पर, आक्रमणकारी का सामना करने के बजाय, रामगुप्त अपनी रानी ध्रुवदेवी को शत्रु को सौंप कर बदले में सुलह करने के लिए सहमत हो गया। राजा का छोटा भाई कुमार (चन्द्रगुप्त) इस अपमानजनक समर्पण पर क्रोधित हो गया और उसने ध्रुवदेवी के वेश में शक शिविर में प्रवेश किया और शत्रु राजा को मार डाला"।

बाण भट्ट की रचना हर्षचरित में भी उपरोक्त घटना के होने का संकेत मिलता है, जिसका ज्ञान विद्वानों को देवीचन्द्रगुप्त नाटक के प्राप्त होने के पूर्व भी था।

अरिपुरेपरकलत्रकामुकं कमिनिवेशगुप्तचंद्रगुप्त-स्वचंद्रगुप्तः शकपतिशातयम।
(अरिपुर में चन्द्रगुप्त ने स्त्री-वेष में दूसरे की स्त्री के प्रति कामुक शक राजा का वध किया।)

किन्तु विन्सेंट आर्थर स्मिथ ने इसे "Scandalous tradition affirmed that 'in his enemy's city the king of the Sakas, while courting another man's wife, was butchered by Chandra & gupta, concealed in his mistress's dress' (but the talk does not look like genuine history ", कह कर इसे ऐतिहासिक तथ्य के रूप में स्वीकार नहीं किया।

हर्ष-चरित के शंकारायण द्वारा किये गए टीका में यह घटना कुछ अधिक स्पष्ट है : शकानामाचार्यः शकाधिपतिः चन्द्रगुप्तभ्रातृजायां ध्रुवदेवीं प्रार्थ्यमानः चन्द्रगुप्तेन ध्रुवदेवी-वेशधारिणा स्त्रीवेषजनपरिदृष्टतेन रक्षसि व्यपादितः। (चन्द्रगुप्त ने स्त्रीवेश में स्त्रीवेशधारी भटों के साथ शकधर्माचार्य शकपति का वध किया जो चन्द्रगुप्त के भ्राता की पत्नी ध्रुवदेवी के प्रति कामुक भाव से अग्रसर हो रहा था।)

इससे यह अनुमान होता है कि शंकर के समय तक देवीचंद्रगुप्तम नाटक का अस्तित्व था, जिसके आधार पर टीका में उसने ध्रुवदेवी को चन्द्रगुप्त के 'भ्रातृजायां' होने की बात कही। किन्तु रंगास्वामी सरस्वती ने इसे टीकाकार का भूल करार दिया।

1923 में श्री रामकृष्ण कवी ने राजा भोज कृत 'श्रृंगारप्रकाश' में विशाखदत्त के इस विस्मृत नाटक देवीचन्द्रगुप्त के दो अंशों के उद्धृत होने की सूचना दी। श्रृंगारप्रकाश में उधृत अंश के एक वाक्य "स्त्रीवेषनिह्नुतः चंद्रगुप्तः शस्त्रोः स्कन्दावारं अलिपुरं वधायागमत", हर्षचरित में उद्धृत तथ्य की पुष्टि करता है।

इसके पश्चात् प्रोफ. सिल्विया लेवी ने रामचंद्र-गुणचन्द्र के 'नाट्यदर्पण' में उद्दृत इस नाटक के छः अंशों को प्रकाशित किया। इनके अनुवाद से यह पता चला कि चन्द्रगुप्त के बड़े भाई, जिसकी पत्नी ध्रुवदेवी थी, का नाम रामगुप्त था।

किन्तु प्रोफे. सिल्विया लेवी ने इसे ऐतिहासिक सत्य से दूर बताया क्योंकि उस समय तक स्थापित गुप्तवंश के इतिहास में ध्रुवदेवी या ध्रुवस्वामिनी चन्द्रगुप्त की पत्नी के रूप में स्थापित थी, न कि उसके किसी बड़े भाई की। गुप्तवंश के अभिलेखों में चन्द्रगुप्त द्वितीय समुद्रगुप्त द्वारा चयनित उत्तराधिकारी के रूप में उल्लिखित है। वैशाली में भी एक गुप्तकालीन मुहर प्राप्त हुआ है जिस पर (महाराजाधिराज-श्री-चन्द्रगुप्त-पत्नी-महाराज-श्री-गोविन्दुप्ता-माता- महादेवी श्रीध्रुवस्वामिनी) अंकित है।

राजशेखर की काव्यमीमांसा में तथा अब्दुल हसन अली की 11वीं शताब्दी की फ़ारसी रचना मज्मत-उल-तवारीखमें तथा अन्य कई साहित्यिक श्रोतों में भी देविचन्द्रगुप्त में वर्णित उपरोक्त घटना का उल्लेख मिलता है।

इस प्रकार उपलब्ध साहित्यिक श्रोत जिसमें देवीचन्द्रगुप्त नाटक के घटना की पुष्टि होती है वे हैं :

1. बाणभट्ट (c. 620 CE)
2. अमोघवर्ष अभिलेख (c. 871 CE) (संजान ताम्रपत्र, जिसमें चन्द्रगुप्त द्वारा उसके भाई रामगुप्त की हत्या कर भाभी ध्रुवदेवी से विवाह करने का उल्लेख है)
3. राजशेखर (c. 900 CE)
4. भोज (1018-60 CE)
5. अबु'अल हसन अली (1026 CE)
6. शंकर (c.1713 CE)

इन साहित्यिक प्रमाणों के अतिरिक्त पुरातात्विक प्रमाण भी सामने आये जिनमें निम्नलिखित प्रमुख हैं :

1. राजस्थान के बयाना में 'कच' अथवा 'राम' अंकित गुप्त कालीन सिक्के मिले हैं।
2. भिलसा और मध्य भारत के अनेक स्थानों पर 'रामगुप्त' के सिक्के मिले हैं, जिन पर गरुड़ का प्रतीक अंकित है और जो वजन, बनावट तथा द्रव्य की दृष्टि से चन्द्रगुप्त के सिक्कों से समानता रखते हैं।
3. विदिशा के निकट दुर्जनपुर से जैन तीर्थंकरों की तीन मूर्तियाँ मिली हैं जिनपर स्पष्ट अभिलेख है कि इन्हें महाराजाधिराज रामगुप्त द्वारा स्थापित किया गया।

इन पुरातात्विक और साहित्यिक प्रमाणों के आधार पर ही गुप्तवंश के वंशावली में समुद्रगुप्त और चन्द्रगुप्त द्वितीय के बीच 370-375 को रामगुप्त का शासन-काल माना जाता है।

अतः विशाखदत्त का नाटक देवीचन्द्रगुप्त यथार्थ तथ्यों पर आधारित वैसी कृति है, जिसमें वास्तविक इतिहास के तत्व निहित हैं। यदि यह नाटक सम्पूर्ण रूप से उपलब्ध होता तो संभव है, रामगुप्त के मृत्यु पर भी प्रकाश पड़ता।

मुद्रा-राक्षस

जैसा कि उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है, विशाखदत्त एक ऐसे रचनाकार थे जिन्हें राजनीति और इतिहास की सम्यक जानकारी थी, और उन्होंने इसी को अपनी नाट्य-रचनाओं का केन्द्रीय विषय बनाया। विशाखदत्त की दूसरी रचना मुद्रा राक्षस सम्पूर्ण रूप में प्राप्त है। इस नाटक में चन्द्रगुप्त मौर्य के राज्यारोहण काल (लगभग 324 BCE) का राजनैतिक इतिहास एवं सामाजिक/धार्मिक अवस्था का चित्रण हुआ है।

मुद्राराक्षस के दृश्यांकन में विशाखदत्त ने यथार्थ के ठोस पृष्ठभूमि पर कल्पना का बहुत ही सुन्दर रंग भरा है। चन्द्रगुप्त और चाणक्य के अतिरिक्त अनेक पात्र इसमें वास्तविक और ऐतिहासिक हैं। ऐतिहासिक तथ्यों के साथ इस नाटक में सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक यथार्थ का भी परोक्ष या प्रत्यक्ष रूप से चित्रण हुआ है। इन तथ्यों को इस प्रकार सूचीबद्ध किया जा सकता है :

1. विशाखदत्त ने मुद्रा-राक्षस में क्षपणक, अर्हत, श्रावक और भदंत जैसे शब्दों का प्रयोग किया है, जिससे यह ज्ञात होता है कि मौर्यकाल में अशोक से पूर्व भी जैन और बौद्ध संप्रदाय का प्रभाव समाज में था। इस नाटक से यह भी पता चलता है कि जैन सन्यासियों की अपेक्षा बौद्ध सन्यासी अधिक समादृत थे। बाद के पुरातात्विक और साहित्यिक प्रमाण बताते हैं कि चन्द्रगुप्त ने जैन संप्रदाय हो अपनाया था।

तीसरे अंक के 16वें श्लोक में कंचुकी चाणक्य को 'निरीह' शब्द से वर्णित करता है। इसमें जो भाव अन्तर्निहित है वह कठोपनिषद के दर्शन का है जिसमें उस मनुष्य को मायामुक्त अथवा अमर बताया गया है जो इच्छाओं से परे है। हिन्दू धर्म के बौद्ध संप्रदाय में इसी दर्शन को चार सत्य के रूप में स्वीकार किया गया है। इस प्रकार मुद्राराक्षस के कथानक और दृश्यांकन के माध्यम से भारतीय संस्कृति में अंतर्विष्ट धार्मिक सहिष्णुता का स्पष्ट चित्रण हुआ है।

मुद्राराक्षस का वर्ण्य विषय मौर्यकालीन घटनाएं हैं जबकि इसकी रचना इस काल से करीब आठ सौ वर्ष बाद की है। अतः विशाखदत्त ने मौर्य काल के चित्रण के लिए विभिन्न श्रोतों को अवश्य ही आधार बनाया होगा। इसमें एक श्रोत तो निश्चित रूप से कौटिल्य का अर्थशास्त्र है। अनेक स्थान पर अर्थशास्त्र में वर्णित सिद्धांत एवं शब्दावली का उल्लेख है।

2. मुद्राराक्षस में अमात्य राक्षस पर हुए न्यायिक कार्रवाई के क्रम में विशाखदत्त ने तत्कालीन न्याय व्यवस्था का संकेत दिया है। मौर्यकालीन न्याय और प्रशासकीय शब्दों का प्रयोग शक साम्राज्यके समय में बदल गया था, संभवत उसका प्रयोग फिर से गुप्त काल में शुरू हुआ। इस प्रकरण से यह भी अनुमान लगाया जा सकता है कि विशाखदत्त को प्रशासकीय और न्यायिक पदों पर कार्य का अनुभव था। नाटक में न्याय और प्रशासनिक अधिकारी दंडनायक तथा कुछ नए शब्द जैसे दंड-पाश, काल-पाश इत्यादि का प्रयोग हुआ है, जो उस काल की गुप्तचर और पुलिस सेवाओं में प्रयुक्त शब्द हैं। इसके अतिरिक्त मुद्रा-राक्षस में राज-कर्मियों की मानसिकता और तत्कालीन स्थिति का बहुत ही सजीव एवं वास्तविक चित्रण हुआ है। इससे यह भी पता चलता है कि राज-दरबार एवं उसके निम्न कर्मियों की स्थिति क्या थी।

3. पतंजलि ने पाटलिपुत्र को 'अनुशोणं पाटलिपुत्रम' अर्थात 'शोण नदी पर अवस्थित' बताया है। मेगास्थनीज ने भी इसे गंगा और शोण के संगम पर बताया गया है। मुद्राराक्षस में पाटलिपुत्र को गंगा नदी पर अवस्थित बताया गया है। इससे यह पता चलता है कि पांचवी शताब्दी (विशाखदत्त के समय) तक सोन नदी कटाव के कारण पाटलिपुत्र से दूर चला गया था। चौथे अंक के श्लोक 17 में शोण को 'तीव्र धारा से किनारों को काटने वाला' बताया गया है, जो इस नदी का स्वभाव है जिसके कारण वर्तमान में यह नदी पटना से लगभग 40km पश्चिम से बहती है।

4. मुद्राराक्षस के अंक दो और तीन में मधुमक्खी-पालन तथा विभिन्न प्रकार के पक्षियों का

वर्णन किया है जो उत्तर भारत में पाए जाते हैं। इससे यह भी पता चलता है की विशाखदत्त उत्तर भारत के निवासी थे। मयूर के पालन, उपयोग और स्वभाव सम्बन्धी वर्णन भी तीसरे अंक में दिया गया है। अर्थशास्त्र में भी मयूरों के बारे में उल्लेख है। इससे मौर्यकालीन राजनैतिक और सामाजिक परंपरा का सही चित्र उभर कर सामने आता है।

5. पांचवें अंक के ग्यारहवें श्लोक में अनेक जातियों का उल्लेख है जिसमें शक, खस और हूण भी हैं। इससे पता चलता है कि पांचवीं शताब्दी के प्रारंभ तक भारत में हूण जाती के बारे लोग जानते थे, भले ही उनका आक्रमण और विस्तार भारत के सीमा के भीतर नहीं हुआ था।

6. नाटक मुद्राराक्षस में रचना काल अथवा मौर्यकाल में स्त्रियों के सामाजिक स्थिति का भी संकेत है। अंक छः, श्लोक 5 में अमात्य राक्षस साम्राज्य की तुलना वैसी स्त्री के साथ करता है, जो पति के गोत्र के बाहर विवाह करने जाती है। इस कथन से यह ज्ञात होता है कि विधवा विवाह कम से कम गुप्त काल तक वर्जित नहीं था और स्त्रियाँ स्वेच्छा से वर चयन कर सकती थी भले ही पति के गोत्र के बाहर विवाह अनुमोदित नहीं था।अर्थशास्त्र में स्त्रियों के पुनर्विवाह के जो नियम बताये गए हैं, उनमें सभी जाति के स्त्रियों को (ब्राह्मण सहित) आंशिक यौन और वैवाहिक स्वतंत्रता प्राप्त थी।

अमात्य राक्षस (ब्राह्मण) और चंदनदास (वैश्य) के मैत्री और एक दूसरे के प्रति समर्पण इस बात हो सूचित करता है कि समाज में जातीय भेद-भाव नहीं था। कर्म के अनुसार ही जाति-व्यवस्था थी। साथ ही चांडाल (वधिक) के अतिरिक्त किसी अन्य अस्पृश्य जाति का वर्णन नहीं है।

निष्कर्ष (Conclusion)

इस अध्ययन के परिणाम स्वरुप यह ज्ञात हुआ कि विशाखदत्त के संस्कृत नाटक यथार्थवादी हैं और उन्होंने तथ्यों के आधारभूमि पर ही काल्पनिक दृश्यों को चित्रित किया है। नाटक मुद्राराक्षस नन्द वंश से मौर्य वंश के संक्रमण की एक ऐतिहासिक घटना पर आधारित है, जो उस काल की राजनीति और जटिल कूटनैतिक गतिविधियों का चित्र प्रस्तुत करता है। किन्तु नाटक में कथोपकथन के माध्यम से उस काल की धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक और यहाँ तक कि भौगोलिक तथ्यों का भी स्पष्ट संकेत दिया गया है।

विशाखदत्त के दूसरे नाटक देवीचन्द्रगुप्त से हमें एक अज्ञात ऐतिहासिक तथ्य का पता चला, जिसके आधार पर (अन्य प्रमाणों के आलोक में) गुप्तवंश के इतिहास में संशोधन किया गया। यदि इस नाटक का सम्पूर्ण संस्करण उपलब्ध होता तो रामगुप्त प्रकरण के कुछ और भी तथ्य प्रकाश में आ सकता था।

विशाखदत्त के नाटकों की तरह अन्य संस्कृत नाटकों के सूक्ष्म अध्ययन से उनमें यथार्थ के तत्व खोजे जा सकते हैं।

सन्दर्भ

1. Wilson, H. H., Theatre of the Hindus, Volume I.
2. MacDonnell, Arthur A., A History of Sanskrit Literature, D Appleton & Company New York, 1900.
3. The Nation, New York, 24 December 1924-
4. Dr- J. J. Meyer's Arth Shastra, 1926, Leipzig-
5. Discovery of India, Nehru, J. L., Signet Press Calcutta, 1946-
6. Pandit, R. S., Mudra Rakshas Or Signet Ring, New Book Company Bombay, 1944.
7. Singh Upinder, A History of Ancient and Early Medieval India, Pearson, 2009-
8. Thapar, Romila, The Past Before Us: Historical Tradition of Early North India, Harvard University Press, Cambridge, England, 2013.
9. Smith, V. A., Early History of India, 4th Edition.
10. Saraswati, R., Indian Antiquity, July 1913-
11. Archaeological Survey of India – Annual Report – 1903&4.
12. Jayaswal, K. P., The Journal of Bihar Orissa Research Society Vol- XVIII, 1931-
13. Dhruva, K. H., Mudrarakshasa & Or & The & Signet & Ring, 3rd edition, Oriental Book Agency, Poona, 1930-
14. मुद्रा-राक्षस, आचार्यजगदीशचन्द्रमिश्र, चौखम्भा-विद्याभवन, वाराणसी, 2014.
15. Arrian, Indica 10&2, Harvard University Press, Cambridge, 1949.
16. Thakur, Upendra, Hunas in India, Chaukhambha Sanskrit Series, Vol. LVII, 1967.
17. Arthshastra of Kautilya, Bk-III, Ch. 4.

हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत की गायन शैलियाँ

विनोद कुमार

वह संगीत जो शास्त्रीय ज्ञान से युक्त शास्त्र पर आश्रित हो, उसे शास्त्रीय संगीत कहा जाता है। भारत में शास्त्रीय संगीत की दो प्रमुख पद्धतियाँ प्रचलित हैं। प्रथम हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति जिसे उत्तर भारतीय संगीत पद्धति के नाम से भी जाना जाता है। दूसरी कर्नाटक संगीत पद्धति जिसे दक्षिण भारतीय संगीत पद्धति के नाम से भी जाना जाता है। दक्षिण भारत के कर्नाटक, आन्ध्र प्रदेश, तमिलनाडु और केरल प्रदेशों में कर्नाटक संगीत पद्धति प्रचलित है। इन प्रदेशों को छोड़कर शेष सम्पूर्ण भारत में हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति का प्रचार है।

भारतीय संगीत की मूल धारा एक है। विद्वानों का मानना है कि 'संगीत रत्नाकर' के काल तक अर्थात् तेरहवीं शताब्दी तक समस्त भारत में एक ही संगीत पद्धति का प्रचलन था। तेरहवींशताब्दी के बाद ही भारतीय संगीत हिन्दुस्तानी और कर्नाटक दो पद्धतियों में विभक्त हुआ। कर्नाटक संगीत में प्रयुक्त प्राचीन परम्परागत तत्व नष्ट नहीं हुए। हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति ऐतिहासिक व सांस्कृतिक उत्थान-पतन के मध्य बदलती रही है और इस पर विभिन्न संगीतों का प्रभाव भी पड़ा। इसमें कलाकार की अन्तःप्रेरणा और कल्पना को विशेष महत्व दिया जाता है।

ध्रुपद, धमार, खयाल, तराना टप्पा व ठुमरी हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत की प्रमुख गायन शैलियाँ हैं। इनके अतिरिक्त त्रिवट, चतुरंग, लक्षणगीत, सरगमगीत, लोक शैलियों से प्रभावित दादरा, कजरी, चैती, झूला व भजन आदि प्रचलित गीत विधाएँ हैं।

ध्रुपद -

ध्रुपद हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत की एक प्रमुख व प्राचीन गायन शैली है। इसका प्रचलन मध्यकाल में अधिक था। इसकी उत्पत्ति 'सालगसूड' प्रबन्ध से मानी जाती है। "प्रबन्धों के ही एक भेद 'सालगसूड' के उपभेद 'ध्रुव' से ध्रुपद का विकास हुआ है।"[1] कुछ विद्वान ध्रुपद का आविष्कारक मानसिंह तोमर को मानते हैं। डॉ. जयचन्द शर्मा अपने एक शोध लेख 'ध्रुपद पर प्राकृतिक तत्वों का प्रभाव' में लिखते हैं कि, "ध्रुपद शैली के विषय में स्मरण करते हैं तो ग्वालियर नरेश मानसिंह तोमर (1486-1516 ई.), स्वामी हरिदास, बख्शू ढोढी, बैजू बावरा, तानसेन आदि कलाकारों एवं संगीतज्ञों की झाँकी सम्मुख आती है। उस युग में ध्रुवपद शैली का इतिहास अत्यन्त समृद्ध रहा। मुगल बादशाह अकबर के संरक्षण में यह शैली बहुत ही सुचारू रूप से पनपती रही।"[2]

ध्रुपद की गाायन विधि

ध्रुपद एक गम्भीर प्रकृति की गायन विधा है। इसे मर्दाना गीत भी कहा जाता है। "शब्दों को सच्चे ढंग से सुर में कहना और गमक इत्यादि का प्रयोग कलात्मक ढंग से करना ध्रुपद गायन का धर्म है।"[3] ध्रुपद गायकी के तीन भाग हैं- आलाप, बंदिश (पद) व लयकारी।

सर्वप्रथम अनिबद्ध विलम्बित आलाप 'नोम-तोम' अक्षरों से किया जाता है। आलाप को चार भागों में बाँट कर गाया जाता है- स्थायी, अन्तरा, संचारी

शोधार्थी, मंचकला विभाग (संगीत गायन), महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी

और आभोग। आलाप के बाद बंदिश आरम्भ करते हैं। जिस प्रकार आलापचारी चार भागों में बाँट कर करते हैं, उसी प्रकार बंदिश के भी चार भाग स्थायी, अन्तरा, संचारी व आभोग होते हैं। इन चारों अवयवों से युक्त ध्रुपद गायकी प्राचीन समय में ध्रुपद गायक करते थे। वर्तमान में केवल दो ही चरण स्थायी और अन्तरा ध्रुपद गायकी में सुनने को मिलता है। बंदिश गाकर उसमें उपज और लयकारी किया जाता है।

ध्रुपद गायन में मींड और गमक का विशेष महत्व है। इसमें खटका, मुर्की व तान का प्रयोग नहीं होता है। ध्रुपद गायन में राग की शुद्धता, स्वर व शब्दों के उच्चारण की शुद्धता पर विशेष ध्यान दिया जाता है। यह एक वजनदार शुद्ध गायन शैली है। इस गायन शैली में कला पक्ष को विशेष महत्व दिया जाता है।

ध्रुपद गायन में संगति के लिए प्रयुक्त होने वाले ताल-वाद्य

ध्रुपद के साथ अवनद्ध वाद्य पखावज से संगत की जाती है। जब गायक उपज एवं लयकारी करते है तब पखावज वादक उसी अन्दाज में जवाब देते हुए संगति करते हैं। ध्रुपद एक जोरदार गायकी है, अतः ध्रुपद की रचना एवं गायन खुले बोलों की तालों विशेषतः चौताल, सूलताल, तीव्रातात, सवारीताल, आदिताल व ब्रह्मताल आदि में किया जाता है।

ध्रुपद में प्रयुक्त काव्य की भाषा एवं रस

ध्रुपद में प्रयुक्त काव्य अधिकतर 'ब्रज' भाषा में होते हैं। "प्राचीन काल में संस्कृत ही में ध्रुपद हुआ करते थे। अकबर और तानसेन के युग के बाद ध्रुपदों की रचना हिन्दी या ब्रजभाषा में होने लगी।"[4] ध्रुपद में प्रयुक्त काव्य में सात्विक भावना होती है। यह काव्य वीर रस व श्रृंगार रस प्रधान होते हैं।

ध्रुपद की चार बानियाँ

ध्रुपद गायकों को 'कलावन्त' कहा जाता था। ध्रुपद का पोषण धार्मिक स्थलों और राजदरबारों में हुआ। राजा मानसिंह तोमर के राजदरबार में इस गायन शैली को विशेष संरक्षण व प्रोत्साहन प्राप्त था। लखनऊ, जौनपुर, विष्णुपुर, बेतिया, ग्वालियर एवं रामपुर आदि राज दरबारों में भी ध्रुपद गायन का प्रचार था। यह गायन शैली अपनी गायकी की विशेषताओं के कारण गौडहार बानी, डागुर बानी, खंडार बानी व नौहार बानी इन चार बानियों के रूप में जानी जाती थी। प्राचीनकाल में ग्रामराग शुद्धा, भिन्न, बेसरा व गौड़ी आदि शैलियों में गाये जाते थे। इन शैलियों से भी ध्रुपद की इन चार बानियों की उत्पति मानी जाती है। ध्रुपद गायन शैली के विस्तार व समृद्धि में इन चारों बानियों का विशेष योगदान रहा है।

धमार-

होरी अथवा होली नामक काव्य अर्थात् गीत को जब 'धमार' ताल में निबद्ध कर गाया जाता है, तब वह 'धमार' गायन कहलाता है। धमार भी ध्रुपद की ही तरह मध्यकाल की प्रचलित गायन शैली रही है। धमार की बंदिश प्रकाश और गुप्त दो प्रकार की होती है। वह बंदिश जिसकी प्रथम पंक्ति गाते ही सम दिख जाये, उसे प्रकाश और वह जिसको तीन बार गाने पर उसका सम स्पष्ट हो, उसे गुप्त बंदिश कहते हैं।

धमार की गायन विधि

धमार का गायन ध्रुपद अंग से ही किया जाता है। ध्रुपद के बाद धमार गाया जाता है। इसके भी ध्रुपद की ही तरह स्थायी, अन्तरा, संचारी और आभोग चार भाग होते हैं। कुछ धमारों के स्थायी और अन्तरा दो ही भाग होते हैं। इसके गायन में भी खटका, मुर्की व तानों का प्रयोग नहीं किया जाता है।

धमार गायन में संगति के लिए प्रयुक्त होने वाले ताल-वाद्य

धमार के साथ भी पखावज से संगत की जाती है। "धमार गायकी संपूर्णतः ध्रुवपद गायकी के समान है, किंतु फर्क इतना है कि यह सिर्फ चौदह मात्राओं की ताल 'धमार' में ही गाया जाता है।"[5]

धमार में प्रयुक्त काव्य की भाषा एवं रस

धमार में प्रयुक्त काव्य भी अधिकतर 'ब्रज' भाषा में ही होते हैं। धमार में प्रयुक्त गीतों में राधा-कृष्णा की होरी, पिचकारी व रंग-गुलाल का वर्णन होता है।

धमार गायन की प्रकृति ध्रुपद की तुलना में चंचल है। यह एक श्रृंगार रस प्रधान गायन शैली है।

ख्याल-

ख्याल गायन शैली की उत्पत्ति ध्रुपद से ही मानी जाती है। "आज की मुख्य एवं प्रचलित शास्त्रीय शैली 'ख्याल' का इतिहास भी ध्रुपद और ध्रुपदियों से जुड़ा है।"[6] ख्याल फारसी भाषा का शब्द है, जिसका अर्थ 'कल्पना' होता हैं। कुछ विद्वान 'ख्याल' शैली का आविष्कारक अमीर खुसरो को मानते हैं।" 14वीं शताब्दी में अमीर खुसरों ने भारतीय संगीत में ईरानी संगीत का मिश्रण करके अपनी कल्पना से ख्याल शैली का आविष्कार किया।"[7] ख्याल के दो प्रकार हैं, बड़ा ख्याल और छोटा ख्याल।

जहाँ 'छोटा ख्याल' का आविष्कारक अमीर खुसरो को माना जाता है, वहीं 'बड़ा ख्याल' का आविष्कारक जौनपुर के सुल्तान हुसैन शर्की को माना जाता है। जो भी हो अमीर खुसरो, सुल्तान हुसैन शर्की व सदारंग-अदारंग ने अनेकों 'ख्यालों' की रचना किया और ख्याल शैली का प्रचार-प्रसार किया।

ख्याल की गायन विधि

ख्याल गायन में पहले बड़ा ख्याल तत्पश्चात् छोटा ख्याल गाया जाता है। दोनों ख्यालों के गायकी का अंग समान है। अन्तर केवल लय का होता है। बडा ख्याल बिलम्बित लय में गाया जाता है अतः इसे विलम्बित ख्याल भी कहते हैं। छोटा ख्याल मध्य व द्रुत लय में गायाजाता है। ख्याल के दो भाग होते हैं- स्थायी और अन्तरा। इसके गायन में कण, मुर्की, मींड आदि का विशेष प्रयोग होता है। ख्याल गायकी के भी तीन भाग होतें हैं- आलाप, बंदिश और विस्तार। ख्याल गायक बंदिश से पूर्व संक्षिप्त अनिबद्ध आलाप करतें है। आलाप के बाद बंदिश गाते हैं और आलाप, तान व बोलतान आदि से राग का विस्तार करते हैं।

ख्याल गायन में संगति के लिए प्रयुक्त होने वाले ताल-वाद्य

ख्याल गायन में तबले से संगत की जाती है। प्रमुख रूप से संगीत में तीन प्रकार के लय का व्यवहार किया जाता है। विलम्बित, मध्य व द्रुत लय। बड़ा ख्याल विलम्बित लय में तबले की तालों विलम्बित एकताल, तिलवाड़ा ताल, झूमरा ताल व आड़ाचार ताल के साथ गाया जाता है।

छोटा ख्याल तबले की मध्यलय की तालों के साथ गाया जाता है। जैसे- तीनताल, झपताल, रूपक व एकताल आदि।

ख्याल गायन में प्रयुक्त काव्य की भाषा एवं रस

'ख्याल' में प्रयुक्त काव्य की भाषा भी अधिकतर 'ब्रज' होती है। यह श्रृंगार रस प्रधान गायन शैली है। ख्याल के बंदिश के गीतों की रचना अधिकांशतः संक्षिप्त होती है। ख्याल गायन में आलाप, तान, खटका, मुर्की अर्थात् स्वर के चमत्कार व सौंदर्य पर विशेष बल दिया जाता है।

तराना-

निरर्थक शब्द समूहों द्वारा द्रुत लय में गाई जाने वाली हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत की रोमांचक गायन शैली को 'तराना' कहा जाता है। कुछ तराने मध्यलय में भी गाये जाते हैं। "तराना गायन विधा की रचना का निर्माण चौदहवीं शताब्दी में अलाउद्दीन खिलजी के दरबार में प्रसिद्ध संगीतज्ञ, कवि तथा राज्य मंत्री हजरत 'अमीर खुसरो' ने किया था।"[8] अतः 'तराना' का आविष्कारक भी अमीर खुसरो को ही माना जाता है।

तराना की गायन विधि

'तराना' का गायन छोटे ख्याल के बाद किया जाता है। यह ख्याल अंग से ही गाया जाता है। ख्याल के जैसे इसके भी स्थायी और अन्तरा दो भागहोते हैं।

तराना गायन में संगति के लिए प्रयुक्त ताल-वद्य

तराना प्रमुख रूप से मध्य व द्रुत लय में तबले की तालों तीनताल, झपताल व एकताल आदि तालों में गाया जाता है।

तराना गायन में प्रयुक्त काव्य की भाषा

तराना में प्रयुक्त काव्य के शब्द निरर्थक होते हैं, लेकिन छंद बद्ध होते हैं। कुछ तरानों में तबला व पखावज के बोलों का प्रयोग भी मिलता है।

टप्पा-

खटका, मुर्की व कण आदि से युक्त छोटी-छोटी पेंचदार तानों के साथ पंजाबी भाषा में हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत के काफी, पीलू, भैरवी, झिंझोटी, देश व खमाज आदि चंचल प्रकृति के रागों में गायी जाने वाली गायन शैली को 'टप्पा' कहा जाता है। टप्पा का आविष्कारक लखनऊ के नवाब आसफुद्दौला के दरबारी गायक गुलाम नवी शोरी को माना जाता है।

टप्पा की गायन विधि

टप्पा एक कठिन गायकी है। इसके लिए गले की विशेष तैयारी की आवश्यकता होती है। इसके भी दो भाग होते हैं- स्थायी और अन्तरा। इसका गायन भी ख्याल अंग से किया जाता है।

टप्पा गायन में संगति के लिए प्रयुक्त ताल-वाद्य

टप्पा गायन की संगति तबले से की जाती है। यह टप्पा ताल, तीनताल, फिरोदस्त व दीपचंदी तालों में गाया जाता है।

टप्पा गायन में प्रयुक्त काव्य की भाषा एवं रस

टप्पा में प्रयुक्त काव्य में पंजाबी भाषा के शब्द होते हैं। यह चंचल प्रकृति की श्रृंगार व करूण रस प्रधान गायकी है।

ठुमरी-

हिन्दुस्तानी संगीत में उपशास्त्रीय संगीत की प्रमुख गायन विधा है 'ठुमरी'। " ठुमरी का उद्भव छोटे ख्याल से सम्बद्ध है। इसका जन्म लगभग 19वीं शताब्दी के आरम्भ में हुआ और जन्मदाता गुलाम नवी शोरी थे जो शोरी मियाँ के नाम से विख्यात थे।"[9]

ठुमरी की गायन विधि

ठुमरी गायन में मींड और कण का विशेष प्रयोग होता है। इसकी गायकी के लिए मधुर व चपल कंठ होना चाहिए। राग की से अधिक, भाव और सौन्दर्य को महत्व दिया जाता है। इसकी प्रकृति चंचल है, अतः यह तिलंग, खमाज, काफी, भैरवी, देश, तिलककामोद, पीलू, जोगिया व झिंझोटी आदि चपल रागों में इसका गायन किया जाता है। गायन शैलियों के आधार पर ठुमरी के तीन घराने लखनऊ, वाराणसी व पंजाब प्रचलित हैं।

ठुमरी गायन में संगति के लिए प्रयुक्त ताल-वाद्य

ठुमरी की संगति तबले से की जाती है। इसका गायन जत अथवा दीपचंदी ताल में किया जाता है।

ठुमरी गायन में प्रयुक्त काव्य की भाषा एवं रस

"ठुमरी में ब्रजभाषा का अधिकतम प्रयोग होता है यों ब्रजभाषा ध्रुपद एवं ख्याल में भी प्रमुख है।"[10] ठुमरी में प्रयुक्त काव्य श्रृंगार रस के होते हैं।

संदर्भ सूची -

1. ध्रुपद वार्षिकी पत्रिका, 1990, पृ.20
2. नादार्चन पत्रिका,1992, पृ.22
3. चौबे, डॉ. सुशील कुमार, हमारा आधुनिक संगीत, पृ. 76, सं.2005
4. चौबे, डॉ. सुशील कुमार, हमारा आधुनिक संगीत, पृ. 73, सं.2005
5. संगीत पत्रिका, जनवरी-फरवरी1984, पृ.96
6. ध्रुपद वार्षिकी पत्रिका,1992 पृ.67
7. सक्सेना, डॉ. मधुबाला, ख्याल शैली का विकास, पृ. 03, सं.1985
8. द्विवेदी, डॉ. रमाकान्त, संगीत स्वरित, पृ.226, सं. 2004
9. कारवल, श्रीमती लीला, ठुमरी परिचय, पृ.16, सं. 1995
10. संगीत पत्रिका, जनवरी-फरवरी1984, पृ.72

समय-सिद्धान्त एवम् राग गायन की विभिन्न पद्धतियाँ

अलंकार महतोलिया

सारांश

राग गायन के सन्दर्भ में समय-सिद्धान्त की सत्ता को, हमारे संगीत चिन्तकों ने प्राचीनकाल से ही अपने ग्रन्थों में स्वीकृत किया है तथा हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में, राग-गायन के परिप्रेक्ष्य में समय-सिद्धान्त प्राचीन काल से ही अस्तित्व में है। प्रत्येक राग वर्गीकरण पद्धति में, प्रत्येक राग हेतु, एक निश्चित समय का निर्धारण करके, संगीत चिन्तकों ने समय-सिद्धान्त की महत्ता को स्वीकारा है। साधना के लिए स्वेच्छा से या राजाज्ञा या विशिष्ट अवसर के महत्व की दृष्टि से कोई भी राग किसी समय भी गाया जा सकता है तथापि साधारणतः रागों को विशिष्ट समय व ऋतु की अनुकूलता को ध्यान में रखकर गायन व वादन करने पर वह अधिक प्रभावशाली सिद्ध होते हैं क्योंकि स्वरों की प्रकृति तथा उनकी विशिष्ट स्वर संयोजना का प्रभाव मनोवैज्ञानिक रूप से मानव मन पर पड़ता है और मन से सम्बन्धित संवेग प्राकृतिक वातावरण, ऋतु परिवेश तथा दिन व रात्रि के विभिन्न प्रहरों से एक अविच्छिन्न सम्बन्ध रखते हैं।

मुख्य बिन्दु

समय-सिद्धान्त, प्रहर, राग, राग वर्गीकरण, संगीत, पद्धति

राग गायन के सन्दर्भ में समय-सिद्धान्त की सत्ता को, हमारे संगीत चिन्तकों ने प्राचीनकाल से ही अपने ग्रन्थों में स्वीकृत किया है। 'राग' मूलतः संस्कृत भाषा का शब्द है जिसकी व्युत्पत्ति ''रञ्ज'' धातु में ''धञ्'' प्रत्यय लगाने से हुई है। संगीत में राग शब्द का प्रयोग स्वर, वर्ण युक्त विशिष्ट ध्वनि के रूप में किया गया है, जो कि श्रोता के मन का रंजन कर सके। प्राचीनकाल से आधुनिक काल तक अस्तित्व में रही राग-गायन हेतु विभिन्न संगीत पद्धतियों तथा विभिन्न रागों हेतु निर्धारित समय सिद्धान्त की चर्चा निम्नलिखित प्रकार से है-

1. जाति गायन पद्धतिः

राग गायन प्रचार में आने से पूर्व सम्पूर्ण संगीत ग्राम मूर्च्छना जाति पर आधारित था। रामायण तथा नाट्यशास्त्र जाति गायन की पुष्टि करते हैं। जातियों के वर्गीकरण के लिये ग्राम थे। अर्थात् जातियाँ ग्रामों में विभक्त थीं। षाड्जी, आर्षभी, धैवती तथा नैषादी ये चार शुद्ध तथा षड्जोदीच्यवा, षड्जकैशिकी, षड्जमध्यमा ये तीन विकृत जातियाँ षड्जग्राम के अन्तर्गत थीं। मध्यम ग्राम के अन्तर्गत गन्धारी, मध्यमा, पंचमी ये तीन शुद्ध तथा रक्त गंधारी, गंधारी दीच्यवा, मध्यमोदीच्यवा, गंधार पंचमी, आन्ध्री, नन्दयती, कार्माखी, कैशिकी ये आठ विकृत जातियों के प्रमाण मिलते हैं।

नाट्यशास्त्र में भरतोक्त जाति लक्षणों का उल्लेख **''ग्रहांशो तारमन्द्रौ च न्यासोपन्यास एवं च, अल्पत्वं च बहुत्वं च षाडवौद्युविते तथा''** के रूप में उपलब्ध है। ग्राम रागों की उत्पत्ति जाति गायन से हुई है ऐसा कहकर भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र में उन ग्रामरागों को गाए जाने के अवसर भी निर्दिष्ट किए हैं। तथा नाट्यवस्तु से तदाकार होने के लिए विभिन्न ध्रुवा गीतों को गाये जाने हेतु निर्देशित किया है।

शोध छात्र, संगीत विभाग, दिल्ली वि.वि., दिल्ली

महान विद्वान नान्यदेव ने भरतभाष्य में रागों का सम्बन्ध समय व ऋतु से बताते हुए विभिन्न रागों का उल्लेख निम्नरूप में किया है-

सर्वे रागाः महादेव सम्यक् संतोषकारकः हेमन्त ग्रीष्म वर्षासु कालेषु राग शासिभिः षड्ज मध्यम गान्धार ग्रामा तेया यथाक्रमम् हेमन्ते भिन्नषड्जजाख्येः शिशिरे चैव कैशिकाः बसन्ते चैव हिंदोलः प्रे रव कण्ठे? विगीयते पंचमो गीयते ग्रीष्मे मध्यमग्राम नामकः अभ्राग ये षड्जग्रामण्टक्क रागश्रच गीयते कुकुभः शुभभिच्छाद् भर्गेयंस्तु शरदाग में पूर्वाद्धने चैव मध्याह्ने चापराह्ने यथाक्रमम् ग्राम त्रितयमेतन्तु गेयं श्रोयोभिवाच्छता शुद्ध भिन्ना च या गीतिराया मे प्रथमे मता मध्यप्रहर युग्मे च गौड़ी गीति प्रशस्यते।

मतंग ने अपने ग्रन्थ बृहदेशीय में भरत मत को उद्धत करते हुए कहा है-

मुखे तु मध्यमग्रामः षड्जः प्रतिमुखे भवेत् गर्भे साधारितश्चैवामर्शे तु पंचमः।।

इसके अतिरिक्त जातियों से ग्रामरागों की उत्पत्ति की ओर भी संकेत करते हुए मतंग ने कहा है-**''भरतमुनिजातिसम्भूतत्वाद् ग्राम रागाणामिति।''** राग का सुस्पष्ट उल्लेख मतंग के बृहद्देशी में ही मिलता है।

मतंग ने रागों का वर्गीकरण मुख्य रूप से ग्राम राग या भाषाराग और देशीराग के अन्तर्गत किया है। उन्होंने अपने रागों को सप्त गीतियों शुद्धा, भिन्ना गौड़ी, राग साधारणी, भाषा, विभाषा में विभाजित किया है-

गीतयः पंच शुद्धाद्या भिन्ना गौड़ी च बेसरा साधरणीति शुद्धा स्यादवक्र ललिते स्वरेः।।

मतंग ने यज्ञकाल के समय गाई जाने वाली भाषा का उल्लेख किया है-

''मध्यमांशा धैवतांशा षाडवा ऋषभान्विता गीयते यज्ञकाले या सा ख्याता बाह्म षाडवा''

नारद ने अपने ग्रन्थ नारदीय शिक्षा में सामवेदीय स्वरों को विशेष महत्व देते हुए सात ग्राम रागों का वर्णन किया है। जिसके नाम इस प्रकार हैं-

1. षाड़व, 2. पंचम, 3. मध्यम, 4. षड्जग्राम, 5. साधारिता, 6. कैशिक मध्यम, 7. मध्यम राग।

इसके अतिरिक्त नारद कृत संगीत मकरन्द में गन्धार ग्राम राग का वर्णन उपलब्ध है। इस ग्रन्थ में सर्वप्रथम पुरूष राग, स्त्री राग आदि का उल्लेख है, जिसके आधार पर आगे चलकर राग-रागिनी पद्धति निर्मित हुई। रागों की जाति, प्रकृति तथा समय के अनुसार विभाजन भी किया गया है।

नारद ने अपने ग्रन्थ संगीत मकरन्द में रागों को उनके योग्य समय पर गाने का उल्लेख किया है। नारद के अनुसार जो व्यक्ति राग को अपने नियत समय पर नहीं गाते तथा जो व्यक्ति राग को उनके समय पर नहीं सुनते, वे केवल राग के सौन्दर्य को ही नहीं, अपितु अपने आयुष्य को भी नष्ट करते हैं।

''रागबेला प्रगानेन रागाणा हिंसको भवेत्
यः श्रृणोति स दारिद्री आयुर्नष्यति सर्वदा
देवता विषये गीतं पुण्यनामप्रवर्धनम्
विवाहसमये दानदेवतास्तुति संयुते
अबलरागमाकर्ण्य (अवेलराग) न दोषो भैरवी बिना।

विशिष्ट रागों का समय निर्धारण करते हुए नारद ने कहा-

गान्धारो देवगन्धारो धन्नासी सैंधवी तथा नारायणी गुर्जरी च बंगाल पटमंजरी ललितन्दोल श्रीका सौराष्ट्रेयजयसाक्षिकौ मल्हारः सामवेदी च बसंत शुद्ध भैरवः वेलावली च भूपालः सोमरागस्त्यैव च एते रागास्तु गातव्याः प्रातकाले विशेषतः

इस प्रकार मध्याह्न व सायंकाल में गाए जाने वाले रागों के अन्तर्गत, तत्कालीन रागों में क्रमशः शंकराभरण, पूर्वी, बड़हंस, देशी, मनोहारी, सावेरी, काम्भोजी, गोपिका भोजी, कैशिकी, मधुमाधवी, बहुली, मुखारी, मंगलकैशिक आदि तथा शुद्धनाट, सालगनाट, शुद्धवराटि, गौल, मालवगौल, श्री, अहरी, रामकृती, रंजी, छाया, सर्ववराटी, वराटिका, द्रावटिका, देशी, नागवराटिका तथा कर्णाट आदि रागों का उल्लेख किया है। सूर्यास्त के तीन घण्टे पहले गाए जाने वाले तथा सूर्यास्त के तीन घण्टे पश्चात् गाए जाने वाले रागों का निर्धारण करके नारद ने रागों को विभिन्न प्रहरों में वर्गीकृत किए जाने का भी संकेत किया है। शारंगदेव ने अपने समय में प्रचलित रागों को 10 भागों में विभाजित किया।ग्रामराग, राग, उपराग, भाषा, विभाषा, अन्तरभाषा, रागांग, भाषांग, उपांग, क्रियांग। इनमें से प्रथम 6 मार्गी संगीत और शेष चार देशी संगीत के अन्तर्गत आते हैं।

2. देशी राग पद्धतिः

देशी राग पद्धति के अन्तर्गत् रागांग, भाषांग, क्रियांग, उपांग रागों को सम्मिलित कर प्राचीन ग्रन्थकारों ने इनके विभिन्न लक्षण बताये हैं।

रागांग- रागांग को परिभाषित करते हुए भरत कहते हैं-

ग्राभोक्तानां तु रागाणां छायामात्रा भवेदिति गीतज्ञैः कथिताः सर्वे रागांगास्तेन हेतुना।।

अर्थात् ग्राम रागों के भंग मिश्रण या विकार से जो राग उत्पन्न हुए वे रागांग कहलाते है- जैसे शंकराभरण, दीपक, भैरव इत्यादि।

भाषांग- भाषांग को परिभाषित करते हुए मतंग कहते हैं-

भाषाद्दायाश्रिवा येन जायते सदृशाः किल। भाषांगास्तेन कश्यते गायकैः स्पौतिकादिभिः।।

अर्थात् भाषा-रागों में उत्पन्न हुए विकार किन्तु उनकी छाया अर्थात् किन्हीं अंगों को रखते हुये जिन रागों का विकास हुआ उसे भाषांग कहते हैं।

क्रियांग- क्रियांग राग को परिभाषित करते हुए मतंग कहते हैं-

करूणोत्साहशोकादि प्रभवाः या क्रिया ततः। जायते च यतो नाम क्रियांगः कारणाततः।।

अर्थात् जिन रागों से चित्त में करूणा, उत्साह और शोक जैसे भाव उत्पन्न हो, वे क्रियांग कहलाते हैं।

उपांग- रागांग, भाषांग, क्रियांग इन तीनों के मिश्रण से निर्मित राग उपांग कहलाते है। मतंग के अनुसार-

''अंगच्छायानुकारित्वात्तेषामुपांगत्व चं।''

3. शुद्ध, छायालग एवं संकीर्ण राग पद्धतिः

एक अन्य राग वर्गीकरण पद्धति जिसका उल्लेख प्राचीन ग्रन्थों में प्राप्त होता है, वह है शुद्ध, छायालग एवं संकीर्ण राग पद्धति।

संगीत मकरन्द ग्रन्थ के रचनाकार नारदमुनि ने शुद्ध, संकीर्णादि भेद से रागों के विभाग इस प्रकार कहे है-

''यथाधु पत्रमेणैव रागः शुद्ध उदाहृतः उपत्रम्य यथा रागो मेलनं सममिश्रकम् पुनस्तन्मार्गगमकं रागरंगः प्रकीर्तितः संकीर्ण राग मिश्राणां रागः संकीर्ण उच्यते''।

पं॰ दामोदर के अनुसार राग के तीन भेदों को वर्णित किया गया है। उनके अनुसार-

''शुद्धश्चछायालगाः प्रोक्ताः संकीणाश्च तथैव च।''

अर्थात् राग के तीन भेद हैं, जिन्हें शुद्ध, छायालग तथा संकीर्ण कहते हैं। शुद्ध राग वे हैं, जिन्हें पूर्णयता शास्त्रोक्त रीति से गाने से आनन्द प्राप्त होता है। छायालग रागों में दो रागों का मिश्रण होकर रंजक होता है। संकीर्ण राग में शुद्ध तथा छायालग इन दोनों रागों का मिश्रण होकर आनन्द प्राप्त होता है।

4. राग-रागिनी पद्धतिः

मध्यकाल में मेल पद्धति के साथ-साथ, राग-रागिनी परम्परा का उल्लेख भी मिलता है जिसका आधार भी मतंग के ग्रामराग एवं उनकी भाषा विभाषादि थी। मतंग के पश्चात् शारंगदेव तक के ग्रन्थकारों ने अपने ग्रन्थों को कोई नवीन संयोजन न करके अपने पूर्ववर्ती ग्रन्थकारों का ही अनुसरण किया है। नारद ने राग वर्गीकरण को कई प्रकार से उल्लेखित किया है। नारदकृत संगीत मकरन्द ग्रन्थ में राग वर्गीकरण के विभिन्न रूप प्राप्त होते हैं-

- सूर्यांश राग (प्रातः कालीन राग), मध्याह्नकालीन राग तथा चन्द्रांश राग
- सम्पूर्ण षाडवादि अवस्था के अनुसार- सम्पूर्ण राग, षाडव राग, औडव राग
- लिंग के अनुसार- पुल्लिंग, स्त्रीलिंग एवं नपुंसक राग
- रागांग राग
- छः पुरूष राग और प्रत्येक की छः स्त्रियों से सम्बन्धित मत

चत्वारिंशत् राग निरूपणम् नामक ग्रन्थ के ग्रन्थकार नारद (एक अन्य नाम) ने राग-रागिनियों के परिवार की कल्पना करके दस पुरुष राग, प्रत्येक की 5 स्त्रियाँ 4 कुमार एवं 4 पुत्रवधू का वर्णन किया है। राग-रागिनी पद्धति का उल्लेख हमें मध्यकाल के प्रमुख ग्रन्थकारों जैसे पं॰ शुभंकर, पं॰ पुंडरिक विट्ठल, पं॰ दामोदर इत्यादि की कृतियों में प्राप्त होता है।

'संगीत दर्पण' में पं॰ दामोदर ने मुख्यतः चार मतों का वर्णन किया है। जो इस प्रकार हैं- भरत

मत, कल्लिनाथ मत, शिवमत और हनुमत मत। इसकेअतिरिक्त सोमेश्वर मत, इन्द्रप्रस्थ मत का भी प्रचलन था।पं॰ शुभंकर ने एक मत से छः राग तथा 30 रागिनियाँ तथा दूसरे मत से छः राग तथा छत्तीस रागिनियाँ बनाई हैं। पुंडरिक विट्ठल ने रागमाला नामक ग्रन्थ में छः राग प्रत्येक की पाँच स्त्रियाँ एवं पाँच पुत्र कहे हैं।

पुण्डरिक विट्ठल ने अपने ग्रन्थ रागमाला में छः राग, शुद्ध भैरव, हिंदोल, देशकार, श्री, शुद्धनाट तथा नट्टनारायण कहे हैं, प्रत्येक राग की पाँच रागिनियाँ तथा पाँच पुत्र हैं।

श्रीकंठ ने रस कौमुदी में मेल एवं राग-रागिनी पद्धति का समन्वय करके 11 मेलों के अन्तर्गत 23 पुरूष राग एवं 15 स्त्री रागिनियों का उल्लेख किया है। राग-रागिनि पद्धति का प्रभाव आधुनिक काल तक रहा। आधुनिक काल के विद्वान मोहम्मद रजा ने अपने ग्रन्थ नगमाते आसफी नामक ग्रन्थ में 6 राग तथा 36 रागिनियों के अन्तर्गत, अपने राग व रागिनियों का वर्गीकरण किया है। श्री कृष्ण धन बैनर्जी ने भी अपने गीत-सूत्रसार में इसी राग-रागिनी वर्गीकरण को अपनाया।

5. संस्थान, मेल अथवा थाट पद्धतिः

यद्यपि मेल पद्धति के बीज नारदकृत बृहदेशीय में निहित है, परन्तु इस पद्धति के आद्य प्रवर्तक आचार्य विद्यारण्य माने जाते हैं। आचार्य विद्यारण्य के मतका उल्लेख करते हुए रघुनाथ नायक कहते हैं-विद्यारण्य ने 50 रागों का वर्गीकरण उपर्युक्त मेलों नट्ट, गुर्जरी, वराटी, श्रीराग मेल, भैरवी, शंकराभरण, सामन्त, काम्बोदि, मुखारि, शुद्धरामकिया, केदार गौड़, हीजुज्जि तथा देशाश्री में किया।

कल्लिनाथ ने मेल शब्द का उल्लेख किया है जिससे प्रतीत होता है कि मेल पद्धति कल्लिनाथ के समय में अस्तित्व में थी।

''क्वापि जन्य-जनकयोः मेलन भेदः।''

कल्लिनाथ के पश्चात् दक्षिण के समस्त शास्त्रकारों ने मेल को आधार मानकर राग वर्गीकरण करना प्रारम्भ किया।

मतंग ने ग्राम रागों के श्रुतिभिन्न, जाति-भिन्न आदि चार भेद बताए हैं। शुद्ध कैशिक तथा भिन्न कैशिक रागों की तुलना करते हुए मतंग ने स्पष्ट किया है कि जिस संस्थान से शुद्ध कैशिक राग बनता है उसी संस्थान से ही भिन्न कैशिक भी राग के स्वरूप को प्राप्त करता है।

''येन संस्थानेन रागीयते शुद्ध कैशिकः तेन संस्थानेन भिन्न कैशिकः रागीयते।''

मध्ययुगीन ग्रन्थकार पं॰ सोमनाथ ने मेल को संस्थान कहा है-

''स्वर संस्थान-विशेषाः मेलाः''।

इसी प्रकार लोचन ने भी थाट के लिए संस्थिति तथा संस्थान शब्द प्रयुक्त किया है, यथा-

''वीणायां सर्वरागाणां स्वराणां संस्थिति स्तुया तस्यावादन मात्रेण स्वरव्यक्तिः प्रजायते तास्तु संस्थितयः प्राच्यो रागाणां द्वादशस्मश्ताः या भी रागा प्रगीयन्ते प्राचीनाराग पारगैः।''

अर्थात् लोचन के अनुसार वीणा में सब स्वरों के रागों की संस्थिति है, जिसके वादन से स्वरों की अभिव्यक्ति होती है। ये संस्थिति बारह हैं। इस प्रकार संस्थिति से लोचन ने 12 संस्थिति में अपने रागों का वर्गीकरण किया है। इसी प्रकार संस्थान शब्द का प्रयोग भी तरंगिणी में हुआ है। जैसे भैरवी का वर्णन करने के पश्चात् ''इति भैरवी संस्थान'' कहा गया है।

मतंग द्वारा वर्णित संस्थान को विद्यारण्य कल्लिनाथ, सोमनाथ, लोचनआदि के द्वारा पल्लवित किया गया, जिसका आधुनिक रूप मेल या थाट है। रामामात्य कृत स्वरमेलकलानिधि में 20 मेलों के अन्तर्गत जन्य रागों का निरूपण किया गया है।

मेल की परिभाषा को सोमनाथ ने इस प्रकार बताया है-

''मिलन्ति वर्गीभवन्ति रागा यह्मेति तदाश्रयाः स्वर संस्थान विशेषा मेलाः।''

अर्थात जहाँ राग एकत्रित होकर वर्गीकृत होते हैं, उस स्वर संस्थान को मेल कहा गया है।

सद्रागचन्द्रोदय में पुंडरिक ने 14 स्वर, सात शुद्ध तथा सात विकृत के आधार पर मेल राग वर्गीकरण किया है। पुण्डरिक ने 19 मेलों के अन्तर्गत 63 रागों का वर्गीकरण किया है। हृदयनारायण तथा लोचन ने भी संस्थान के आधार पर राग व्यवस्था दी है। परन्तु स्वर व्यवस्था देते समय उन्होंने ग्राम का

उल्लेख नहीं किया। लोचन ने बारह संस्थानों के अन्तर्गत रागों का वर्गीकरण किया है। इन समस्त संस्थानों में लेखक ने एक स्वर के दो रूपों का नाम उसी स्वर से नहीं लिया, वरन् अपने पूर्व के स्वर का नाम ग्रहण कर लिया है। हृदयनारायण देव ने लोचन के ही थाटों में एक और थाट हृदयरामा मिलाकर तेरह थाटों के अन्तर्गत् राग-वर्गीकरण लोचन के ही अनुसार लिया है।

समय-समय पर शास्त्रकारों ने स्वबुद्धि के अनुसार मेल की संख्या का निर्धारण किया है। लोचन ने 12, हृदयनारायण ने 13, अहोबल ने 14 तथा दक्षिण के ग्रन्थकारों ने इससे भी अधिक मेलों का निरूपण किया।मेल-पद्धति के आधार पर वर्गीकरण करने वाले हृदयनारायण, अहोबल एव उनके अनुकर्ता श्री निवास, पं॰ भावभट्ट, श्री कंठ आदि ग्रन्थकार हैं। हृदयनारायण तथा पं॰ भावभट्ट ने अपने ग्रन्थ में दोनों ही पद्धतियों राग-रागिनी तथा मेल पद्धति के आधार पर राग वर्गीकरण किया है। इसके अतिरिक्त दक्षिण भारत के रामामात्य सोमनाथ, व्यंकटमखी, श्रीकंठ, तुलज आदि ने भी अपने ग्रन्थों में मेल पद्धति का ही वर्णन किया है।

अहोबल तथा श्रीनिवास की संगीत पद्धति में मेल या ठाठ, रागों को उत्पन्न करने की शक्ति रखने वाला स्वरों का एक क्रम मात्र था-

''मेलः स्वरसमूहः स्याद्रागव्यंजन शक्तिमान् श्लिष्टोच्चारणमेवात्र समुदायः प्रकीर्तितः।।''

पं॰ भातखण्डे ने परम्परा से चली आई बंदिशों को एकत्रित किया तथा उनके आधार पर हिन्दुस्तानी रागों को शास्त्र का आधार बनाकर रागों को दस थाटों में वर्गीकृत किया। पं॰ भातखण्डे जी ने रागों के सूक्ष्म निरीक्षण के आधार पर उनका वर्गीकरण निम्नलिखित तीन वर्गो में किया–

1. रे ध तथा ग तीव्र लगने राग
2. रे कोमल तथा ग नि तीव्र लगने वाले राग
3. ग नि कोमल लगने वाले राग

6. रागांग पद्धतिः

रागों के प्रकारों में रागांग प्रकार के रागों का उल्लेख हमें प्राचीन ग्रन्थकार नान्यदेव, शारंगदेव, कुम्भ आदि के ग्रन्थों से ही प्राप्त होने लगता है।

कल्लिनाथ के अनुसार- रागांग राग वे हैं, जिनमें ग्राम रागों की छाया हो'' इससे कल्पना की जा सकती है कि एक मुख्य राग की छाया (किसी विशेष स्वर समुदाय द्वारा) भिन्न-भिन्न रागों में उपस्थित हो, तब उसे उस राग का रागांग कहा जाता होगा। रागांग पद्धति को ही मध्यकाल में भेद पद्धति भी कहा जाता था। मध्यकाल में इस वर्गीकरण का उल्लेख करने वाले ग्रन्थकारोंमें लोचन, भावभट्ट, अहोबल, फकीरूल्ला (रागदर्पण) आदि ग्रन्थकार हैं। लोचन कृत राग-तरंगिणी में नाट के भेद बताए गए हैं।

भेद पद्धति को समश्द्ध बनाने में पं॰ भावभट्ट का योगदान सराहनीय है। उन्होंने अपने अनूप संगीत रत्नाकर में नाट के 16 भेद, कर्नाट के 14 भेद, कल्याण के 13 भेद, बेलावली के 16 भेद, तोड़ी के 9 भेद, गौरी के 8 भेद, गौड़ के 10 भेद, वराटी के 12 भेद, पूरिया के 7 भेद, आसावरी के 3 भेद, केदार के 3 भेद, विहंगड के 2 भेद, सारंग के 4 भेद, भैरव के 10 भेद, कामोद के 7 भेद, गुर्जरी के 8 भेद, सैंधवी के 6 भेद, मल्हार के 3 भेद बताए हैं।

जौनपुर के सुल्तान हुसैन शाह शर्की भी रागांग पद्धति को मानने वालों में से थे। उन्होंने श्याम के 12 प्रकार बताए हैं, जिनका उल्लेख फकिरूल्ला के राग दर्पण के दूसरे अध्याय में है। गौर श्याम, श्याम मल्हार, भूपाल श्याम, किन्नर श्याम, सोहंग श्याम, पूर्वी श्याम, सम्पूर्ण श्याम, श्याम राग, मेघ श्याम, बसंत श्याम, सम्पूर्ण श्याम, श्याम गोदाई, गौड़ श्याम।

आधुनिक काल में हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में रागांग वर्गीकरण को महत्व पूर्ण स्थान प्राप्त है, कुछ आधुनिक विद्वान जैसे कृष्णधन बैनर्जी, पं॰ भातखण्डे, एस॰ एम॰ टैगोर तथा पं॰ नारायण मोरेश्वर खरे ने भी इस पद्धति के महत्व को समझाया है। पं॰ नारायण मोरेश्वर खरे ने अपने अनुभव से 30 स्वर समुदाय चुने जिन्हें रागांग कहा, ये रागांग अर्थात् विशिष्ट स्वर समूह राग को विशिष्ट व्यक्तित्व प्रदान करते हैं।

निष्कर्ष

यद्यपि प्राचीन काल से अर्वाचीन काल तक राग गायन की विभिन्न पद्धतियाँ अस्तित्व में आयी परन्तु

समय सिद्धान्त की सत्ता को संस्कार रूप में प्रत्येक पद्धति ने आत्मसात किया। विभिन्न राग-गायन पद्धतियों में, विभिन्न रागों हेतु, अलग-अलग समयों का निर्धारण कर संगीत चिंतकों ने समय-सिद्धान्त को अपने ग्रन्थों में समायोजित किया है तथा समय-सिद्धान्त की महत्ता का बखान करते हुए राग गायन के परिपेक्ष्य में इसके प्रेषण को अति अनिवार्य घोषित किया है। समय-सिद्धान्त की महत्ता का बखान करते हुए नारद मुनि कहते है कि जो व्यक्ति राग को अपने नियत समय पर नही गाते तथा जो व्यक्ति राग को उसके नियत समय पर नहीं सुनते, वे केवल राग के सौन्दर्य को ही नहीं अपितु अपने आयुष्य को भी नष्ट करते हैं। नारद ने अपने ग्रन्थ में विभिन्न रागों के गायन समय का उल्लेख करते हुए दिन के विभिन्न प्रहरों में गाये जाने वाले रागों को उल्लेखित किया है।

उपरोक्त परम्परा का अनुपालन करते हुये मध्यकालीन ग्रन्थकारों ने भी उनके द्वारा प्रतिस्थापित की गयी विभिन्न गायन-पद्धति हेतु, समय सिद्धान्त की परम्परा को अनिवार्य घोषित किया है तथा उसके महत्त्व को अपने-अपने ग्रन्थों में आदरणीय स्थान दिया है। मध्यकालीन ग्रन्थकार शुभंकर ने संगीत दामोदर में विभिन्न रागों का समय व ऋतु से सम्बन्ध स्थापित करते हुए समय-सिद्धान्त को अनिवार्य माना है, परन्तु यह भी निर्देश दिया है कि रंगभूमि अर्थात् मंच या राजा की आज्ञा होने पर कोई भी राग किसी भी समय गाए जाने में कोई दोष नहीं माना जाना चाहिए। शुभंकर के समान ही पं॰ दामोदर ने संगीत दर्पण में रागों का समय निश्चित करते हुए राजाज्ञा से किसी भी राग को किसी भी समय गाने को मान्यता देते हुए कहा है-

''यथोवत्काल एवैते गेया पूर्वविधानतः राजाज्ञा सदा गेया न तु कालं विचारयेत्।।

पं॰ दामोदर ने रागों के सन्दर्भ में अनेक मत प्रस्तुत किये हैं। जैसे- श्री मत, हनुमत मत आदि तथा उन्होंने प्रत्येक राग हेतु गायन समय का उल्लेख किया है। उनके मतानुसार रागों को उनके नियत समय पर गाने बजाने से सुख प्राप्त होता है-

''यथेच्छया वा गातव्याः सर्वतुषु सुखप्रदाः''।।

अपने ग्रन्थ संगीत पारिजात में भी पं॰ अहोबल ने रागों के समय चक्र का उल्लेख करते हुए अपने द्वारा अपनायी गयी विभिन्न राग-वर्गीकरण पद्धतियों में सम्मिलित विभिन्न रागों हेतु समय का निर्धारण किया है। पं॰ अहोबल ने अपने ग्रन्थ में दिन के प्रथम, द्वितीय, तृतीय प्रहर में गाये जाने वाले रागों की सूची देकर कुछ सर्वकाल गेय रागों का उल्लेख किया है। अहोबल के अनुसार विभिन्न प्रहरों में गाये जाने वाले राग इस प्रकार से हैं-

दिन के प्रथम प्रहर में गाये जाने वाले राग- धनाश्री, मालवश्री, बसन्त, देशाख्य, भूपाली, कोल्हास, भैरव, मध्यामि, बंगाल, नारायणी, विभास, छायातोड़ी, मालतोड़ी, रामकली, कुकुंभ आदि।

दिन के द्वितीय प्रहर में गाये जाने वाले राग - वराटी, तोड़ी वराटी, नाग वराटी, प्रताप वराटी, शोकवराटी, सारंग।

दिन के तृतीय प्रहर में गाये जाने वाले राग- गौरी, कन्नडी कल्याण, वराटी, खम्बावती, कल्याण व मालव।

इसके अतिरिक्त उन्होंने रागों को विभिन्न ऋतुओं के अनुकूल गाने हेतु भी निर्देशित किया है।

इसी प्रकार लोचन ने भी अपने द्वारा अपनायी गई विभिन्न राग वर्गीकरण पद्धतियों में समय-सिद्धान्त को अति महत्वपूर्ण स्थान दिया है। लोचन के मतानुसार भैरवी तथा रामकली को प्रातः काल में, आसावरी को दिन के तृतीय प्रहर में, बेलावली को दिन के प्रथम प्रहर में, केदार को अर्धरात्रि या महानिशि में, कर्णाट को रात्रि के द्वितीय प्रहर में, अड़ाना को रात्रि के तृतीय प्रहर में तथा तोड़ी के दोपहर में गाया जाना चाहिए। प्राचीन एवं मध्यकालीन समय-सिद्धान्त सम्बन्धी मान्यताओं का अनुसरण करते हुए आधुनिक ग्रन्थकारों ने भी अपने-अपने द्वारा मान्य राग वर्गीकरणों में प्रत्येक राग हेतु समय का निर्धारण करते हुये समय-सिद्धान्त को उल्लेखित किया है।

प्राचीन काल से अर्वाचीन काल तक व्याप्त रही समस्त राग वर्गीकरण पद्धतियों के सिंहावलोकन से यह तथ्य सामने आता है कि प्रत्येक राग वर्गीकरण पद्धति में, प्रत्येक राग हेतु, एक निश्चित समय का निर्धारण करके, संगीत चिन्तकों ने समय-सिद्धान्त की महत्ता को स्वीकारा है। इससे यह भी प्रमाणित

होता है की यद्यपि साधना के लिए स्वच्छा से या राजाज्ञा या विशिष्ट अवसर के महत्व की दृष्टि से कोई भी राग किसी समय भी गाया जा सकता है तथापि साधारणतः रागों को विशिष्ट समय व ऋतु की अनुकूलता को ध्यान में रखकर गायन व वादन करने पर वह अधिक प्रभावशाली सिद्ध होते हैं क्योंकि स्वरों की प्रकृति तथा उनकी विशिष्ट स्वर संयोजना का प्रभाव मनोवैज्ञानिक रूप से मानव मन पर पड़ता है और मन से सम्बन्धित संवेग प्राकृतिक वातावरण, ऋतु परिवेश तथा दिन व रात्रि के विभिन्न प्रहरों से एक अविच्छिन्न सम्बन्ध रखते हैं।

सन्दर्भ

1. हिन्दुस्तानी संगीत में राग की उत्पत्ति व विकास, पाठक डॉ॰ सुनंदा, पृष्ठ 215
2. संगीत मधुबन- सक्सेना डॉ॰ राकेश व मधुबाला, पृष्ठ-57
3. हिन्दुस्तानी संगीत में राग की उत्पत्ति व विकास, डॉ॰ सुनंदा पाठक, पृष्ठ 287
4. पंचम अलंकाराध्याय, खण्ड-1, पृष्ठ-149
5. बृहद्देशीय, मतंग, पृष्ठ-87
6. बृहद्देशीय, मतंग, पृष्ठ-87
7. बृहद्देशीय, मतंग, श्लोक नं॰- 41, पृष्ठ- 235
8. संगीत मकरन्द, नारद, पृष्ठ-19
9. संगीत मकरन्द, नारद, पृष्ठ-20
10. संगीत मकरन्द, नारद, (10-12), पृष्ठ- 15
11. नाट्यशास्त्र भरत, भाग-4, पृष्ठ 301
12. बृहद्देशी, मतंग, पृष्ठ-31
13. बृहद्देशी, मतंग, पृष्ठ-35
14. बृहद्देशी, मतंग, पृष्ठ-36
15. संगीत मकरन्द, नारद, (श्लोक नं॰ 52-53), पृष्ठ 23-24
16. संगीत दर्पण, पं॰ दामोदर, पृष्ठ-72
17. संगीत रत्नाकर, कल्लिनाथ, पृष्ठ- 115
18. बृहद्देशीय- मतंग, पृष्ठ- 90
19. राग विबोध, श्लोक-311, (टीका), पृष्ठ- 79
20. रागतरंगिणी- लोचन, पृष्ठ- 121
21. राग विबोध- 2 (टीका),पृष्ठ-39-40
22. राग विबोध- पृष्ठ- 79
23. संगीत परिजात- अहोबल,,लोक- 357, पृष्ठ- 102
24. भातखण्डे संगीत शास्त्र, भाग-4,, पृष्ठ - 7
25. संगीत रत्नाकर- भाग-2, पृष्ठ- 15, कल्लिनाथ
26. राग दर्पण, पृष्ठ- 78

किराना घराना और आगरा घराना : बंदिश की विशेषता का तुलनात्मक अध्ययन

पारुल शर्मा

सारांश

पूर्व काल में भारतीय शास्त्रीय संगीत में ख्याल गायकी के कई घराने प्रचलित थे जैसे रामपुर, दिल्ली, आगरा, लखनऊ, किराना, पटियाला, जयपुर, मेवाती, ग्वालियर, भिंडी बाजार घराना। इन सभी घरानों की अपनी विशिष्ट शैलियां है परंतु वर्तमान में केवल कुछ घराने ही मुख्य रूप से प्रचलन में रह गए हैं हर घराने की अपनी अलग. अलग विशेषताएं है इनमें से किराना और आगरा घराना संगीत में गायन शैली के आधार पर अपना महत्वपूर्ण स्थान बनाए हुए हैं किराना घराना अपनी गायकी और अनोखी प्रतिभा के कारण जाना जाता है स्वर प्रधान गायकी होने के कारण इसमें बंदिश के बोलो की तरफ ज्यादा ध्यान नहीं दिया जाता बल्कि भाव के आधार पर बोल बनावट को विशेष स्थान दिया जाता है और आगरा घराने की गायकी पर लयकारी का विशेष प्रभाव देखा जाता है। इस घराने में बंदिश के बोलो की तरफ ज्यादा ध्यान दिया जाता है बंदिश के बोलो को कलात्मक तरीके से पेश करना इस घराने की विशेषता है इस प्रकार दोनों घरानो की बंदिश प्रस्तुत करने के तरीके में काफी अंतर देखने को मिलता है दोनों घराने अपनी-अपनी बंदिश कहने के ढंग को लेकर विशेष लोकप्रिय है दोनों घरानो की गायकी को आज भी संगीत के विद्यार्थी अपना रहे है वर्तमान समय की माणिक वर्मा ने इन दोनों घरानों के दिग्गज कलाकारों से शिक्षा प्राप्त कर अपनी अलग गायकी बनाई। आशा है कि इसी प्रकार भविष्य में नई पीढ़ी के कलाकार किसी एक घराने की गायकी पर निर्भर ना रहकर अपनी गायकी में विभिन्न घरानों के सौंदर्य तत्वों का समुचित मिश्रण करके अलग.अलग प्रकार की बनाएंगे यही मेरे उपरोक्त शोध-पत्र का उद्देश्य है।

मुख्य बिंदु

किराना घराना, आगरा घराना, बंदिश, मुखड़ा, भावपूर्ण, नोम-तोम् आलाप, लयकारी,

भारतीय शास्त्रीय संगीत केवल मनोरंजन का साधन ही नहीं तथापि ईश्वर उपासना का मार्ग होते हुए मनुष्य की हृदयगत भावनाओं का सौंदर्य पूर्ण नादमय अभिव्यक्ति- करण भी है आदिकाल से एक वेगवान प्रवाह के रूप में चलती आ रही संगीत की गायन सरिता में कई तरह के मोड़ आए जो प्रबंध, ध्रुपद, धमार, ख्याल, टप्पा, ठुमरी, गीत, गजल, व भजन इत्यादि शास्त्रीय उप शास्त्रीय अथवा सुगम संगीत के रूप में जाने गए। इनमें से ख्याल गायन शैली एक ऐसा मोड़ था, जहां पर इस संगीत सरिता ने अन्य छोटी-छोटी धाराओं में प्रवाहित होना शुरु कर दिया, जिन्हें आज हम संगीत के घरानों के रूप में जानते हैं। घराना अर्थ संगीत में विशिष्ट अर्थ से प्रयुक्त होता है। यद्यपि शाब्दिक अर्थ से घराना किसी कुल, वंश या परिवार के लिए अभिप्रेत है, तथापि संगीत की ख्याल गायन शैली में एक विशिष्ट ढंग की गायन प्रणाली के अर्थ में यह शब्द प्रयुक्त होता है। शास्त्रीय संगीत में ग्वालियर, आगरा, जयपुर अतरौली, किराना, पटियाला और दिल्ली इत्यादि

* शोधार्थी (यूजीसी नेट), संगीत एवं नृत्य विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र, Email-sharmaparul21987@gmail.Com

कई प्रसिद्ध घराने अपनी गायकी प्रस्थापित कर चुके हैं शास्त्रीय संगीत में संगीत के मूल तत्व स्वर, तान आदि का समुचित मिश्रण होते हुए भी, जब घराना परंपरा से अपना नाता जोड़ने लगता है, तो उसमें आवाज का विशिष्ट लगाव, राग विस्तार की प्रक्रिया, तान का वैशिष्ट्य पूर्ण ढंग, बंदिशों का अलग-अलग रख-रखाव उस समूचे गायन के प्रस्तुतीकरण का अपना अलग-अलग अर्थ स्पष्ट होता है। इसी कारण संगीत में गायन शैली के आधार पर भिन्न-भिन्न घरानों में किराना और आगरा घराना अपना महत्वपूर्ण स्थान बनाए हुए हैं।

किराना घराना– भारतीय शास्त्रीय संगीत और गायन की हिंदुस्तानी ख्याल गायन की परंपरा को वहन करने वाले घरानों में से एक है किराना घराना। जो अपनी चैनदारी तथा भाव प्रधान गायकी के लिए विशेष रूप से प्रसिद्ध है इस घराने का उद्‌गम प्रसिद्ध बीनकार उस्ताद बंदे अली खान से माना जाता है इस घराने का नामकरण यूपी के मुजफ्फरनगर जिले के किराना से हुआ माना जाता है जो इस घराने के प्रसिद्ध संगीतज्ञ अब्दुल करीम खां का जन्म स्थान भी है अब्दुल करीम खां को इस घराने का वास्तविक संस्थापक माना जाता है गायन के संदर्भ में मुख्यतरूअब्दुल करीम खान साहब और उस्ताद अब्दुल वहीद खान साहब इस घराने के आधुनिक प्रचारक है जिन्होंने अपनी गायकी से, इस घराने को ख्याल गायकी के प्रतिष्ठित घरानों में स्थान दिलाया है।

आगरा घराना–आगरा घराने का आरंभ शाहजहां अकबर के दरबारी गायक 'हाजी सुजान खां' जो तानसेन के दामाद थे, से माना जाता है। किंतु आगरा घराने की गायकी के प्रचार-प्रसार और उसे समृद्ध करने का श्रेय 'घग्घे खुदाबख्श' को ही जाता है आगरा घराना भारत के प्रसिद्ध घरानों में से एक है। यह मूलतः ध्रुपद-धमार गायकों का घराना रहा है इसलिए इसके ख्याल गायन पर भी ध्रुपद धमार के नोम तोम की आलापचारी और लयकारी की स्पष्ट छाप देखी जा सकती है। जहां तक गायकी का संबंध है इस घराने की गायकी का ग्वालियर घराने की गायकी से विशेष संबंध है क्योंकि आगरा घराने की ख्याल शैली के अन्वेषक घग्घे खुदाबख्श ने ख्याल की शिक्षा ग्वालियर घराने के मूल पुरुष 'नत्थन पीरबख्श' से प्राप्त की थी। इसीलिए दोनों गायकियां आपस में मिलती-जुलती हैं।

(किराना घराना और आगरा घराना) बंदिश की विशेषता–

किराना घराने में बंदिश वह काव्यात्मक संरचना है जो राग अनुकूल कुछ निश्चित स्वरों तथा एक निश्चित ताल चक्र में निबद्ध रहती हैं और आगरा घराने में बंदिश गाना एक बहुत जरूरी चीज मानी जाती है नई-नई आकृति का सौंदर्य पाने के लिए एक ही राग की कई रूप दिखाने के लिए यह एक अच्छा तरीका होता है प्रत्येक बंदिश का अपना एक मिजाज होता है। इस मिजाज को समझ कर जब बंदिश प्रस्तुत की जाती है, तो इसकी आकृति का सौंदर्य खिल उठता है गायक जब चीज का विस्तार करते हैं तब उनको बोल बढ़त, बोल बांट और तान में लय और बोल की काट - तराश में ताल की विशिष्ट प्रकृति को संभालना पड़ता है। आगरा घराने की गायकी में इन चीजों के प्रति पूरा आदर दिखाई देता है। अतः इस गायकी के चित्रण में इन चीजों का बड़ा महत्व समझा जाता है। उक्त दोनों घरानों की बंदिश प्रस्तुत करने के तरीके को लेकर घरानों के दिग्गज कलाकारों ने अपने विचार प्रस्तुत किए हैं।

आगरा घराने के कलाकार पंडित यशपॉल के अनुसार–''किराना गायकी स्वर प्रधान गायकी होने के कारण इसमें बंदिश के बोलो की और ज्यादा ध्यान नहीं दिया जाता। इस घराने में गायक बंदिश को पूरा नहीं गाते, केवल मुखड़ा ही गाते हैं। स्थाई का एक बोल लेकर उसी में गाना खत्म कर देते हैं। विलंबित ख्याल में बंदिशों को पूरा सुनने का अवसर बहुत कम मिलता है। अधिकांश गायक विलंबित ख्याल में केवल मुखड़े के बोल ही स्पष्ट कहते हैं। द्रुत ख्याल में छोटे ख्याल की बंदिशों अवश्य पूरी गाई जाती है। इसके विपरीत आगरा घराने में राग के सौंदर्य को बंदिश के माध्यम से सजाते बनाते हैं। बंदिश शुरू करने से पूर्व नोम् - तोम् का आलाप करते हैं तत्पश्चात बंदिश की पूरी स्थाई व अंतर गाकर बंदिश के भाव को ध्यान में रखकर राग में

प्रयुक्त बंदिश को विभिन्न आभूषणों जैसे स्वर का लगाव, बहलावा, बोलबांट, लयकारी इत्यादि से सजाते हैं। राग की बंदिशें राग स्वरूप तथा तान की दृष्टि से अत्यंत व्यवस्थित होती हैं।''

डॉ सुरेश गोपाल श्रीखंडे के अनुसार—''किराना घराने की गायकी में भक्ति रस की बंदिशे अधिक सुनने को मिलती हैं। यह हम स्थूल रूप से कह सकते हैं। बंदिश में भाव कौन-सा है, यह देख कर उसके साथ एक रूप होकर हम गाते हैं। इसके विपरीत आगरा घराने की गायकी में राजा, महाराजा, बादशाह इनकी स्तुति पर बंदिशें ज्यादा सुनने को मिलती है यह विधान हम स्थूल रूप से कह सकते हैं। आगरा घराने की बंदिश की रचनाओं में तान प्रधान बंदिशें थोड़ी बहुत ही सुनने को मिलती है लयकारी पर ज्यादा ध्यान दिया जाता है।''

पं. गणेश प्रसाद शर्मा के अनुसार—''किराना घराने की गायकी भावपूर्ण गायकी है इस घराने के कलाकार बंदिश के मुखड़े को तोड़-मरोड़ कर गाते हैं, ज्यादा बोलतान नहीं करते, बंदिश के शब्दों का ठीक-ठाक उच्चारण करते हैं, भाव का ध्यान रखते हैं और नोक-झोंक तथा बोल-बांट पर अधिक ध्यान देते हैं यही किराना घराने की बंदिश की सबसे बड़ी विशेषता है। इसके विपरीत आगरा घराने की बंदिश में लयकारी प्रधान है बंदिश शुरू करने से पहले नोम्- तोम् का आलाप करते हैं उसके पश्चात बंदिश गाना प्रारंभ करते हैं और बोल-बांट करते हैं। उस्ताद विलायत हुसैन खां के पुत्र यूनुस हुसैन खां साहब बंदिश में अधिक बोल—आलाप, नोम् - तोम् के आलाप, लयकारी और बोल- तान करते थे और इस घराने के सर्वश्रेष्ठ गायक उस्ताद फैयाज खां बंदिश में बहुत कम सरगम कहते थे यदि कहते भी तो बहुत सपाट सरगम कहते थे कहने का अभिप्राय है कि सरगम को कहना अच्छा नहीं मानते थे बोल - तान पर ज्यादा ध्यान देते थे।''

निष्कर्ष : उपरोक्त विवेचन से जो बातें उजागर होती है उनके आधार पर संक्षेप में कहा जा सकता है कि किराना घराने में बंदिश को आवश्यकता के अनुसार महत्व नहीं दिया जाता। इस घराने के अधिकतर गायक केवल बंदिश का मुखड़ा गाकर ही राग - विस्तार शुरू करते हैं लेकिन आगरा घराने में घरानेदार बंदिश का एक महत्वपूर्ण नियम है। ख्याल की बंदिश प्रवाहित व अविरल रहती है। इस घराने के कलाकार ध्रुपद अंग की बंदिशों का प्रयोग करते हैं अतः आगरा घराने में बंदिशों को पर्याप्त महत्व दिया जाता है। अंत में किराना और आगरा इन दोनों घरानों की बंदिश की विशेषताओं का संपूर्ण अवलोकन करने के बाद यही निष्कर्ष निकलता है कि दोनों घरानों की बंदिश को प्रस्तुत करने के ढंग में समानता कम है और अंतर अधिक है यह दोनों ही गायकियाँ अपनी-अपनी दृष्टि से परिपूर्ण है। किराना और आगरा इन दोनों घरानो में यही समानता पाई जाती है कि यह दोनों ही घराने ख्याल गायकी का प्रचार कर रहे हैं। दोनों घरानों की गायकी मधुर, रंजक हृदयस्पर्शी तथा लोकप्रिय है।

संदर्भ ग्रंथ सूची–

1. सक्सेना डॉ मधुबाला, ख्याल शैली का विकास, अरोड़ा वी. के., विशाल पब्लिकेशंस यूनिवर्सिटी केंपस, कुरुक्षेत्र 132119
2. चौबे सुशील कुमार, संगीत के घरानो की चर्चा, उत्तर प्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी, लखनऊ, 1977
3. मेहता आर.सी., आगरा घराने की गायकी, विशेषताएं तथा चीजें, महाराजा सियाजीराव विश्वविद्यालय बड़ौदा, 1969
4. नरेंद्र विशिष्ट, आलेख, किराना घराने के संगीतकार, संगीत पत्रिका, दिसंबर1984, संगीत कार्यालय हाथरस उत्तर प्रदेश-204101
5. श्रीखंडे डॉ सुरेश गोपाल, साक्षात्कार, दिनांक : 30. 05.2011, कुरुक्षेत्र।
6. शर्मा पंडित गणेश प्रसाद, साक्षात्कार, दिनांक : 10. 06.2011, अम्बाला।
7. पंडित यश पॉल, साक्षात्कार, दिनांक : 12.06.2011, चंडीगढ़

भारतीय संगीत आधुनिकता की ओर

डॉ. श्रुति होड़ा

शोध सार

प्राचीन काल से आधुनिक काल तक जैसे-जैसे मानव ने उन्नति की अथवा सामाजिक परिवर्तन हुए इसी तरह संगीत कला में भी समय अनुकूल परिवर्तन होते रहे। संगीत विषय का किसी भी प्राचीन संस्कृत ग्रन्थ में संगीत की कक्षाओं या वर्गो का उल्लेख नहीं है। जहां लड़के-लड़कियों को शिक्षा दी जाती हो और वह संगीत अभ्यास करते हों। अधिकांश शिक्षा यदि कोई गुरू दे तो उसे गुरू शिष्य परम्परा कहते थे। स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व लगभग पांच सौ छोटी-बडी रियासतें थी तथा उनमें राजाओं व नवाबों के पास कुशल संगीतज्ञ दरबारों में मुलाजिम थे। जिस कारण संगीत शिक्षण जन साधारण की पहुंच से बाहर था। उस समय अग्रेंजों ने भी भारत देश की उन्नति तथा संस्कृति की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया परन्तु आधुनिक काल में आज 21वीं शताब्दी में संगीत शिक्षा इस प्रणाली से निकल कर आधुनिक रूप में स्कूल, कालेज़, विश्वविद्यालय में आ गई है जहां संगीत विद्यार्थी सामूहिक रूप से तथा स्वतन्त्रता से संगीत सीख सकते है। निश्चित पाठ्यक्रम तथा निश्चित अवधि में गायन वादन तथा नृत्य की शिक्षा प्राप्त की जाती है। संगीत शिक्षण पाने हेतु छात्र व छात्राओं को Theory of Practical दोनों के पाठ्यक्रम में पास अंक प्राप्त करना आवश्यक होता है। वैश्वीकरण ने संगीत को शिक्षा के प्रचार एवं प्रसार को परिवर्तित कर दिया है। आज संगीत समय तथा स्थान की सीमाएं लाँघ कर अनन्त फैले क्षितिज को छूने को बेकरार है। You-Tube, Whatsapps, Internet तथा आधुनिक मंचों ने नए माध्यम तथा नई विद्याएँ ईजाद की हैं। सूचना क्रांति (I.T) ने संगीत के क्षेत्र में आमूल-चूल परिवर्तन कर डाले हैं। अतः हम कह सकते है कि पिछले कुछ वर्षो में विभिन्न संस्थाओं, सजग व्यक्तियों, पत्र- पत्रिकाओं, जनसंचार तथा इंटरनेट द्वार शिक्षण परम्परा को सचेत करने के प्रयत्न हो रहे हैं और यह अत्यन्त स्वागत योग्य है।

शब्द कुंजी–संगीत, शिक्षण, प्रणाली, घराना, दरबार

भूमिका :-आज हमारे समाज में संगीत कला का अपना एक संरक्षित स्थान है प्राचीन काल से आधुनिक काल तक जैसे-जैसे मानव ने उन्नति की अथवा सामाजिक परिवर्तन हुए इसी तरह संगीत कला में भी समय अनुकूल परिवर्तन होते रहे। फलस्वरूप राष्ट्र के सांस्कृति जीवन में संगीत का महत्वपूर्ण स्थान बन गया है। अतः संगीत और नृत्यकलाओं की व्यवस्थिति शिक्षा की मांग अत्याधिक बढ़ गई है। धीरे-धीरे संगीत कला का प्रचार तथा शिक्षण भिन्न-भिन्न माध्यमों द्वारा बढ़ता गया। संगीत शिक्षा प्राचीन काल से नीचे लिखे पहले माध्यम द्वारा बढ़ता गया। संगीत शिक्षा प्राचीन काल से नीचे लिखे पहले माध्यम द्वारा परन्तु आधुनिक काल में दूसरे तथा तीसरे माध्यम से हो रही है।

1. भिन्न-भिन्न घराने व गुरू शिष्य परम्परा
2. विद्यालय, महाविद्यालयं, विश्वविद्यालय
3. रिकार्डस, टेपरिकोर्डस, रेडियो, टी.वी. सीडीज, कमपेक्ट डिस्क, प्रेस

आधुनिक काल में संगीत शिक्षण को उपरोक्त माध्यमों द्वारा प्राप्त किया जाता है। संगीत के प्राचीन

Associate Professor, Music Instrumental Department PGGCG, Sector-11, Chandigarh.

साहित्य में इस महत्वपूर्ण विषय संगीत शिक्षा प्रणाली का कोई उल्लेख नही मिलता। वास्तव में संगीत विषय का किसी भी प्राचीन संस्कृत ग्रन्थ में संगीत की कक्षाओं या वर्गो का उल्लेख नही है। जहां लड़के-लड़कियों को शिक्षा दी जाती हो और वह संगीत अभ्यास करते हों। अधिकांश शिक्षा यदि कोई गुरू दे तो उसे गुरू शिष्य परम्परा कहते थे। आधुनिक संगीत शास्त्र को दो पक्षों में बांटा गया है। क्रियात्मक पक्ष तथा सिद्धांतिक पक्ष।

स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व लगभग पांच सौ छोटी-बडी रियासतें थी तथा उनमें राजाओं व नवाबों के पास कुशल संगीतज्ञ दरबारों में मुलाजिम थे। जिस कारण संगीत शिक्षण जन साधारण की पहुंच से बाहर था। उस समय अग्रेंजों ने भी भारत देश की उन्नति तथा संस्कृति की ओर विशेष ध्यान नही दिया। गायन वादन तथा नृत्य की कुछ कमियों को समाज में गिरे हुए वर्गो ने अपना लिया जिस कारण संगीत का शिक्षण प्राप्त करना हेय की दृष्टि से देखा जाने लगा। ऐसे समय में दो महान संगीत विद्वानों पं. विष्णु पलुस्कर तथा पं. भातखण्डे् जी ने संगीत के क्षेत्र में बहुत सुधार किए। इन दोनों संगीतकारों ने भारत के विभिन्न स्थानों पर जाकर राजाओं से राजगायकों तथा वादकों से प्रचलित रागों का चलन व उनके स्थाई अन्तरे सीखे। दोनों ने अपनी-अपनी स्वरलिपियां बनाकर रागों को लिपिबद्व किया और यही ग्रन्थ आज आधुनिक काल में भी संगीत विद्यार्थियों का मार्गदर्शन करते है। उन्होंने कई संगीत विद्यालय खोले और इसमें विशेष प्रकार का संगीत शिक्षण अपने शिष्यों को दिया। पुराने समय में घरानों तथा आधुनिक शिक्षा केन्द्रों में विद्यार्थियों को दी जाने वाली शिक्षा में बहुत अंतर आ चुका था। घरानों में संगीत शिक्षण निम्न प्रकार से होता आ रहा है।

घरानों में संगीत शिक्षण- जिस प्रकार की गायन वादन शैली में विद्यार्थी की रुचि हो वह अपने मनपसंद संगीत शास्त्री को सामाजिक रीति रिवाजों के अनुकूल गंडा बांध कर पूर्ण रीति रिवाजों के अनुकूल शिक्षा प्राप्त करता था। गुरू के मन में शिष्य के प्रति स्नेह व विश्वास की भावना थी तथा शिष्य के मन में गुरू के प्रति अपार श्रद्वा तथा सम्मान होता था।

घराना प्रथा हिन्दुस्तानी संगीत की एक निजी विशेषता है जो विश्व के अन्य किसी संगीत में नहीं है। पाश्चात्य देशों में कला तथा साहित्य के विभिन्न क्षेत्रों में जो शाखाएं पाई जाती है उन्हें स्कूल कहा जाता है। भारत में उत्तरी संगीत में घराना, दक्षिणी में सम्प्रदाय या घराने का महान महत्व चला आ रहा है समय परिवर्तन के अनुसार इन्हें कभी मत तथा कभी वाद के नाम से जाना जाता है। घराना 20वीं शताब्दी के पहले से चला आ रहा है। घरानों में शिक्षा इस प्रकार से दी जाती है।

- घरानों में शिष्य को तभी शिक्षा दी जाती थी जब उसे पूर्ण स्वर ज्ञान हों कठिन परिश्रम व अभ्यास अचल स्वर साधना सा व प का लम्बे-लम्बे सांस द्वारा लम्बे समय तक रियाज करवाया जाता था। स्वरों के विभिन्न अलंकार व पलटे स्वर ज्ञान के लिए सिखाये जाते थे।
- संगीत की सभी शैलियों जैसे गायन में ध्रुपद, धमार, ख्याल, ठुमरी, दादरा, टप्पा, तराना आदि सिखाए जाते थे। भाव संगीत में भजन, शब्द, लोक गीत आदि सिखाऐ जाते थे।
- घरानों में संगीत का अभ्यास आरम्भ से ही तानपूरे के साथ करवाया जाता था तथा देर तक बैठने का अभ्यास भी हो जाता था। यह सभी गुण गुरूओं द्वारा शिष्यों को प्राप्त होते थे।
- संगीत शिक्षक हारमोनियम के साथ संगीत शिक्षा का गायन उचित नहीं समझते थे। यदि तानपूरा न हो तो हरमोनियम के स्वर छेड़ कर भी स्वर साधना करनी पडती थी।
- स्वर साधना होने के बाद रागों का अध्ययन भली भाँति कराया जाता था। राग में लगने वाले स्वर, मुख्य अंग, आरोह अवरोह व राग का चलन सिखाया जाता था। उपरोक्त सभी कार्य लय व ताल के साथ सिखाये जाते थे। छोटे-बड़े आलाप, स्वरों की बढ़त, बोल आलाप, बोल-बांट और वादन में तोड़े और लयकारी करते समय आड़, कुआड़ और तिहाईयां सिखाई जाती थी। तालों का शिक्षण देते समय मात्रा, खाली, ताली, हाथों से तवले का बोल निकालना आदि सिखाया जाता था।

- कई बार एक राग तथा बंदिश 6-6 महीने या साल भर सिखाया जाता था बंदिश में कई प्रकार की ताने आलाप, जोड़ आलाप आदि सिखाऐ जाते थे।
- अधिकतर संगीतज्ञ एकान्त स्थान पर बैठ कर शिष्यों को शिक्षा देते थे जिन भवनों में संगीत शिक्षण होता था, वहां देवी देवताओं की मूर्तियां व विद्वानों के चित्र लगे होते थे। जिनसे शिक्षकों तथा शिष्यों को प्रेरणा मिलती थी। पुरातन गुरू भवनों में महत्वपूर्ण संगीत ग्रंथ रखे जाते थे जिन से संगीत शास्त्रों का उचित ज्ञान दिया जाता था।
- प्रति दिन 6-6 घण्टे अभ्यास की प्रेरणा संगीत घरानों से मिलती थी। इस प्रकार लम्बे अभ्यास द्वारा मन पर काबू पाना, आत्मविश्वास, अपने आप में प्रसन्न रहना, दूसरों को प्रसन्न रखना आदि का ज्ञान गुरू की अपार कृपा से ही प्राप्त होता था।
- कुछ वर्षो बाद जब शिष्य अच्छा गाने-बजाने लगे तो वह गुरू के सहायक के रूप में रंग मंच प्रदर्शन आदि में जाने व बैठने लगते थे इससे उनके मन का पूर्ण भय दूर हो जाता था तथा आत्मविश्वास की भावना पैदा होती थी।
- नृत्य कला व भिन्न-भिन्न वाद्यों के भी घराने हुआ करते थे। नृत्य में कत्थक, भरतनाट्यम, मणिपुरी, कुचिपुड़ी आदि के भी घराने होते थे व गुरूओं के द्वारा नियमित ढंग से शिक्षण होता था। इस कला में भी नाम कमाने के लिए बहुत परिश्रम करना पड़ता था। घरानों में गुरू-शिष्य परम्परा तथा वंश परम्परा से शिक्षण की प्रक्रिया प्रचलित थी।

2. व्यवसायिक संस्थाओं में संगीत शिक्षण–20वीं शताब्दी में संगीत शिक्षा इस प्रणाली से निकल कर आधुनिक रूप में स्कूल, कालेज़, विश्वविद्यालय में आ गई है जहां संगीत विद्यार्थी सामूहिक रूप से तथा स्वतन्त्रता से संगीत सीख सकते है। निश्चित पाठ्यक्रम तथा निश्चित अवधि में गायन वादन तथा नृत्य की शिक्षा प्राप्त की जाती है। अब एक गुरू, एक शैली में न रहकर अलग-अलग गुरूओं से अलग-अलग ढंग से संगीत शिक्षा ग्रहण की जा सकती है। दूसरे कई विषयों की भांति गायन वादन और नृत्य शिक्षण संस्थाओं में भी कई प्रकार के अन्तर आऐ है।

- बड़े-बड़े नगरों में संगीत शिक्षण छोटे-छोटे बालकों को पाठशालाओं में करवाया जाता है। पंजाब में सरकार द्वारा छटी कक्षा में संगीत को Hobby के तौर पर सिखाने की सुविधा प्रदान की गई है।
- संगीत का पाठ्यक्रम विभिन्न कक्षाओं में लगा होता है। आरम्भ से ही शुद्व कोमल, तीव्र स्वरों का अभ्यास बच्चों को करवाया जाता है। फिर अलंकार व पलटे करवाए जाते है। कुछ स्वर ज्ञान होने के बाद भजन, शब्द व गीत अथवा राग सिखाये जाते है। इसी प्रकार सितार वादन तथा तबला वादन का शिक्षण भी दिया जाता है।
- प्रयोगात्मक संगीत व अध्यात्मिक संगीत के हर कक्षा में भिन्न-भिन्न अंग निश्चित किए गए है। संगीत शिक्षण पाने हेतु छात्र व छात्राओं को Theory of Practical दोनों के पाठ्यक्रम में पास अंक प्राप्त करना आवश्यक होता है।
- विभिन्न कक्षाओं के लिए संगीत के अध्ययन व शिक्षण का समय भी भिन्न-भिन्न होता है। समय की सूचना घंटियों द्वारा दी जाती है।
- पाठ्शालाओं में समय-समय पर संगीत के कार्यक्रम रखे जाते है व प्रतियोगिताओं का आयोजन होता है व जीतने वाले को पुरस्कार दिये जाते है।
- संगीत की गोष्टियों में विभिन्न विषयों पर पेपर पढ़े जाते है। विचारों का आदान-प्रदान होता है। इस प्रकार विद्यार्थियों का ज्ञान बढ़ता है व एक दूसरे की कला में सुनने व जानने का अवसर मिलता है।
- शिक्षकों द्वारा केन्द्रों के पुस्तकालयों में संगीत के विभिन्न ग्रन्थ उपलब्ध होते है जो ज्ञान प्राप्ति में सहायक सिद्ध होते है।

- विद्यालयों, महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों में शिक्षकों द्वारा संगीत के छात्र व छात्राओं को ठीक से बैठने, वाद्यों को पकड़ने गायन वादन के शिक्षण के साथ अनुशासनबद्व आपसी सहयोग तथा संगीत के अभ्यास की विधि का उचित ज्ञान दिया जाता है।
- आधुनिक काल में गायन वादन की विभन्न आईटमस को टी.वी. पर दिखाया जाता है। इससे विद्यार्थियों की रूचि संगीत में बढ़ती है।

Electronic Media का सहयोग :-जन संचार (Electronic Media) अपने आप में बहुत बड़े उद्योग के रूप में विकसित हुआ है। फिल्म उद्योग के रूप में विकसित हुआ है। फिल्म उद्योग तथा दूरदर्शन दोनों आपस में जुड़े हैं, संगीत का इन क्षेत्रों के विकास में बहुत बड़ा योगदान है। आज कई जानी मानी फिल्म उद्योग तथा कला क्षेत्रों की हस्तियाँ अपने ज्ञान व अनुभव को सांझा करने तथा अगली पीढ़ियों को उसमें प्रशिक्षित करने के लिए आगे आई हैं। नए-नए शिक्षण संस्थान खोले जा रहे है तथा उनमें विधिवत संगीत को शिक्षा के आयाम बढ़े हैं। प्रतिभा की पहचान तथा उसके विद्रोहन में ये संस्थाएं सशक्त भूमिका निभा रही है।

3. रिकार्डर्स, टेपरिकार्डर्स, रेडियों, टी.वी सीडीज, कमपेक्ट डिस्क तथा प्रेस के द्वारा संगीत का शिक्षण- पिछले कई वर्षो से प्रसारण केन्द्रों द्वारा संगीत के कार्यक्रमों को लगातार सुनवाया जाता है। रेडियों के भवनों में भी संगीत शिक्षक रागों का परिचय आरोह अवरोह, पकड़, स्थाई, अन्तरा, आलाप ताने, तोडे, आदि का प्रशिक्षण दिया जाता है। संगीत के महान गुरूओं द्वारा रेडियों में कार्यक्रम दिये जाते है। इनसे कई गायन वादन शैलियों का उचित ज्ञान प्राप्त होता है। संगीत शिक्षण के लिए आधुनिक युग में रेडियों की रिकॉर्डिग का भी प्रयोग करते है। टी.वी, वीडियों कैसेट, वीडियों सी.डी. द्वारा संगीत का शिक्षण प्रदान किया जाता है। टी.वी. पर संगीत के कार्यक्रमों में अच्छे-अच्छे कलाकारों के वीडियों कैसेट, वीडियों सी. डी. सुनवाये व दिखाये जाते है। ऐसे कार्यक्रम संगीत शिक्षण के लिए आधुनिक युग में लाभदायक है। इसके अतिरिक्त प्रेस भी शिक्षा का महत्वपूर्ण साधन है। प्रेसों में पुस्तकें, पत्र-पत्रिकाएं तथा समाचार पत्र आदि छपते है जिन्हें पढ़कर विद्यार्थी ज्ञान अर्जित करते है।

आधुनिक संगीत शिक्षण के गुण व दोष

गुण- आधुनिक काल में संगीत का शिक्षण विभिन्न रूप धारण कर चुका है। पुरातन घरानों में तो गुरूओं की शिक्षा अनुसार संगीत सिखाया जाता था उनके द्वारा संगीत का समय निश्चित तो अवश्य होता था। परन्तु जब तक विद्यार्थी को पहला सबक अच्छी तरह याद नहीं होता था तब तक आगे नहीं पढाया जाता था परन्तु आधुनिक युग में समय की निश्चित सीमा है। पाठ्यक्रम के अनुसार निश्चित समय में अधिक पाठ पढाये जाते हैं। इसके साथ-साथ शास्त्रीय दृष्टि से भी पूर्ण ज्ञान दिया जाता है। विश्वविद्यालयों द्वारा अच्छे व चुने हुए छात्रों को ही संगीत शिक्षण कुछ मासिक शुल्क देकर दिया जाता है उच्च शिक्षा की प्राप्ति के बाद प्रमाण पत्र दिये जाते है जिसके आधार पर विद्यार्थियों को संगीत शिक्षण की नौकरी मिलती है। संगीत के क्षेत्र में अच्छा काम करने पर संगीत नाटक अकादमी दिल्ली द्वारा और कई मान्यता प्राप्त केन्द्रों द्वारा संगीतकारों को सम्मानित किया जाता है। पाठशालाओं में संगीत शिक्षण ग्रहण करते करते सूझ बूझ होने पर मनुष्य आगे की उच्च शिक्षा शैली का चुनाव अपनी इच्छा से कर सकता है। आधुनिक काल में संगीत मानव जाति के मनोरंजन का साधन बन गया है।

दोष- आधुनिक युग में न तो वास्तविक संगीत सीखने वाले छात्र है न ही साधना करने वाले गुरू। आजकल विद्यार्थी का दृष्टिकोण केवल परीक्षाएं पास करने के माध्यम तक संकुचित है। आधुनिक शिक्षा प्रणाली और पाठ्यक्रम के अन्तर्गत स्वर ज्ञान का अच्छा आधार छात्रों के लिए कठिन हो गया है। आम तौर से छात्रों की प्रवृति परीक्षा के एक दो माह पूर्व रट लेने की है। अन्य विषयों के लिए यह प्रवृति ठीक हो सकती है परन्तु संगीत जैसे व्यवहारिक विषयों के लिए ऐन समय पर रटंत प्रणाली प्रभाव हीन ही नहीं बलिक हानिकारक है। यही कारण है कि सैंकडों में से एक दो विद्यार्थी ही अपनी संगीत शिक्षा को प्राप्त करके उचित रूप से संगीतज्ञ बन पाते हैं विद्यार्थी के साथ-साथ संगीत शिक्षक को अपना दृष्टिकोण बदलना पडेगा। एक ही वर्ष में बहुत से रागों का ज्ञान पाठ्यक्रम के अनुसार करवाना पड़ता है जो न तो विद्यार्थी को याद हो पाते है और

न ही वे अच्छी तरह से गा-बजा पाते है। ऐसे में संगीत स्वर और माधुर्य का अभाव रह जाना स्वभाविक है। यही कारण है आजकल विद्यार्थियों को उच्च कोटि का गायक व वादक बनना कठिन होता है। यही कारण है संगीत का क्रियात्मक पक्ष दिन-प्रतिदिन गिरता जा रहा है।

विद्यार्थियों में वॉयस कलचर पर भी अभी तक पूरा ध्यान नहीं दिया गया है। आवाज की तारता और गुण धर्म के अनुसार छात्रों का उचित वर्गीकरण तथा आवाज तैयार करने की व्यवस्था नहीं है। विद्यार्थी की आवाज गुण धर्म व उसकी रूचि प्रवृति के अनुकूल हो या न हो निर्धरित पाठ्यक्रम पूरा कर परीक्षा पास करने की उत्सुकता के कारण छात्र का ध्यान व रूचि संगीत से हट जाती हैं वह ताल एवं राग आलाप को रट लेना परीक्षा के लिए आवश्क समझता है प्रवेश लेने वाले दो सौ छात्रों में से केवल दस छात्र ही संगीतज्ञ बनने का लक्ष्य गंभीरता से पूरा कर पाते है अधिकांश छात्र ज्ञान प्राप्ति के बजाय कामचलाउ प्रवृति का प्रयोग करते है जिससे वह संगीत में कुशल नहीं हो पाते।

सुझाव व संभावनाएँ- आज आधुनिक युग में संगीत शिक्षा सुलभ हो गई है परन्तु संगीत के आंतरिक तत्वों को उभरने का अवसर नहीं मिल पा रहा है। इस प्रणाली में कई तथ्य उभर कर सामने आते है जैसे प्रवेश संबंधी नियम व उत्पन्न समस्याएं क्योंकि विद्यार्थी कम होने के कारण शिक्षक की नियुक्ति के ना बने रहने का भय रहता है। संगीत शिक्षण पद्वति का आधार पाठ्यक्रम का औचित्य विश्वविद्यालयों में पाठ्यक्रम की एकरूपता संगीत शास्त्रापक्ष व क्रियापक्ष की सामंजस्यता तथा प्रयोग प्रणाली में उनके स्पष्ट सम्बन्ध की व्याख्या के समावेश पर ध्यान देना चाहिए। ध्रुपद, धमार, दादरा सादरा जैसी गेय विद्याओं का प्रशिक्षण देना चाहिए। रागो को निर्धारित करते समय सरल से कठिन, शुद्व से मिश्रित, प्रचलित से अप्रचलित की ओर ध्यान देते हुए चयन करना चाहिए। उत्कृष्ट रचनाओं के प्रयोग के साथ-साथ रचनाकारों व अच्छे काव्य को भी बढावा देना चाहिए परम्परागत शिक्षण स्वरूप को अपनाते हुए आधुनिक परिवेश से शिक्षा का नवीनीकरण करना चाहिए। विद्यार्थियों का चयन करके उन्हें उस विषय में प्रवेश देना चाहिए पं. रविशंकर के शब्दों में-

'We should also be careful in selecting the right student for music education. They must be sensitive and intelligent. An aptitude test is hence essential".

वर्तमान संगीत का शिक्षण दो भागो में कर देना चाहिए। एक वर्ग तो पाठ्यक्रम पर अभ्यास करके परीक्षाएं दे और दूसरा वर्ग संगीत की वास्तविक शिक्षा ग्रहण करके उस पर साधना करें तथा सफल संगीतकार बनकर संगीत के प्राचीन वर्ग को उतना ही प्रभावशाली व सुन्दर बना सके। गुरू और शिष्य दोनों को बहुत परिश्रम व अभ्यास करना चाहिए। उन्हे कमजोर शिष्यों की ओर अधिक ध्यान देना चाहिए। तथा पाठ्यक्रम कम कर देना चाहिए। ताकि वह अच्छी शिक्षा ग्रहण करे और गुरू सभी शिष्यों को समान दृष्टि से देखें, ऐसा करने से मेरे विचार से ऐसे छात्र आगे आ सकेंगे और योग्य भारतीय संगीतकार बन सकेंगे। आशा है हम सही मार्ग पर अग्रसर हो सकेंगे तथा संगीत को और चार चांद लगायेंगे तथा उसकी मौलिकता (Originality) भी कायम रख सकेंगे।

सन्दर्भ ग्रंथ-

- गर्ग, लक्ष्मी नारायण-निबन्ध संगीत
- रंधावा मोहिन्दर सिंह- कांगड़े दे लोकगीत
- हिन्दी साहित्य कोष- धीरेन्द्र वर्मा
- मदान पन्ना लाल-पँजाब विच संगीत कला दा निकास अते विकास
- डॉ. कुलदीप-लोकगीतों का विकासात्मक अध्ययन
- संगीत विशारद
- डॉ. थिन्द करनैल सिह- लोकयान अते मध्यकालीन पंजाबी साहित्य
- संगीत मासिक पत्रिका, संगीत कार्यालय, हाथरस, उ. प्र. जनवरी-फरवरी 1969, 1976, 1978, 2004
- संगीत कला विहार, संगीत कार्यालय, हाथरस, 2006,
- http://shodhganga.inflibnet.ac.in
- http://www.india.gov.in/topics/art-culture/music
- http://www.academis.edu/Documents/in/indian_muissc

भारत में सिनेमा का सफरनामा

डॉ. गौरव शुक्ल

मुख्य शब्द-

फिल्म, फिल्मकार, फिल्मसंगीत

वर्ष 1895 फ्रांस की राजधानी पेरिस में सिनेमा का जन्म हुआ। इसके ठीक लगभग एक वर्ष बाद 7 जुलाई, 1896 को लुमियर ब्रदर्स ने मुम्बई के वाट्सन होटल में फिल्म प्रदर्शित किया, जो भारत में दिखाई जाने वाली पहली फिल्म थी। 1897 में इसी फिल्म को कोलकत्ता में प्रदर्शित किया गया। सन् 1898 में कोलकत्ता के हीरालाल से मे प्रथम चलचित्र कैमरा खरीदा जिसका उपयोग राजा-महाराजाओं और सामंतो के महलो का चित्रांकन कर जनता को दिखाया जाता था। घुंडिराज गोविन्द फाल्के ने फिल्म निर्माण से संबन्धित उपकरण इंग्लैण्ड से लाए और इन्होंने अपनी पहली हिन्दी फीचर फिल्म 1913 मे 'राजा हरिश्चन्द्र' के नाम से बनाई। यह फिल्म तीन हजार सात सौ फिट लम्बी थी और इसे 3 मई 1913 को कोरोनेशन थिएटर में प्रदर्शित किया गया इसे 1914 में लन्दन में प्रदर्शित किया गया था और विदेश में प्रदर्शित होने वाली यह पहली भारती फिल्म थी। फाल्के की दूसरी फिल्म 'भस्मासुरी मोहनी' में दुर्गा और मोहिनी नाम की दो स्त्री कलाकार थीं, जिन्हें भारतीय फिल्मों की पहली स्त्री कलाकार, होने का श्रेय है।

वर्ष 1917 में जे.एफ. मदान ने सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र नाम से पहली बांग्ला फीचर फिल्म बनायी। इस दौर में मूक फिल्में बनायी गई क्योंकि इस दौरान चित्रों को चलते फिरते रूप में पर्दे पर रखना तो संभव था किन्तु उनके साथ स्वर दे पाना मुमकिन नहीं हो पाया था। अःत संवाद पर्दे के पीछे बैठे व्यक्ति द्वारा बोला जाता था। पर्दे के पीछे बैठकर संगीत देने वाले व्यक्ति थे द्वारका दास संपत, जिन्होंने हारमोनियम और तबला वांदको कें साथ बैठकर हिन्दी फिल्मों में पार्श्व संगीत की शुरूआत की। इस दौरान फिल्मों के संबध में एक महत्वपूर्ण बात यह है कि इसमें कार्य करने वाली स्त्री कलाकारों का सर्वदा अभाव था और प्रारंभिक कोठेवालियां थी। हालांकि 1932 तक अनेक फिल्मों में पुरूषों ने ही स्त्रियों की भूमिका अदा की।

बीसवीं शताब्दी के चौथे दशक में बोलती फिल्मों का शुभारंभ हुआ और 1931 में पहली बोलती फिल्म 'आलमआरा' बनी जिसे एक पारसी व्यक्ति अर्देशीर ईरानी ने बनाई। यह फिल्म 14 मार्च 1931 की बम्बई के मैजेस्टिक सिनेमाहाल में प्रदर्शित किया। 1933 में देश की पहली अंग्रेजी सवाक फिल्म 'कर्मा' की शूटिंग इग्लैण्ड में हुई जिसके निर्माता अभिनेता हिमांशु राय और देविका रानी थी। बोलती फिल्मों में प्ले बैक गाना देने की शुरुआत की बंग्ला भाषी नितिन बोस नें और प्रथम पार्श्व गायक बने के सी. डे.। 1951 में सोहराब मोदी ने पहली रंगीन फिल्म, झांसी की रानी, बनायी इसके बाद भारत में रंगीन फिल्में बनने लगीं हलाँकि इसके बाद भी श्वेत-श्याम फिल्में बनती रही।

आरंभ में सवाक फिल्मों के विकास में जिन लोगो ने महत्वपूर्ण योगदान किया उनमे हिमांशु राय चंदूलाल शाह वाडिया बदर्स व्ही शांताराम, महबूब खान, विजय भट्ट, केदार शर्मा, विमल राय, सोहराब मोदी आदि के नाम प्रमुख है। वर्ष 1940 में भारत

सहायक आचार्य सितार, संगीत विभाग, जयनारायण व्यास विवविद्यालय मों न. 07839260465

सरकार ने फिल्म एडवाइजरी बोर्ड की स्थापना की जो युद्ध पर आधारित फिल्में बनाने को प्रोत्साहित करता था। वर्ष 1952 में महबूब खान ने 'आन' नाम से भारत की पहली **टेक्नीकलर फिल्म** बनाई। सन् 1959 में भारत की पहली श्वेत-श्याम सिनेमा स्कोर फिल्म बनाई। 1944 ई. में दादा साहेब फाल्के का निधन हो गया। 1949 ई. में ख्वाजा अहमद अब्बास की **धरती के लाल** फिल्म को मास्को में प्रदर्शित किया गया, जहां इसने खूब धूम मचाई।

वर्ष 1952 में भारत में पहला अन्तरराष्ट्रीय फिल्म समारोह आयोजित किया गया, जिसमे इटली के प्रसिद्ध फिल्मकार **विटोरिया दिसिका** की फिल्म **द बाइसिकिल थीव्स** तथा जापान के अकीरा कुरोसावा की फिल्म **रशोमन** ने भारतीय दर्शको को बहुत आकर्षित किया। 1966 मे फिल्मो के लिए राष्ट्रीय पुरस्कारो की शुरुआत हुई। मराठी फिल्म श्यामची आई को राष्ट्रीय का स्वर्ण पदक प्राप्त हुआ। 1956 में राजकपूर की जागते रहो फिल्म कार्लोबी फेस्टीबल में पुरस्कृत हुई। सन 1958 में नरगिस मे मदर इंडिया फिल्म में अभिनय के लिए कार्लोयी फिल्म समारोह मे सर्वश्रेष्ठ अभिनेत्री का अवार्ड मिला।1958 में सत्यजीत राय **आपूर संसार** को सर्वश्रेष्ठ फिल्म के लिए राष्ट्रपति द्वारा पदक मिला। छठे दशक की शुरूआत में भारतीय सिनेमा के क्षेत्र में सत्यजीत राय का प्रवेश हुआ। 1955 में उनके द्वारा निर्मित फिल्म पाथेर पंचाली वह मोड़ है जब विश्व से भारत की ओर आने वाली फिल्म प्रवाह मोड़कर भारत से बाहर की ओर जाना शुरू हुआ। इस फिल्म ने नव-सिनेमा का यथार्थवाद प्रस्तुत किया था इसी **कड़ी** में 1969 में मृणाल सेन ने **भुवन शोम** नामक फिल्म बनायी। उल्लेखनीय है कि सत्यजीत राय को ऑस्कर पुस्कार मिला जो किसी भारतीय कलाकार-निर्माता को ऑस्कर मिलने की पहली घटना थी। भारत सरकार ने इन्हें भारत रत्न प्रदान किया है।

सातवें दशक में मृणाल सेन के अलावा कई अन्य फिल्मकार सिनेमा के नये तत्वों का उद्घाटन करने में लगे थे जिनमें-ऋत्विक घटक, बासु भट्टाचार्य, बासु चटर्जी, श्याम बेनेगल शिवेन्द्र सिन्हा, एम. एस. सत्थ्यू, अवतार कौल, कुमार शाहनी, केतन मेहता राजिन्द्र सिहं बेदी आदि प्रमुख थे। 1931 से वर्तमान समय तक सिनेमा ने लम्बा सफर तय किया और इसी दशक के अन्त मे (1970 में) फाल्के जन्म शती समारोह मनाया गया और भारत सरकार ने सिनेमा जगत का सर्वोच्च सम्मान दादा साहब फाल्के पुरस्कार की शुरूआत की। सन् 1969 का यह पुरस्कार जो 1970 में प्रदान किया गया पहली बार देविका रानी (अभिनेत्री) को मिला।

भारतीय सिनेमा ने अपने सफर में लंबा सफर तय किया है। भारतीय सिनेमा आरंभ में केवल श्याम-स्वेत ही बनते थे। लेकिन तकनीकी प्रगति के बाद रंगीन चलचित्र भी बनने लगें। आज सिंनेमा के तकनीक काफी विकसित हो चुकी है। इसमें कलाकारों से अभिनय के अलावा कम्प्यूटर का प्रयोग, एनीमेशन, डिजिटल तकनीक आदि के काल्पनिक दृश्य को पर्दे पर उतारना संभव हो गया है। विश्व स्तर पर हॉलीवुड् और भारत में वॉलीबुड (मुंबई) फिल्म निर्माण का सबसे बड़ा केन्द्र बन गया है। भारत में दो तरह की फिल्में बनायी जाती है-1. मुख्य धारा की फिल्में और 2. समानांतर (कलात्मक) फिल्में। मुख्य धारा की फिल्मों का मुख्य उद्देश्य जनता का मनोरंजन करना होता है, इसे व्यावसायिक फिल्में भी कहते है। इन व्यावसायिक फिल्मों में मार-धाड़, कॉमेडी, खलनायकी, चकाचौंध, भव्यता, तिलिस्म आदि की भरमार होती हैं आजकल इन फिल्मों में कथा तथा उद्देश्य लगभग गायब हो गए हैं और उनका स्थान नायकों की श्रेष्ठता और अश्लीलता ने ले ली है। इसी के साथ बनने वाली कलात्मक फिल्मों में समाज, पर्यावरण या किसी अन्य विषय की गूत्थी या समस्या पर विचार किया जाता है।

कला और व्यावसायिकता की बहस काफी पुरानी है और अनेक आलोचक या फिल्म से संबंधित लोग इस विभाजन को नहीं मानते। वे केवल अच्छी और खराब फिल्म के बीच फर्क करते हैं। इस संबंध में ईरान के एक फिल्मकार का कहना है कि मैं जब स्वयं फिल्म बनाता हूँ तो इसकी चिन्ता नहीं करता कि यह एक कलात्मक फिल्म है, किन्तु जब लोग उसे कला फिल्म कहते हैं तो दर्शन प्रायः उस फिल्म से दूर हो जाते हैं। भारतीय फिल्म धारा को उनकी विभिन्न प्रवृत्तियों के आधार पर प्रयोगवादी, कलात्मक, नई फिल्में आदि अनेक विश्लेषणों से मायने-समझने

की कोशिश हुई है, लेकिन यह विश्लेषण इस धारा को व्याख्यायित करने में काफी कुछ मदद तो करते हैं, लेकिन समग्रता के साथ प्रस्तुत नहीं कर पाते। कला, प्रयोग, नयापन किसी भी फिल्म में अन्तर्निहित तत्व हैं, जो फिल्म को अच्छा या बुरा बनाते हैं।

भारत में कलात्मक सिनेमा की शुरूआत 1969 से मानी जाती है, इसी समय मृणल से की हिन्दी फिल्म भुवन सोम आयी थी, जिसने फिल्मों की प्रवृत्तियों के बीच विभाजन रेखा खींचने का काम किया। ठीक इसी समय से फिल्म वित्त निगम, जिसे अब राष्ट्रीय फिल्म विकास निगम कहते हैं, ने फिल्म निर्माताओं को ऋण देना शुरू किया था। श्याम बेनेगल, कुमार शहानी, मणि कौल, सईद मिर्जा आदि फिल्मकार इसी क्रम में अपनी फिल्में बना सकें और इसी समय भुवन सोम, एक अधूरी कहानी, माया दर्पण, उसकी रोटी, दुविधा अरविन्द देसाई की अजीब दास्तान, अंकुर आदि फिल्मों ने एक नया माहौल बनाया। कलात्मक सिनेमा का लय बहुत हद तक शास्त्रीय संगीत जैसी है, लेकिन जहां शास्त्रीय संगीत के संरक्षकों की संख्या अच्छी-खासी है, वहीं शास्त्रीय सिनेमा बनाने का साहस बहुत कम फिल्मकार कर पाते हैं क्योंकि इस प्रकार की फिल्में बॉक्स ऑफिस से अपनी लागत भी नहीं वसूल कर पाती। यही कारण है कि आज अधिकांश कला फिल्मकार विशुद्ध व्यावसायिक फिल्मकार बनकर रह गए हैं। फिल्मकार ही नहीं बल्कि कलाकारों का भी यही हाल हैं। नसीरूद्दीन शाह, अनुपम खेर आदि कलाकार आज लोकप्रियता और समृद्धि के चलते कला सिनेमा से काफी दूर हो गए हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(1). दाधीच डॉ. पुरू, नाट्य शास्त्र का संगीत विवेचन, बिन्दु प्रकाशन उज्जैन, प्रथम संस्करण।

(2). चौहान रीता, नाट्य, कला और शिक्षा, अग्रवाल प्रकाशन आगरा, प्रथम संस्करण।

बुन्देलखंडी वीरगाथा आल्हा एक विश्लेष्णात्मक दृष्टि

अपर्णा पाण्डेय, डॉ. सुनीता द्विवेदी

सारांश

सनातनी परम्परा में ईश्वर को प्रकृति का रूप माना जाता है। मनुष्य क्षण-प्रतिक्षण समाज से, प्रकृति से कुछ न कुछ सीखता ही रहता है। भारत में विविध जतियाँ, अनेक धर्मों के लोग, बहुरंगी संस्कृति, भाषाएँ यहाँ के संगम स्थल है। संस्कृति का लोकगीतों से घनिष्ठ सम्बन्ध है। अतः भारतीय लोक संस्कृति को लोकगीतों से पृथक नहीं किया जा सकता।

बुन्देलखण्ड विश्वभूखण्ड का एक 'एश्वर्यवान' क्षेत्र है। यह भारत के हृदय स्थल पर स्थित है। इसकी सीमाएँ दो राज्यों—उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश के अन्तर्गत आती हैं यह बुन्देलों की शौर्य भूमि रही है। यहाँ का क्षेत्रफल लगभग 71000 किलोमीटर तथा यहाँ 85398 वर्ग मील में जनसंख्या निवास करती है। बुन्देलखण्ड को पुलिन्द, देश, चेदि, दर्शाण, जुहोती, जाजहोती, आदि नामों से जाना जाता था। कालान्तर में इसे बुन्देलखण्ड के नाम से जाना जाता है। बुन्देलखण्ड में—पंवारी, लोधंती, निभट्टा, भदौरी आदि बोलियाँ बोली जाती है।

बुन्देलखण्ड के लोकगीतों में—सोहर, बन्ना, गारी, सावनी, फ़ागे, अचरीगीत, आल्हा गाथा, होरी गीत, आदि गीत प्रचलित है। यह का मुख्य रूप से बहु-प्रचलित वीर रस प्रधान आल्हा प्रबंध लोक काव्य है। 13वीं शताब्दी में पं. शारंगदेव ने ''संगीत रत्नाकर ग्रंथ में प्रबंधाद्धयाय में चार धातु छः अंगों में विरुद्ध अंग में विरुदावली का वर्णन किया है। आल्हा गाथा को विरुद्ध अंग के अंतर्गत समाहित किया जा सकता है।

महाकवि जगनिक ने ''आल्हा खंड'' में आल्हा-ऊदल की 52 लड़ाईयों का वर्णन किया है। कहीं-कहीं 56 लड़ाईयों का वर्णन मिलता है। आल्हा गाथा का गायन विशेष रूप से वर्षा ऋतु में होता है। आल्हा प्रबंध की दो शैलियाँ-1 रासो शैली, 2 सैरा शैली है। रासो शैली में बुंदेली आल्हा तथा सैरा शैली में अभिनय करते हुए गायन होता है। सैरा कन्नौजी आल्हा कहलाता है।

प्रारंभ में आल्हा की लय विलंबित, अंतरे में मध्य लय तथा अंतिम चरण में द्रुत लय रहती है। यह पुरुष प्रधान शैली है। इसमें-वीर, रौद्र, अद्‌भुत, आदि रसों की प्रधानता रहती है। इसमें तीन-चार स्वरों का आधार लेकर गायन किया जाता है तथा भावों का अधिक महत्व रहता है। इसमें अतिशयोक्ति अलंकार का अधिक प्रयोग किया जाता है।

बुंदेलखंड के महोबा जिले की बहुत-प्रचलित वीरगाथा आल्हा का गायन सदियों से चला आ रहा है किंतु इस वैज्ञानिक युग में आल्हा शैली धीरे-धीरे विलुप्त होती जा रही है जो एक चिंता का विषय है। इसक मुख्य कारण युवाओं का रुझान फ़िल्मी संगीत की ओर होना, अपनी सांस्कृतिक धरोहरों के प्रति सजग न होना है। यह संगीत देह और मन को चंचल बनाता है और अधिक श्रृंगारिकता वाले गीत मानसिक रूप से युवाओं को अपराध की ओर अग्रसर कर रहा है।

फ़िल्मी संगीत का प्रचार-प्रसार बढ़ने से आल्हा लोक शैली विलुप्त होती रही है। इस शैली को अन्य शैलियों की भाँति स्थान प्राप्त नहीं हो पा रहा है।

*शोधार्थी, संगीत विभाग, छत्रपति शाहू जी महाराज कानपूर विश्वविद्यालय, कानपूर।

**एसोसिएट प्रोफेसर, संगीत विभाग, जुहारी देवी गर्ल्स पी.जी. कॉलेज, कानपुर

हमें पुनःपुनः इतिहास में जाकर देखना, समझना, उसे आगे बढ़ाने रहने का कार्य करते रहना होगा जिससे हम सामाजिको का ध्यान आकृष्ट करते हुए उत्तम मार्ग दर्शित करने का कार्य कर सके।

Key words

बुंदेलखंड, वीरगाथा, आल्हा, विश्लेषण, दृष्टि

विषयवस्तु

सनातनी परंपरा में प्रकृति को ईश्वर का रूप माना जाता है। प्रकृति के कण-कण में ईश्वर विराजमान है। जिन्हें संगीत साधक अपनी इंद्रियों द्वारा अनुभव कर पाते हैं। मनुष्य क्षण-प्रतिक्षण अपने समाज से, प्रकृति से निरंतर कुछ न कुछ सीखता ही रहता है। इसीलिए मनुष्य को सामाजिक प्राणी कहा जाता है। समाज में जीवन यापन के लिए अपने जीवन मूल्यों को जिनसे समाज, की व्यवस्था सुचारू रूप से चलती रहे हमें अपनी कुछ पिछली सांस्कृतिक, सामाजिक तथा नैतिक धरोहरों पर विचार करना पड़ता है। भारत देश सांस्कृतिक दृष्टि से अनेकता से एकता के सूत्र में निबद्ध है। विविध जातियाँ, अनेक धर्मो के लोग, बहुरंगी संस्कृति एवं अनेक भाषाएँ यहाँ के संगम स्थल है। यहाँ के जनसंप्रदाय में विभिन्नता पलिक्षित होते हुए भी सांस्कृतिक एकता ''हम सब एक है'', का भाव यहाँ के जनजीवन में व्याप्त है। यहीं भारतीय संगीत की मुख्य विशेषता है। कहा जाता है संस्कृति से संस्कारों का निर्माण होता है तथा इन्हीं संस्कारों से व्यक्ति के व्यक्तित्व का निर्माण होता है जबकि संस्कृति से पूरे समाज का निर्माण होता है। अतः संस्कृति को लोक से अलग नहीं किया जा सकता है। इसी समाज में भूत, वर्तमान, भविष्य सन्निहित पाया जाता है। लोकगीत का संस्कृति से घनिष्ठ संबंध है। किसी भी देश-प्रदेश का संगीत वहाँ के जनजीवन की सभ्यता-संस्कृति का दर्पण होता है। अतः भारतीय लोक संस्कृति को लोकगीतों से पृथक नहीं किया जा सकता। लोकसंगीत में प्रत्येक प्रदेश की स्थानीय भाषाओं में गीत, नृत्य आदि सन्निहित होते है। अतः भारतीय संगीत के साथ विकसित देशी संगीत लोकसंगीत कहलाता है।

जिस प्रकार ब्रज-मथुरा, राजस्थान, अवध, बनारस, मिर्जापुर आदि प्रांत अपनी लोक संस्कृति, लोकसंगीत, भाषा आदि के लिए विश्व विख्यात है। उसी प्रकार इनमें से बुंदेलखंड भी अपनी लोकसंस्कृति, लोकसंगीत, चित्रकला, शिल्पकला, मूर्तिकला, दुर्ग, आलेख आदि के लिए ख्याति प्राप्त प्रांत है। बुंदेलखंड वीरों की पृष्ठभूमि है यहाँ अनेक शूरवीरों ने अपने रक्त से इस भूमि को संचित, पल्वित, पोषित किया है। आज भी यहाँ की माटी में उनके रक्त की सुगंध आती है। बुंदेलखंड विश्वभूखंड का एक ''ऐश्वर्यवान'' क्षेत्र है। यह भारत के हृदय स्थल पर स्थित है। प्रकृति के वरदान से सदैव प्राचीन समय से लेकर आज कालांतर तक इसकी झोली भरी पूरी रही है। हरी भरी पर्वत मालाएँ, नदियाँ, घने जंगल, खजुराहो के मंदिर आदि बुंदलेखंड की शान रहे है। यहाँ के ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, भाषा आदि पक्षों पर दृष्टिवलोकन करे तो यह पता चलता है कि बुंदेलखंड बहुत विस्तृत क्षेत्र है। बुंदेलखंड एक सांस्कृतिक प्रदेश रहा है और बुंदेलों शौर्यभूमि रही है। इसका अतीत अत्यधिक प्रभावशाली और गौरवपूर्ण रहा है। यहाँ जन्मी अनेक विभूतियों ने इस अंचल का नाम रौशन किया और इतिहास के पन्नों में नाम अमर कर गए। आल्हा-ऊदल, महाराजा छत्रशाल बुंदेला, राजा भोज, ईसुरी, झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई, मैथली शरण गुप्त, गोस्वामी तुलसीदास आदि महान विभूतियों ने इस पावन भूमि पर जन्म लिया। बुंदेलखंड की स्थापना 914 AD का माना गया है। यह मध्य भारत का अति प्राचीन क्षेत्र है। बुंदेलखंड उत्तर प्रदेश के दक्षिण-पूरब का एक खंड है। इसका कुछ क्षेत्र मध्य प्रदेश में भी आता है। भू-वेत्ताओं का अनुमान है कि यहाँ का क्षेत्रफल लगभग 71000 किलोमीटर है और यहाँ 85398 वर्ग मील में जनसंख्या निवास करती है। इसकी सीमाएँ दो राज्यों के अंतर्गत आती है। उत्तर प्रदेश तथा मध्य प्रदेश में– दतिया, टीकमगढ़, पन्ना, दामोह, सागर, छतरपुर, आदि तेरह संपूर्ण जिले तथा पंद्रह ज़िलों में आंशिक भाग आते है। यहाँ की सीमाएँ विभिन्न शासकों के काल में परिवर्तित होती रही है। इन सीमाओं को एक दोहे के माध्यम से प्रस्तुत किया जा रहा है।

''इत जमुना उत बेतवा, इत चंबल उत टोस।
छत्रसाल सौ लरन कि, रही न काहू होंस''।।

यहाँ के ऐतिहासिक पक्ष पर दृष्टिवलोकन करने से प्राप्त तथ्यों के आधार पर यह जानकारी प्राप्त होती है कि यहाँ समय-समय पर महत्त्वपूर्ण घटनाएँ घटित हुई इनमें—त्रेता युग में भगवान राम का चित्रकूट प्रवास, द्वापर में चेदि नरेश शिशुपाल का वध, आदि महत्त्वपूर्ण घटनाएँ है। इसके अतिरिक्त यहाँ आल्हा-ऊदल का शौर्य, काका हरदौल की कथा, बुंदेल केसरी छत्रसाल महाराज का जुझारूपन, वीरंगना रानी लक्ष्मीबाई की वीरता, चंद्र शेखर आजाद का देश के प्रति बलिदान आदि महत्त्वपूर्ण घटनाएँ है। महाराजा छत्रसाल बुंदेला के शासनकाल में बुंदेलखंड का सर्वाधिक विकास हुआ। 1943 में एक लेख ''मधुकर'' में श्री श्यामचरण राय ने ''बुंदेलखंड का भूतल'' लिखकर प्रतिपादित किया था उसके बहुत पूर्व इस क्षेत्र की रचना तथा प्राचीनता के विषय में कहा गया कि 40-45 करोड़ वर्ष पूर्व कैम्ब्रियन काल से ''बुंदेलखंड नीरा' नाम की जल धारा के ऊपर यह भारी चट्टान भू-भाग रूप में उपलब्ध थी जो की बाद में विविध नामों से जानी गई। बुंदेलखंड को—पुलिंद, देश, चेदि, दर्शाण, जुहोती, जाजाहोती, मध्य देश, चिचिंदो, आदि नामों से जाना जाता था। आज वर्तमान में यह क्षेत्र बुंदेलखंड के नाम से जाना जाता है। आज कालांतर में इसे उत्तर प्रदेश पर्यटन विभाग द्वारा ''इंद्रदेश'' नया नाम दिया गया है। कहा जाता है वेदों के संस्कार बुंदेलों को प्राप्त है। क्योंकि सभी आर्य-भाषाओं का श्रोता वेदकालीन भाषाएँ मानी जाती है। भारत में लगभग 3000 से अधिक बोलियाँ बोली जाती है। भारतीय संविधान की आठवीं अनुसची में 22 भाषाओं को सम्मिलित किया गया है। भाषा के परिप्रेक्ष्य में निम्न दोहे के माध्यम से अभिव्यक्ति की गई है।

''घाट-घाट पै पानी बदले चार कोस पै बानी''

अर्थात् हर तीन से चार की.मी. के क्षेत्र में बोलियों में परिवर्तन आ जाता है। बुंदेलखंड क्षेत्र में बुंदेली भाषा, जों यहाँ की मातृभाषा है, भाषा बोली जाती है। यहाँ की उपबोलियों में—पंवारी, लोधन्ति, निभट्टा, भदौरी, आदि बोलियाँ बोली जाती है। ये उपबोलियों उच्चारण मात्र से ही पहचानी जा सकती है। इसके अतिरिक्त उत्तर प्रदेश के—आगरा, बटेश्वर, चंबल के कुछ क्षेत्रों में भदौरी भाषा का प्रचलन है। इन बोलियों में गाये जाने वाले लोकगीतों में अलग मिठास पायी जाती है। प्राचीन काल से लेकर वर्तमान समय तक इस क्षेत्र में बहुत उतर चढ़ाव आए। बुंदेलखंड का साहित्य अत्यंत प्राचीन प्राप्त होता है। जो इस प्रांत की प्राचीनता का साक्षी है। यहाँ के इतिहास को जानने के लिए अलग-अलग काल खंडों में विभाजित किया जा सकता है। बुंदेलखंड की—चित्रकला, शिल्पकला, दुर्ग, खजुराहो के मंदिर, विंध्य पर्वत मालाओं की गुफ़ाओं में अंकित शैलचित्र, मूर्तियाँ आदि देखने से यहाँ की जानकारी प्राप्त होती है। किसी भी प्रांत की संस्कृति-सभ्यता के दर्शन वहाँ के लोकगीतों में परिलक्षित होते है। लोकगीतों के माध्यम से व्यक्ति अपनी आंतरिक भावनाओं की अभिव्यक्ति करता है। लोकगीत हमारे सामाजिक, धार्मिक, तथा पारिवारिक विकास की अभिव्यक्ति करने का सबल माध्यम है। प्रत्येक प्रांत का संगीत वहाँ की संस्कृति का अभिन्न अंग होता है। इन लोकगीतों के माध्यम से हमारी सांस्कृतिक परंपराओं को जीवांत बनाए रखने में सहायता मिलती है। बुंदेलखंडी लोकगीतों को साहित्य की दृष्टि से पाँच भागों में विभक्त किया जा सकता है। जिनमें—संस्कार गीत, ऋतुगीत, जातिगीत, श्रमगीत अन्य विविध गीत है। बुंदेलखंड के संस्कार गीतों का संकलन अद्वितीय है इनमें—सोहर, बन्ना, विवाह गीत, गारी, मल्हार, राई, बारहमासा, सावनी, जस, अचरी गीत, फागें, होरी गीत, आदि भी है इसके अतिरिक्त—आल्हा गाथा, काका हरदौल की कथा, रामायण पाठ, भाटों का स्वांग, नटों का स्वांग, कुम्हारों का स्वांग, उत्तर प्रदेश की नौटंकी आदि के लिए बुंदेलखंड विशेष रहा है। यहाँ का मुख्य रूप से बहुप्रचलित वीर रस प्रधान आल्हा प्रबंध लोक काव्य है। जिसे बुंदेलखंड की अलग पहचान होती है। आल्हा लोक काव्य के श्रवण मात्र से ही नौजवानों की रंगों में अद्‌भुत जोश आ जाता है। बुंदेलखंड के महोबा जिले में जहाँ आल्हा विशेष रूप से गाया जाता है वहाँ की तत्कालीन स्थिति का निरीक्षण करने से यह जानकारी प्राप्त हुई की आल्हा गाथा

जिसे राजा, प्रजा आदि सभी चाव से सुनते थे आज विलुप्त होती जा रही है। सांगीतिक दृष्टिवलोकन करें तो प्राचीन वैदिक साहित्य में सामगान जहोता था इसकी विषय वस्तु देव स्तुति संबंधी ऋचाएँ होती थी किंतु सामगान के अतिरिक्त अन्य गानों का भी उल्लेख मिलता है। ये गान-गाथा, नारांशसी कहलाए थे जिन्हें सामगान में स्थान नहीं दिया गया। गाथा, नारांशसी की विषय वस्तु राजा-महाराजाओं के युद्ध विजय तथा उनके शौर्य प्रशस्तियाँ प्राप्त होती है। जिनका क्षत्रिय ऋषि सायंकालीन यज्ञ में गान करते थे। यह संगीत जन साधारण के लिए कुछ निकट का जान पड़ता था। देखा जाए तो पं. शारंगदेव और महाकवि जगनिक दोनों समकालीन थे। दोनों शास्त्रकारों का समय 13वीं शताब्दी माना गया है। पं. शारंगदेव ने ''संगीत रत्नाकर'' ग्रंथ में ''प्रबंधाद्‌ध्याय'' में प्रबंध के चार धातु छः अंगों का वर्णन किया है। इस छः अंगों में पदों विश्लेषित करने वाले विरुद्ध नामक अंग के अंतर्गत वहीं पद आते थे जिनमें देवी देवताओं की महिमा, राजा महाराजाओं के शौर्य की प्रंशसा (जिन्हें विरुदावली कहते थे) उनकी वीरता आदि का यशोगान होता था। विरुद्ध अंग के अंतर्गत बताए गए वर्ण्य विषय का अध्ययन करने के से प्रतीत होता है कि आल्हा-गाथा के विरुद्ध अंग के अंतर्गत समाहित किया जा सकता है। 12वीं शताब्दी (1165-1202) चंदेलकाल बुंदेलों के लिए स्वर्णिम युग रहा है क्योंकि इसी काल में राजा परिमार्दिदेव के राज दरबारी कवि जगनिक ने ''आल्हा खंड'' में लोक काव्य शैली में रचा गया लोक प्रबंध है। आल्हा लोक प्रबंध की लोकप्रियता का प्रमुख कारण लोकानुभूति-लोकाभिविअक्ति एवं संगीतात्मकता है। महाकवि जगनिक ने ''आल्हा खंड'' में आल्हा-ऊदल की 52 लड़ाईयों का वर्णन किया है। कहीं-कहीं 56 लड़ाईयों का वर्णन मिलता है। प्रो. नर्मदा प्रसाद गुप्त ने 23 लड़ाईयों की अपने आल्हा विषयक आलेख में समीक्षा की तथा डॉ. अनुभव तिवारी ने अपने शोध प्रबंध ''लोक काव्य आल्हा'' में कुल 25 लड़ाईयों की चर्चा की है। कवि जयदेव ने ''गीत गोविंद'' की रचना 1200 वीं शताब्दी में की थी। जयदेव ने ''आल्हा रासो'' तथा 'प्रस्न्नाराव राघव'' की भी रचना की थी जो उस समय राजाओं द्वारा खूब सुना जाता था। कुछ लोग ही जानते है की 1923 में ''विलियम वाटर फील्ड'' ने आल्हा के एक अंश का अंग्रेजी अनुवाद ''द ले ऑफ आल्हा'' के नाम से प्रकाशित किया वस्तुतः आल्हा खंड का रचनाकाल (1182-1203) के बीच का माना जाता है। आल्हा एक वीरगाथा है। वीरगाथा का अर्थ—शूरवीरों के शौर्य को गा-गाकर सुनाना, वीरगाथा कहलाती है। आल्हा गाथा में आल्हा-ऊदल दो शूरवीर भाइयों के शौर्य को गाकर सुनाना आल्हा कहलाता है। कहा जाता है चंदेलों के शासनकाल में आल्हा-ऊदल दोनों भाइयों ने भुजरियों की लड़ाई में सम्राट पृथ्वीराज चौहान के दाँत खट्टे कर अपने यश का लोहा मनवाया था। इन्हीं 52 लड़ाईयों के बखान से आल्हा-ऊदल को ख्याति प्राप्त हुई थी। एक महान कवि ने आल्हा छंद का विधान इस प्रकार समझाया है।

''बारह बरस लौ कूकर जीवे,
अरु सोलह लौ जीये सियार।
बरस अट्ठारह क्षत्री जीवे,
आगे वीवे को धिक्कार।''

महाकवि जगनिक ने इस वीरों का पुनर्जन्म कौरवों-पांडवों का बताया है। महाभारत का युद्ध समाप्त होने के पश्चात् भी पांडवों के युद्ध करने की इच्छा अधूरी रह गई थी तब भगवान कृष्ण के आशीर्वाद से कलियुग में इस पाँचों पांडवों ने जन्म लिया। युधिष्ठिर ने आल्हा, भीम ने ऊदल, अर्जुन ने ब्रह्मनंद, नकुल ने लाखन, सहदेव ने वीवर मलखान तथा कौरवों में दुर्योधन ने दिल्ली के राजा पृथ्वीराज चौहान, दुश्शासन ने धांधू, कर्ण ने ताहर तथा द्रोणाचार्य ने चौड़ा ब्राह्मण के रूप में जन्म लिया। आल्हा-ऊदल की 52 लड़ाईयों में अकेले ऊदल ने 23 लड़ाईयों का नेत्रत्व किया था। इनमें से—सूरजमल की लड़ाई, नैनागढ़ की लड़ाई, सिरसागढ़ की लड़ाई आदि उल्लेखनीय है। वीरगाथा आल्हा का आज भी राजस्थान के कुछ क्षेत्रों में ''रामचरितमानस' की अपेक्षा अधिक महत्व है। कहते है 1857 के भारतीय संग्राम में जब सैनिक युद्ध करके थकने लगते थे तब अनेक सैन्य छावनियों में सैनिकों को आल्हा गायन सुनकर उन्हें प्रेरित किया जाता था। विद्वजनों का कथन है की

आल्हा-ऊदल की तलवारों में शक्ति थी और उनकी तलवारें बोलती थी इनकी वीरता का वर्णन निम्न दोहे से प्रस्तुत किया गया है–

''खट-खट खट-खट खाटा बाजे खटक-खटक बाजे तलवार।
ता पे आल्हा ऊदल चढ़ी गए जिनते हारी गई तलवार।''

आल्हा लोक काव्य का गायन विशेष रूप से वर्षा ऋतु में होता है। पहले ग्रामीण अंचलों में शाम को चौपालें लगती थी। सावन की रिमझिम बरसात में सभी–बाल, युवा, वुद्ध, आल्हा का आनंद उठाते थे। आल्हा शैली के श्रवण मात्र से ही युवाओं में अनोखी स्फूर्ति आ जाती है तथा उनमें पुनः अपने कार्यो के प्रति उत्साह आ जाता है। आल्हा गायकों ने इस लोकशैली को जीवांत ही नहीं रखा बल्कि संवर्धित भी किया है। आल्हा प्रबंध की मुख्य रूप से दो शैलियाँ विकसित हुई जिनमें–रासो शैली, सैरा शैली है। रासो शैली में बुंदेली आल्हा है। इसमें छंद वैविध्य पाया जाता है। विशेष रूप से बुंदेलखंड के क्षेत्रों में गाया जाता है। रासो शैली में आल्हा गायन करने वाले गायक ढोलक बजा कर गाते है। दोनों हाथों से ढोलक के साथ मंजीरे वादक भी संगत करते है। सैरा शैली प्रायः उत्तर प्रदेश के कन्नौज क्षेत्र में प्रसिद्ध है। इस शैली की मुख्य विशेषता है की पूरा आल्हा एक ही छंद में गाया जाता है। आल्हा मंच पर खड़े होकर सफेद धोती, कुर्ता, सिदरी, सर पर साफा, मूँछों को ताव देते हुए हाथ में तलवार लेकर पूर्ण अभिनय के साथ आल्हा गायन करते है संगत करने वाले वादक-ढोलक, आल्हा के विख्यात गायक थे इन्हें 'आल्हा सम्राट' की उपाधि से विभूषित किया गया है। सैरा शैली के छंद 32 मात्रा में निबद्ध मिलते तो कहीं 16 मात्रा में भी निबद्ध मिलते है। कुछ स्थानीय क्षेत्रों में तीनताल तथा कहरवा ताल का प्रकार बजाया जाता है। आल्हा शैली में स्वर, ताल, लय, पद आदि तत्वों का सामन्जस्य बनाते हुए गायन किया जाता है। इसमें लय का विशेष ध्यान रखा जाता है। प्रारंभ में आल्हा की लय विलिंबित रहती है। जैसे-जैसे छंदों की बढ़त होती है वैसे-वैसे लय भी बढ़ती जाती है। अंतरे में इसकी मध्य लय रहती है तथा अंतिम चरण में द्रुत लय हो जाती है। इसमें छंद के प्रत्येक प्रथम अक्षर पर वजन देते हुए शब्दों को अंत तक बढ़ाते हुए गाते है। आल्हा मुख्यतः पुरुष प्रधान लोक शैली है। इसे गाने में हृदय पर जोर पड़ता है। पुरुषों की मोटी तथा गंभीर आवाज़ होती है जबकि महिलाओं की आवाज़ पतली होने के कारण आल्हा गायन के लिए उपयुक्त प्रतीत नहीं होती। इस शैली में अतिशयोक्ति अलंकार का बहुतायत रूप से प्रयोग किया जाता है। आल्हा एक वीररस प्रधान शैली है अतः इसमें–वीर, रौद्र, अद्भुत, वीभत्स रस की प्रधानता पाई जाती है। इसमें तीन से चार स्वरों का आधार लेकर गायन किया जाता है। इसमें जितना महत्व स्वरों का होता है उसकी अपेक्षा शब्दों एवं भावों का महत्व अधिक होता है। स्थानीय क्षेत्रों ने प्रचलित धुनों सरलता, भावात्मकता आदि गुणों का समावेश पाया जाता है। बुंदेलखंड के प्रमुख अल्हैतों में– जयसिंह (विदेश्वर, हमीरपुर), मुन्नीलाल श्रीनिवास (चिचारा, महोबा), अनिरुद्ध सिंह (पतारा, हमीरपुर) आदि आल्हा अल्हैत माने जाते है। बुंदेलखंड की पृष्ठभूमि पर आल्हा गाथा का गायन सदियां से चला आ रहा है। आज भी आल्हा-ऊदल के प्रसंग अविस्मर्णीय है। किंतु समय के प्रवाह के साथ आज इस वैज्ञानिक दुनिया में आज वीरगाथा लोकशैली धीरे-धीरे विल्पुत होती जा रही है। जो एक चिंता का विषय है। इसका मुख्य कारण युवाओं का अधिकतर रुझान फ़िल्मी संगीत की ओर होना, अपनी सांस्कृतिक धरोहरों के प्रति सजग न होना। यूँ तो आजकल फ़िल्म जगत भी कभी-कभी इस दिशा नई राह दिखने के लिए कार्य भी करता है। परंतु ऐसी शिक्षा परक, नवीन दिशा परक फिल्मों का निर्माण कम ही होता है। संगीत जगत की बात करें तो शास्त्रीय संगीत, लोकसंगीत, सूफी संगीत के क्षेत्रों में अपने-अपने स्तर के कार्य हो रहे है (प्रयोगात्मक, सैद्धांतिक) किंतु प्रतिशत अभी भी बहुत कम है। यह वह संगीत है जो मन और देह को चंचल तो बना सकता है किंतु बुद्धि और आत्मा पर उसका कोई सकारात्मक प्रभाव नहीं पड़ता बल्कि विपरीत दिशा में जाकर युवा वर्ग पूरी तरह भटक जाता है। ऐसे अर्थहीन अधिक शृंगारिका वाले गीत-संगीत जो मानसिक रूप से युवाओं को

अपराध की ओर अग्रसर कर रहे है। कहीं न कहीं हमारे युवा पथभिन्न होते जा रहे है और हमारी संस्कृति, हमारे लोकगीत विलुप्त होते जा रहे है। जहाँ पहले वर्षा ऋतु का इंतजार सभी गाँव वासियों को रहता था। शाम होते ही सभी आल्हा सुनने को उत्सुक रहते थे। वहीं आज के नए आधुनिक युग में अब सावन की पुरानी मीठी यादें बनकर रह गई है। जब दूरदर्शन अपनी शैशवास्था में था तब ग्रामीण तथा शहरी बस्तियों में ढोलक की थाप के साथ आल्हा का गायन रात-रात भर चलता रहता था। जैसे-जैसे फ़िल्मी संगीत का प्रचार-प्रसार बढ़ने लगा वैसे-वैसे आल्हा शैली विलुप्त होने लगी। आज भी कुछ गिने चुने आल्हा गायक है जो आल्हा लोक शैली को जीवित रखने में महत्त्वपूर्ण योगदान दे रहे है उनमें कुछ संस्थाएँ भी योगदान दे रही है। किंतु अभी भी आल्हा लोक शैली को पूर्ण रूप से अन्य शैलियों की भाँती स्थान प्राप्त नहीं हो पाया है जो। आल्हा गाथा बुंदेलखंड की शान है। आज इस क्षेत्र को आल्हा लोक शैली के कारण ही प्रसिद्धि प्राप्त है। बहुत ही दुःख की बात है कि यहाँ की बहुप्रचलित वीरगाथा आल्हा लोक शैली विलुप्त होती जा रही है। उल्लेखनीय है कि हमारे देश की सांस्कृतिक धरोहरों को हमें पुनः-पुनः इतिहास में जाकर देखना, समझना, विश्लेषण करना और उसके आगे बढ़ाते रहने का कार्य करते रहना होगा। जिससे हम सामाजिकों का ध्यान आकृष्ट करते हुए उत्तम मार्ग दर्शित करने का कार्य कर सकें।

निष्कर्ष

प्रस्तुत विषय का सारगर्भित अध्ययन तथा परीक्षण करने के पश्चात् यह निष्कर्ष प्राप्त होगा कि बुंदेलखंड के महोबा जिले की बहुप्रचलित आल्हा लोक शैली को समाज में अन्य शैलियों की भाँति एक स्थान प्राप्त होगा साथ ही एक नवीन दिशा भी प्राप्त होगी। आज के वैज्ञानिक युग में जनसाधारण विशेषतया युवा वर्ग का जीवन टेलीविजन, कंप्यूटर, व्हाट्सएप, फेसबुक आदि तक सीमित रह गया है। वह धीरे-धीरे अपनी सांस्कृतिक धरोहरों से दूर होता जा रहा है। साथ ही नैतिक मूल्यों का भी ह्रास हो रहा है। इस विषय के माध्यम से युवा वर्ग अपने नैतिक मूल्यों के प्रति जागरूक होंगे आज समाज फ़िल्मी संगीत, भोजपुरी संगीत के प्रगति अधिक रुझान ले रहा है। इस विषय के माध्यम से हमारा आज का समाज भारतीय लोक नाट्य ''आल्हा लोकशैली'' के प्रति रुझान लेगा। परिणामस्वरूप यदि लोगों में इस वीर गाथा के लिए रुझान बहता है तो यह संगीत एवं नाट्य जगत के लिए बहुमूल्य उपलब्धि होगी।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. 'यमन' अशोक कुमार, ''संगीत रत्नावली'' सन् 2018 ई., अभिषेक पब्लिकेशन, चंडीगढ़/नई दिल्ली।
2. चौरसिया अरुणंद्र, ''बुंदेलखंडी लोक संगीत में सामाजिक, साहित्यिक और सांस्कृतिक तत्व''(शोध प्रबंध), सन् 1993 ई. निर्देशक प्रो. पं. रामाश्रय झा, संगीत एवं ललित कला विभाग, इलाहाबाद उ.प्र.।
3. 'कुमुद' अयोध्या प्रसाद गुप्त, ''बुंदेलखंड का लोक जीवन'', सन् 2004 ई., द्वितीय संस्करण-नमन प्रकाशन, मंडपम राठ, उ. प्र.।
4. 'चौधरी' डॉ. सुभद्रा, ''भारतीय संगीत में ताल और रूप विधान'', सन् 1984 ई., प्रथम संस्करण, कृष्णा ब्रदर्स अजमेर।

Analytical study of the role of music in mental health

Prof. Dr. Sunil B. Kolhe

Summary -

Music itself is a very powerful and panacea medicine which has a unique ability to calm the mind and relieve stress. Its positive effect on the mind as well as the body has been seen after many types of research. Physical ailments and mental ailments have been seen to be reduced by just listening to music. Music as an invaluable heritage given to man by nature is pervasive not only in our daily life but also in every particle of nature. In the busy life of the modern world, when we take out a few moments to listen to music, then we feel self-realized and our tiredness of the day ends in a moment. That is why the use of music is visible everywhere by making music a means of prevention by musicians and physicians. Music is Food of Mind.

"Advard Podolusky" said - It seems, therefore, that this kind of music has a stimulating effect on the circulation by increasing the blood pressure and pulse rate while lessening the action current of the heart.

"Shakespeare said – The man who hath no music in himself or is not moved by the conchord of sweet music is fit for treason, stratagems and spoil, let no such man be trusted.

Introduction -

Music is a unique gift given to man by nature. Every creature in the universe expresses its inner feelings through one or the other medium. There is a mention of the Sixtyfour arts in the scriptures. The sole purpose of all these fine arts is to create a feeling of bliss. Music in all the arts are considered to a high quality, and the reason is equally important that is, Music not only humans but also animals and birds, trees and plants have fascinates. It would not be unreasonable to say that every particle of nature contains Music.

Music is not only a means of feeling bliss, but it also affects the expressions of human beings by maintaining mental balance. In the Sangeet Ratnakar Granth, Pt. Sharang Dev Ji has given the definition of Music as "Geetam, Vadya tatha Nrityam Trayam Sangeet Muchyate" this definition of music is extremely relevant. There is ample opportunity for solo and group performances. In the geet, Vadya and Nrutya there is special importance given to geet in instrument and dance. Being in a literal form, geet has been considered a powerful medium to express the feelings of human beings. The medium of expressing the feelings of a song by acting is called dance, and

Associate Professor, Department of Music, G.N.A. College, Barshitakali, Dist- Akola, Maharashtra, Email — sunilkolhe1010@gmail.com

hence the imagination of dance without song and instrument seems incomplete.

After knowing the importance of this power of expressing emotion in music, musicians and physicians started making experiments through music for the relief of labor and disease. In which he got unusual success. It is a matter of pride for us that Indian music is considered to be of a high standard in this medical system. These medical qualities found in abundance in Raagdari music have captivated the world. We cannot even imagine human life without music. Music is the only tool that man uses to express joy and his happiness. Music has the power to change the mind of man and change his normal and mental behavior. Music liquefies the mind. Along with swaras, taal and rhythm also have special importance. In the human body,the heartbeat, breathing, blood circulation, there is a certain in human walking and speaking, and it is a sign of rhythm. Similarly, in the human brain also a specific rhythm is dynamic. This rhythm of the brain remains different in different activities of the body and when this rhythm of the brain gets disturbed then a person becomes ill. The effect of the rhythm on life becomes easy. Those who do not have any knowledge of music, they have also immediate effect of taal or theka. As soon as DJ starts playing it seems that everyone raises their hands and starts trembling.

Emotions arising in the human body like anger, fear, joy, enthusiasm etc. Occurs due to excretion in less evidence of secretion by the endocrine glands. The power to generate all these feelings lies in the rasas produced by music. This thing has also been proved through experiment. By carrying various studies have shown, to not only produce expressions of music, but internal changes in humans and animals.

Dr. Edward Podolskie writes in his book, **Music for Your Health**, that Moods have a biological foundation. They depend a great deal on the activity of the brain and blood. Depression and exaltation are actuated by speed or sluggishness of the blood in the brain and blood vessels as well as by nervous tension. The 'blues' for example, are accompanied by sluggishness of heart and circulation.

Looking at the Vedic period we come to know that, music and medicine Both Vidyaa progressed in that period. From the point of view of scholars, these two disciplines had more importance and perhaps for this reason two Vedas were also composed by the scholars. 'Gandharvaveda' for music and 'Ayurveda' for medicine, both these Upvedas are composed from 'Samaveda' and 'Atharvaveda' respectively. It is believed that since five thousand years ago man had come to know about the effect of Music on the human body and from this he started the medical use of music. We can easily recognize the musical effect on the human body. We can know that our entire body may not have been taken over by music but physical actions like hand-contracting, head –shaking, finger moving, reaching etc. changes are visible during listening to Music. Listening to music causes tension or relaxation of muscles. First of all, we feel the hearing of music through the ears and later it reaches the brain through the nerves of the ears and only then the music creates its effect on the brain.

According to scientists, music first affects the thalamus of the brain. The thalamus is the largest part of the brain and is the site of all kinds of sensations and feelings. For this reason it is necessary to make full use of music in the medical system, because music has immense power to remove mental diseases. Music affects the thoughts of the brain and concentrates, and for this reason it helps in taking the symptoms of mental illness out of the brain. Due to this feeling, many doctors and scientists keep playing different types of music in low voice in their hospitals.

Dr. Edward Podolskye, in his book **Music for Your Health**, obtained through the successful experiments of music therapists and doctors, has drawn the following conclusions in this book.

1. Music increases metabolism, as shown by the work of tartchanoff and Dutton.
2. It increases or decreases muscular energy, according to the experiment of Fere, tartchanoff and Scripture.
3. It accelerates breathing and decreases its regularity as demonstrated by Binet, Weed and Guilboud.
4. It produces a Marked but variable effect one on blood volume, pulse and blood pressure.
5. It lowers the threshold for sensory stimuli of different modes.

From the above mentioned study we know that, Music has an effect not only on the human body. It also affects his brain and nerves as well. All the human body circulation and control is through his brain and nerves, because the role of the brain in disease prevention is extremely important, it is proved. Due to the good effect of music, the human brain becomes happy, as a result, there is a change in the functioning of all the organs operated by the brain, all the organs start functioning in a systematic way and as a result the effect of diseases starts decreasing from the therapeutic point of view. Due to stress in today's hectic lifestyle, many diseases have overtaken man. That is why it has become necessary to use the positive effects of music instead of relying only on medical science. By listening to music, the human mind becomes thoughtless and becomes focused; as a result, a person gets a feeling of mental peace and joy, which affects the whole body and various organs. Meaning that we can get rid of diseases by being stress free and keep ourselves healthy and calm.

There are many different types of music in the world. The interest in listening to music varies from person to person. But in all these music genres, especially the medical use of Indian raga music is influential. In particular, instrumental music has its own importance in this experiment. There are some special ragas in Indian music whose hearing gives a feeling of positive effect. In instrumental music, if we listen to Raagdari over the flute, sitar, santoor etc., then it gives us peace of mind. This importance of Indian classical music is recognized all over the world today.

Even if a man does not involve himself in the activities of music if the sound waves off all in, but any kind of music his ears, whether he pays attention to it or not, then music shows its effect. This means that where language or words cannot produce their effect, music shows its effect. In this way, we see that by listening to music or participating in musical activities, there is a continuous

change in mental patients, as well as if this patient remains involved in musical activities for a long time, then the disease symptoms of those patients also decrease and he becomes healthy. They appears to be moving towards a healthy life.

Conclusion –

After this exhaustive study, we can reach the conclusion that

1. Music not only corrects the mental state of man, but also increases the capacity of the human brain.
2. Music plays an important role in the development of the brain.
3. Music also acts as a pain reliever.
4. Music has a healthy effect on the physical and mental disorders of human beings.
5. There are some functional changes in the internal organs of man, such as - heart rate, pulse rate, blood pressure, breathing, brain waves and changes in muscles are seen.
6. To keep the mental health strong, listening to music, singing and playing activities are very beneficial and this is the greatness of music.
7. Raaga based Indian music is very helpful for the wellbeing of mental health.

Bibliography -

1. Dr. Tiwari Kiran, Bhartiya sangeet ev manovigyan,2nd ed. 2015, Kanishka Publishers and Distributors, New Delhi.
2. Dr. Paranjpe Sharachchandra Sridhar, Bhartiya sangeet ka Itihas,ed. 2015, Chaukhamba Indowestern Publishers, Varanasi.
3. Dr. Sharma Swatantra, Bhartiya sangeet ek vaigyanik vishleshan,2nd ed. 2013, Anubhav Publishing House, Allahabad
4. Dr. Thakur Jaydev Singh Bhartiya sangeet ka Itihas, 3rd ed. 2016, University Publications, Varanasi.
5. Vasant, Sangeet Visharad, 23rd ed.1999 Sangeet Karyalaya, Hathras Publications.
6. Dr.Podolski Edward, Music for your Health, 15 October 2004, Kessinger Publishing, US.
7. Das Sanjay, Yogic ev Sangeet Chikitsa, 1st ed. 2005 Pilgrims Publishing, Varanasi
8. Baba Ramdev, Pranayama Rahasya, ed. 2004, Divya Prakashan, Haridwar
9. Dr. Verma Satish, Sangeet Chikitsa, Radha Publications New Delhi

Music Marketing

Ruma Chakraborty[1], Prof. Neera Choudhury[2]

Abstract

Music is an integral part of our culture. Music is the art of arranging sounds in time through the elements of melody, harmony, rhythm and timbre. Now, when we define marketing, then 'Marketing' is the action or business of promoting and selling products or services, including marketing research and advertising. Thus, the interdependence of marketing and music provides the term commonly understood as 'Music Marketing'. In simple words, we can say that music marketing (or music promotion) is the process of raising awareness of music. By marketing the music, we are getting people to know it exists. It is also an effort to lead your audience on a journey from awareness to conversion (and beyond). A detailed elaboration of the marketing process and marketing program in the music industry will be developed, where special emphasis is placed upon the technological evolution of the marketing and music connection, and an estimation of their interdependent framework in the near future will be made.

Keywords – Music, Music Marketing, Music Industry, Marketing Mix, Market Segmentation

Introduction–Music is a type of art which uses sound as a medium, and as a consequence results in the sentimental enrichment of people, especially in the creation of inner peace, personal satisfaction, additionally creating unique moods, excitement, pleasantness and similar sentimental as well as hedonistic states which are commonly individual characters in so far as their strength and the direction of their intensity. Like in any heteronomous art forms, the practitioners of Indian Music aim at expressing emotions and creating the aesthetic or the 'beautiful'. According to Oxford Dictionary, music is 'vocal or instrumental sounds (or both) combined in such a way as to produce beauty of form, harmony and expression of emotions'. The art of singing, playing musical instruments and dancing collectively designated as 'Sangeet' are regarded as the main assets and expressions of Indian culture. Indian music comprises within its fold a vast, varied and rich tradition of classical, semi-classical, light and folk music, which has grown out of the different cultures and sub-cultures of India and their mutual sharing. According to Sloboda (1985), the reason that most of us take part in musical

[1] Research Scholar, Department of Music, Patna University, Patna

[2] Professor, Department of Music, Patna University, Patna

activity, be it composing, performing, or listening, is that music is capable of arousing in us deep and significant emotions. In any case, music has always served as a medium of communication as well as a mode of individual expression.

Before knowing music marketing, it is important for us to know what 'Marketing' is. Marketing refers to activities a company undertakes to promote the buying or selling of a product or service. Marketing includes advertising, selling and delivering products to consumers or other businesses. According to Wikipedia, marketing is defined as – it is a process of intentionally stimulating demand for and purchases of goods and services; potentially including selection of a target audience; selection of certain attributes or themes to emphasize in advertising; operation of advertising campaigns; attendance at trade shows and public events; design of products and packaging to be more attractive to buyers; selection of the terms of such as price, discounts, warranty and return policy; product placement in media or with people believed to influence the buying habits of others; agreements with retailers, wholesale distributors, or resellers; and attempts to create awareness of, loyalty to, and positive feelings about a brand. Marketing is currently defined by the American Marketing Association (AMA) as 'the activity, set of institutions, and processes for creating, communicating, delivering and exchanging offerings that have value for customers, clients, partners, and society at large'.

Technology has been central to the production, distribution and consumption of popular music for over half a century: indeed, it has become a precondition for popular music culture at its broadest and most fundamental levels. The reproduction of music fundamentally may develop in three independent ways, by way of a physical medium (a sound recording – once being the gramophone record and audio cassette, and today in most cases by way of CDs and DVDs), as well as by today's modern formats which are based on computer and communication technologies which will be specially discussed in this paper. Together, these manners of reproducing music shall be the focus of marketing contemplation in this work, which we have entitled 'Music Marketing'.

Essence of Music Marketing – The Music Industry is a business which sells compositions, in other words, their performances which are by way of recording registered in a specific format so that, in a narrow sense. The term 'Music Industry' encompasses those business objects which record, produce, distribute and sell (market) recorded music. The music industry encompasses an entire list of business from varied branches of human resources, so that it may also encompass sound recording, music publishing, radio and TV stations, music school and workshops, music associations, associations for the protection of copyrights and other related rights (like IPRS, ISRA, IRRO, etc.), performers, composers, lyricists, arrangers, musical theorists, producers, record companies (like SONY, T-Series, SaReGaMa, etc.), distributors, organizers and concert promoters, marketing agencies and promotional agencies, etc.

The music market is characterized by a strong heterogeneity in music tastes among consumers/users that vary not only

with respect to music genres but also within each genre. Music Marketing fundamentally should concern itself with establishing products, services and ideas which offer or search out a specific music market, and on the basis of which serve as the basis for setting real measurable marketing objectives, develop adequate music products for which there is an established demand, communicate and distribute music products, and reinforce the ways in which set marketing objectives are realized.

Marketing objectives in music industry subjects are mainly of a qualitative nature, whereas in economic activities they are usually quantitative. The result of labor in the music industry subjects is a sort of 'product' which can directly or indirectly meet the needs of people. The products of music industry subjects are not intended for the music industry subject's reproduction but for various modalities of exchanges through the market. The music product serves to meet certain specific needs of people – needs that are mostly qualitative and have a pronounced intangible component. In other words, this means that the music products should also possess an appropriate use value to engage in exchange relations. It is essential for the music industry subjects to realize the following tasks through marketing:

1. Research into the demand for the music product.
2. The development of the appropriate music products to meet identified needs.
3. The adequate funding of programs of the music industry subject, and the creation of an image appropriate to the environment in the music industry subject operates.

Marketing Mix – The marketing mix is needed to determine or 'single out' a certain music product, form the right price for it, organize the way it will be sold and distributed to end users, and define the forms of promotional activities. With the conventional elements of marketing mix, already well known 4Ps – product, price, place and promotion, but in music marketing we can discuss a new marketing mix which include an additional 3Ps i.e. process, people and physical evidence, which is well known in service marketing mix. The complete structure of the marketing mix then includes:

1. Product – the marketers have to know what the needs of the customer are, and in what way will the service satisfy those needs.
2. Price – analysis of the prices of similar goods has to be made. How does the customer value the service? Possible discounts have to be measured.
3. Place – a place for selling (providing) the service has to be chosen based on where people look for the kind of service the company provides.
4. Promotion –choosing the way of getting the information about your service to the customers. Through what channels will the marketers try to access people? Advertising via mass media: internet, television, radio. Proper time for promoting of the servicehas to be chosen carefully.
5. Process –the company has to decide what processes will be included in order to deliver the service to the customer. The service has to be delivered as quickly and effectively as possible.

6. People – people are one of the key elements of the service marketing mix. People deliver the service, interact with customers. In order to be successful, companies have to choose their staff carefully and let them improve further.
7. Physical evidence – because services are intangible, it is important to give the customer some tangible bonus elements. This can be the environment in a restaurant. All visible and tangible aspects of a company serve as physical evidence to the customer.

Market Segmentation – Market segmentation helps to compete in a highly competitive market. It is important to identify the bases for segmenting the markets. In relation to music market segmentation, music market can be segmented into three sections:

a. Current users
b. Potential users
c. Those people, who are not considered part of the target market.

Target marketing focuses on the first two groups only. The third group may include who do not consume music or who are unwilling to pay for the music products.

Current Scenario

In the 1980s, owing to developments in digital technology and informatizationenormous changes occur in the music industry. The CD has pulled us into the digital world in which music is one of the most represented contents. Never in the history of the human race has music been made more available and heard. Wherever we turn, people are listening to MP3s, downloading, streaming, ripping, burning, sharing and uploading, while at the same time a home studio on their PC enables them to create their own compositions and remix another's work. Music is in the automobiles, mobile phones, computers, CD-players, i-pods, and even key-chains.

The term 'Market' is generally understood as a place where the buyer and seller meet for exchange purposes. But this is not the correct understanding of a market. Virtual marketplace is one of the important markets for the music marketing and for the artist to promote their music through different virtual marketing platforms. YouTube, Amazon, Hotstar and other entertainment apps have invested heavily in content development, awareness creation and customer inducements.

The digital music landscape is more crowded than ever, but the proliferation of platforms and mediums has had a democratizing effect. The gates of the music industry once guarded by labels and distributors are now open to anyone. That's why the real challenge of music promotion in the 21^{st} century is to develop a 360^0 marketing strategy that reaches all these audiences and connects with every potential opportunity – and to do that you need the right tools, like Spotify for Artists, YouTube Music, Reverb Nation, Sound Cloud, Band Camp, etc.

The purpose of marketing is not only to acquire customers but also to retain them. As we know that music is one of the best and beautiful medium for communication and artist always wants to win the heart of his/ her listeners. Music marketing helps the artist to reach their listeners via different marketing strategies and through different marketing segmentations.

Conclusions –The biggest thing for music marketing is the rapid speed of change in how we consume music. The recorded music marketplace is under serious cut throat competitions from the new players lead by Google (owner of YouTube), Spotify, Amazon Music Services, with a host of others crowding the stage. Record labels and artist are looking at innovative marketing ideas to drive customers to their products. Music marketing can play a pivotal role in improving and increasing the income earned by music industry subjects. The marketing process has many elements to it and it is an ongoing process. In the 'noise' of the online world and with the globalization of the marketplace, marketing is of vital importance.

References –

1. Hutchison, T. *Web Marketing for the Music Business*, Elsevier, Inc., Oxford (2008)
2. Juslin, P. N. and Sloboda, J. A. (ed.) *Music and Emotion: theory and research,* Oxford University Press, Oxford (2001)
3. Saxena, Rajan, Marketing Management, McGraw Hill Education (India) Pvt. Ltd., Chennai (2020)
4. Harrison, Ann,*Music The Business*, Penguin Random House, UK (2017)
5. Kaspir, Jan, *Marketing in the Music Industry* (Final Paper from Dept. of English & American Studies, Philosophical Society)
6. https://soundcharts.com/blog/music-marketing-tools
7. http://en.m.wikipedia.org/wiki/Marketing

Thaat System and the total number of scales: A critical analysis

Bhavik Mankad

Abstract

Pandit Venkatmakhi, the author of a landmark treatise 'Chaturdandi Prakashika', devised a mathematical method and determined that seventy-two Mela-s could be obtained from the twelve Swara-s. His method of classification of Ragas gained immense popularity and is still used in Carnatic Music. Based on this, Pandit Vishnu Narayan Bhatkhande suggested ten prominent scales for the classification of Raga-s in Hindustani Music. He also extrapolated the theory to determine the possible number of Audav, Shadav, Sampoorna scales from each of the seventy-two parent scales. However, a major limitation of this theory lies in the fact that the recurrence of identical scales, found across different parent scales, was not taken into account. Since the only criterion considered here is the minimum number of Swara-s required for a scale to be called a Raga, the multiplicity of such scales can be ignored. Thus, the total number of possible combinations reduces substantially. On the contrary, this also opens up vistas for creation of new Ragas with a common set of notes, but differentiated on the basis of various parameters.

***Key words**: Venkatmakhi, Bhatkhande, Melakarta, scales, Thaat*

Introduction:

The history of evolution of Indian Classical Music dates back to the Vedic period. Broadly, it can be divided into ancient, medieval and modern periods. The period from 13th Century AD to 18th Century AD can be considered to be the medieval era. Pandit Sharangdev's 'Sangeet Ratnakar', written in the first half of the 13th Century, is considered to be a landmark treatise that forms the bridge between the ancient and medieval periods of the history of Indian Music. It is widely believed that Indian Classical Music divided into two major branches, namely Hindustani (North Indian Classical Music) and Carnatic (South Indian Classical Music) around the same period. 'Sangeet Ratnakar' also acts as the last common text before this division.

Pandit Venkatmakhi, also known as Venkateswara Dikshit or Venkatdhwari, is renowned mainly for his work 'Chaturdandi Prakashika' (literally meaning 'The Illuminator of the Four

Ph.D. Research Scholar Department of Music University of Delhi Room no. 06, International Students Hostel Near Vishwavidyalay Metro Station Mall Road Delhi – 110007 Contact/WhatsApp: 7675043705 / 9724320309 bhavikmankad1991@gmail.com

Pillars of Music'), which is considered to be an important treatise of the medieval era. Written in Sanskrit in around 1635 AD, this text throws light on four aspects of Carnatic Music, namely Alap, Thaay, Geeta and Prabandha. He was the younger son of Govinda Dikshit, renowned scholar, musician and the author of the treatise 'Sangeet Sudha'. Govinda Dikshit was a minister in the court of Raghunatha Nayak of Tanjore (reign 1614-1634 AD), who was himself a skilled musician and a patron of arts. Pandit Venkatmakhi received his musical training from his father Govinda Dikshit and his elder brother Yajnanarayana Dikshit, and followed the tradition of Tanappacharya. He succeeded his father as the minister and court musician to Vijayraghava Nayak (reign 1634-1673 AD), son and successor of Raghunatha Nayak. (Rao, 2015)1

Carnatic Music did not have a reliable system of classification of Raga-s at that point. Vijayraghava Nayak commissioned Pandit Venkatmakhi to devise a system that enables the classification of Raga-s prevalent in Carnatic Music during that time. Pandit Venkatmakhi formulated a mathematical system based on the chronological ascent of notes and their permutations. Of the twelve musically useful notes, known as Swara-Sthanams (namely Shadja, Shuddh Rishabha, Chatusruthi Rishabham/ Shuddh Gandhara, Shatsruthi Rishabham/ Sadharana Gandhara, Antar Gandhara, Shuddh Madhyama, Prati Madhyama, Panchama, Shuddh Dhaivata, Chatusruthi Dhaivata/Shuddh Nishada, Shatsruthi Dhaivata/Kaisiki Nishada, Kakali Nishada) his method utilized different combinations of groups of seven notes in sequential ascent such that the first note was always the tonic Shadja, followed by either form of each of the seven Swara-s. Each of these groups of seven chronologically ascending notes was called 'Mela'. A total of seventy-two Mela-s was obtained through this method, of which thirty-six consisted of Shuddh Madhyama and thirty-six with Prati Madhyama.

Although the concept of 'Mela' was introduced much before the time of Pandit Venkatmakhi, his method followed the scientific technique of possible different combinations of seven notes. Later, the system was refined and the concept of 'Melakarta' was introduced with the condition that each Melakarta must be Sampoorna (heptatonic) and that each such Melakarta would have only an ascending, chronological order of notes (Arohana). Most of these Melakarta-s corresponded to the scales of one or the other Sampoorna Jaati Raga-s of Carnatic Music. This system enabled the classification of a major part of the Raga-s prevalent in Carnatic Music back then. Pandit Venkatmakhi wrote a detailed account on various other aspects of music in a total of ten chapters in 'Chaturdandi Prakashika', in simple Sanskrit. The work gained wide popularity through the efforts of Pandit Venkatmakhi's grandson Muddu Venkatmakhi, who added a small appendix to the treatise.

However, it must be noted that Pandit Venkatmakhi did not use all of the seventy-two Melakarta-s for the Raga-s prevalent during his period. He considered only nineteen of them important for the classification of most Raga-s, and stated that the method was devised only to scientifically determine the possible number of heptatonic scales

from the twelve notes, that met the above conditions. (Narayanaswami, n.d.)2

Area of Study:

Inspired by this theory, musicologist Pandit Vishnu Narayan Bhatkhande introduced the concept of 'Thaat' (literally meaning 'resemblance' or 'similarity') in Hindustani Classical Music in the late 19th Century AD. Being heptatonic ascending scales, each of these 'Thaat-s' corresponded to a Melakarta in Carnatic Music. Pandit Bhatkhande also mentions that Thaat-s are merely scales and do not necessarily associate with any emotion, which is an essential criterion for a scale to be called a 'Raga'. (Bhatkhande, n.d./ 1951)3 Since Hindustani Music also accepted a total of twelve notes (seven 'Shuddh' and five 'Vikrit' Swara-s), Pandit Bhatkhande logically accepted the theory of seventy-two combinations as determined by Pandit Venkatmakhi.

In Hindustani Music, a key rule in the structuring of Raga-s is that two forms of a single Swara (Shuddh and Vikrit) cannot be used consecutively (there are exceptions like Raga Lalit, though). Thus, only about thirty-two of the seventy-two possible Thaat-s are musically useful. Owing to the dual nature and nomenclature of many Swara-s in Carnatic Music (for example, in Ragam Nattai, Sadharana Gandhara assumes the role of Shatsruthi Rishabha when used simultaneously with Antar Gandhara), the application of all the seventy-two Melakarta-s is observed there.

Even from these thirty-two, Pandit Bhatkhande chose ten chief Thaat-s that acted as parent scales to most Raga-s of Hindustani Music. This system of classification of Raga-s gained immensely popularity despite a few major limitations, and is still widely used. (Bhatkhande, n.d./1951)4

As far as scales are concerned, there are two key differences between a 'Melakarta/Thaat' and a 'Raga'. One is that while a Thaat essentially has only an ascent, a Raga has an ascent as well as descent (Aaroh and Avaroh). Secondly, a scale can be called a Thaat only if it is heptatonic (Sampoorna). A Raga may be pentatonic, hexatonic or heptatonic.

Raga-s are classified into three chief 'Jaati'-s, based on the number of Swara-s used in them:

- Audav (Pentatonic)
- Shadav (Hexatonic)
- Sampoorna (Heptatonic)

This classification is further divided into nine sub-categories to facilitate the difference in number of Swara-s used in the Aaroh and Avaroh:

(i) Audav - Audav (Pentatonic ascent and descent)
(ii) Audav – Shadav (Pentatonic ascent and Hexatonic descent)
(iii) Audav – Sampoorna (Pentatonic ascent and Heptatonic descent)
(iv) Shadav – Audav (Hexatonic ascent and Pentatonic descent)
(v) Shadav – Shadav (Hexatonic ascent and descent)
(vi) Shadav – Sampoorna (Hexatonic ascent and Heptatonic descent)
(vii) Sampoorna – Audav (Heptatonic ascent and Pentatonic descent)
(viii) Sampoorna – Shadav (Heptatonic ascent and Hexatonic descent)
(ix) Sampoorna – Sampoorna (Heptatonic ascent and descent).

In order to determine the total number of scales of Raga-s possible from the seventy-two Melakarta-s, Pandit Bhatkhande checked for the number of scalar combinations possible from a single

Melakarta/Thaat and then multiplied the obtained number by seventy-two. To keep the exercise simple, he chose the Hindustani Shuddh Swar Melakarta, that is the Bilawal Thaat.

Then, Pandit Bhatkhande determined the number of possible scalar combinations in this Thaat, from each sub-category of the Raga-Jaati as follows:

(i) Sampoorna – SampoornaJaati: Only one (01) combination is possible.
(ii) Sampoorna – Shadav: One heptatonic Aaroh will pair with six different scales omitting a Swara each except Shadj. Hence, six (06) combinations are possible.
(iii) Sampoorna – Audav: One heptatonic Aaroh combined with fifteen possible pentatonic descents. This will give fifteen (15) scalar Raga-s.
(iv) Shadav – Sampoorna: Reversing the combinations as seen in the Sampoorna – Shadav type above. Six (06) scales obtained.
(v) Shadav – Shadav: Six different heptatonic ascents combined each with six different descents give thirty-six (36) possible scales.
(vi) Shadav – Audav: Six heptatonic Aaroh, each pairing with fifteen different pentatonic descents gives ninety (90) possible combinations.
(vii) Audav – Sampoorna: The opposite of what is observed in Sampoorna – Audav type. Fifteen (15) scales obtained.
(viii) Audav – Shadav: Ninety (90) combinations obtained from different combinations of pentatonic ascent and hexatonic descent.
(ix) Audav – Audav: Fifteen types of pentatonic ascents combine each with fifteen types of pentatonic descents to give two hundred and twenty-five (225) scales.

Summing up the number of combinations obtained from each of these categories, a total of 484 possibilities are observed from one Thaat. This number, multiplied by seventy-two, gives a total of 34,848 scales from seventy-two Melakarta-s. (Bhatkhande, n.d./1951)5

However, there is a catch to this way of multiplying the number of possible scalar combinations obtained from each Thaat directly by seventy-two.

Each Swara, except the Shadj and Pancham, are observed in two forms. In Hindustani style, they are known by Komal (flat, lower in frequency) and Teevra (sharp, higher in frequency) Swara-s. Let us consider them as variable Swara-s as of now. In this way, we have a total of ten variable Swara-s - the Komal and Teevra variants of Rishabh, Gandhar, Madhyam, Dhaivat, and Nishad.

Let us consider a simple pentatonic scale with Shadj, Shuddh Rishabh, Shuddh Gandhar, Pancham and Shuddh Dhaivat. Thus, we have a set of five fixed or known Swara-s, which can be combined with any two of the remaining four variable Swara-s (Shuddh Madhyam, Teevra Madhyam, Komal Nishad, and Shuddh Nishad) to make a heptatonic scale.

Addition of two more Swara-s from among the four variable notes would make our chosen fixed pentatonic scale into a heptatonic, Sampoorna scale, which is the chief criterion for a Melakarta. Four such combinations are possible:

(i) Combination no. 01:
S R G **m** P D **n**
(ii) Combination no. 02:
S R G **M** P D **n**

(iii) Combination no. 03:
S R G **m** P D **N**

(iv) Combination no. 04:
S R G **M** P D **N**

Swara-s in lower case (m/n) denote Komal (flat) Swara, while the ones in block letters (R, G, M, N, etc.) denote Teevra (sharp) Swara-s. The ones denoted in bold letter indicate the variable Swara-s added to the pre-decided pentatonic scale.

This implies that our chosen pentatonic scale can be obtained from four Melakarta-s/Thaat-s. The first combination is from **Harikambhoji Melakarta**, known as **Khamaj Thaat** in Hindustani music system. The second combination is from the **Vachaspati Melakarta** of Carnatic music. This Thaat is not among the ten major parent Thaat-s of Hindustani Music. The third combination is from the **Dheerasankarabharana Melakarta**, equivalent to the **Bilawal Thaat** of Hindustani Music. The fourth one is from the **Mechakalyani Melakarta,** or the **Kalyan Thaat** of Hindustani Music.

Similarly, the pentatonic scale with Shadj, Shuddh Rishabh, Shuddh Madhyam, Pancham and Shuddh Nishad, with four variable Swara-s (Shuddh and Komal variants of Gandhar and Dhaivat) can be obtained from **Dheerasankarabharana (Bilawal Thaat)**, **Gourimanohari**, **Sarasangi** and **Keeravani** Melakarta-s (Dhandapani and Pattammal, 1991)6 (there are no equivalent Hindustani Thaat-s for the last three Melakarta-s mentioned here, in practice).

As another example, let us consider another pentatonic scale of Shadj, Komal Gandhar, Shuddh Madhyam, Komal Dhaivat and Komal Nishad (S g m d n).

In this scale, even though there are only five Swara-s used, the number of variable Swara-s will reduce since Pancham is an Achal (immovable) Swara and does not have a Teevra or Komal form. Because we have already fixed the forms of all other possible variable Swara-s, the only variable Swara here is the Rishabh.

Thus, this pentatonic scale can be obtained from two Melakarta-s:

(i) **Hanumatodi Melakarta / Bhairavi Thaat:** S**r** g m P d n.

(ii) **Natabhairavi Melakarta / Asawari Thaat**: S**R** g m P d n.

Hexatonic scales that omit one of the five variable Swara-s would be observed in two Melakarta-s (for example, the scale S G m P D N is obtained from **Dheerasankarabharana** and **Sooryakantam** Melakarta-s). However, the ones that omit Pancham from the scale (S R G m D N) would have only one possible parent Melakarta/Thaat. This is because Pancham is a stationary (Achal) Swara and does not have a flat or sharp counterpart.

Results and discussion:

Coming back to the figure of 34,848 possible Raga scales from seventy-two Melakarta-s/Thaat-s, as suggested by Pandit Bhatkhande, it must be noted that this method of calculation does not consider criteria like Vaadi-Samvaadi Swara-s or emotions or phraseology of these scales. This method focuses only on the number of Audav, Shadav and Sampoorna (and their mixes) scales that can be possibly derived from the seventy-two parent scales, termed as 'Melakarta' by Pandit Venkatmakhi or 'Thaat', as coined by Pandit Vishnu Narayan Bhatkhande. While the meaning of the

term itself indicates similitude between the parent

(Melakarta/Thaat) and the derived scales, this resemblance is limited only to the usage of an identical set or subset of Swara-s. In practice, a scale cannot be called a Raga until one considers more factors like Vaadi-Samvaadi (dominant and consonant) Swara-s, its phraseological movements (known by the term 'Chalan') and the association of certain emotions.

In one of the examples mentioned above, the pentatonic scale of S, R, G, P, D is found common to Raga-s Bhoopali and Deskar in Hindustani Music (Mohanam, the Carnatic Raga also uses the same scale). But these scales do not identify as Raga Bhoopali or Deskar until one considers their Vaadi-Samvaadi Swara-s, or more importantly, the combinations of these five Swara-s that characterize them as Bhoopali or Deskar. The scale itself cannot be used to identify its parent melody, since the same combination is available from four different Thaat-s, three of which (Kalyan, Bilawal, and Khamaj) are accepted among the ten major Thaat-s suggested by Pandit Bhatkhande. Of these, the scale that differentiates into Raga Bhoopali is considered to belong to the Kalyan Thaat, and Deskar to Bilawal Thaat. Mohanam of Carnatic Music is classified under the Harikambhoji Melakarta, equivalent to Khamaj Thaat of Hindustani Music.

It is only because of a specific phrase in the parent Raga-s (called 'Janak' Raga-s), which might also be observed in the derived melodies (called 'Janya' Raga-s), that the similitude can be established. The resemblance can also be determined through the Vaadi-Samvaadi Swara-s, if the phraseology does not match out-and-out (like in Bhoopali for Kalyan Thaat and Vrindavani Sarang for Kafi Thaat). This small phraseology that is found common in the parent and the derived Raga-s is called 'Raagang', and the parent melody is known as 'Raagang Raga'. Pandit Narayan Moreshwar Khare suggested thirty-two such 'Ragaang Raga-s', which includes Pandit Bhatkhande's ten Thaat-Raga-s. Thus, the Melakarta or Thaat system considers only the constituent Swara-s, while the Ragaang system considers the phraseology of the Raag. In the Raagang system, more than one Raagang Raga-s can belong to the same Thaat, but differ in phraseology (for example, the Raagang phrases of Poorvi, Shree and Gauri Ang-s, all can be found in the Poorvi Thaat).

This is a major limitation of the Thaat system of the classification of Raga-s in Hindustani Music.

The question that arises thus is, if the method devised by Pandit Bhatkhande focuses on counting the possible number of scales based only on the constituent notes, and if identical scales are possible from more than one parental heptatonic scales, should they be considered as separate scales? As cited in the example above, the scale S, R, G, P, D can be found in four parent Melakarta-s and unless differentiated using the Raagang system or Vaadi-Samvaadi Swara-s, one cannot merely figure out the parent Melakarta. In mathematical terms, while each Melakarta can throw up 484 possible scalar combinations, we cannot simply multiply this number by seventy-two to determine the total number of possible scalar combinations. Without a lack of other factors to differentiate Raga-s, they simply remain scales and therefore, all the identical scales occurring across

different Melakarta-s/Thaat-s must essentially be considered the same. Since they do not possess individual identities of their own, the commonly occurring scales cannot be counted as separate entities. Thus, the total number of scales possible across seventy-two Melakarta-s would reduce considerably, and the figure will come down to something much lower than 34,848 as suggested by Pandit Bhatkhande.

It is difficult to determine if there is any simple, mathematical method that allows the detection of commonly occurring scales across the seventy-two Melakarta-s, which would in turn, facilitate the calculation of total number of pentatonic, hexatonic and heptatonic combinations possible from the twelve musically useful notes. This is primarily because of two reasons. One, the number of combinations is magnanimous. It would require scanning of the entire spectrum of all seventy-two Melakarta-s to check how many scales repeat. Two, there is no uniform pattern as to how many identical clones a particular type of scale has. As is seen in the two examples discussed above, a pentatonic scale may be available in two or four Melakarta-s, based on the number of variable Swara-s. In fact, although not in popular use, a pentatonic scale that uses Shadj, Shuddh Rishabha, Shuddh Gandhara, Shuddh Madhyama and Pancham (nomenclature as per the Carnatic system, which is equivalent to Shadj, Komal Rishabh, Shuddh Rishabh, Shuddh Madhyam, and Pancham of the Hindustani system) can be classified under six Carnatic Melakarta-s (the Indu Chakra Melakarta-s of the Katapayadi Melakarta numbering system, namely Kanakangi, Ratnangi, Ganamurthi, Vanaspathi, Manavathi and Tanarupi) (Dhandapani and Pattammal, 1991)7. Due to this dissimilarity in the number of clones among scales with the same number of notes, devising a mathematical system does not seem possible. Thus, the exercise to eliminate all identical entries would become a mammoth task. However, the number of possible combinations may reduce by a few thousands.

On the contrary, this also opens up new vistas for creation of new Raga-s by changing the Vaadi-Samvaadi notes or the phraseology of a Janya Raga-scale in accordance with that of the Janak Raga. For instance, Raga-s Bhoopali and Deskar (and even Jait Kalyan and Audav Devgiri) have the same set of Swara-s used S, R, G, P, D. Phrasing these notes in accordance with the Kalyan or Bilawal Ang makes them markedly distinct from each other. Now, if the same set of notes can be thought of on the lines of Khamaj Ang, a new Raga can come into existence. In fact, Mohanam is classified under Harikambhoji Melakarta in Carnatic Music because of the subtle touch of Kaisiki Nishad in the Gamaka while singing the Chatusruthi Dhaivata (and therefore technically, Mohanam should not be considered the Carnatic equivalent of Bhoopali).

Also, it must be noted that Pandit Bhatkhande formulated this mathematical method only for the ease of calculating the total number of Audav, Shadav and Sampoorna scales that can be obtained from the seventy-two Melakarta-s. It is rather difficult to assume if the point concerning multiple clones of a scale skipped his mind or whether he purposefully overlooked this aspect owing to its limited practical application.

Even if the individual identity of similar scales obtained from different Melakarta-s is overlooked and their multiplicity consolidated, the number of scales obtained still amounts to a few thousands. However, neither of the two streams utilises so many Raga-s in practice. Hindustani Music, in particular, has not more than about two to three hundred Raga-s in circulation. Moreover, a large portion of Raga-s in Hindustani Music are identified through their phraseology (Chalan) rather than mere swapping of notes of a scale. The differences in phraseology provide the scope for having multiple Raga-s within the same set of notes. For example, Raga-s Kedar, Hameer, Kamod, Gaud Sarang, and Chhayanat have the same set of Swara-s and all belong to the Kalyan Thaat. However, the differences in the note-combinations make them distinct from one another. This also lends each of them a unique personality, thereby providing discreet differences in their scope of elaboration, time of the day when they are sung, types of compositions that are suitable for that particular Raga, etc. Bhimpalasi and Kafi have the same set of notes, and yet due to the difference in the phraseology, Bhimpalasi is suitable for elaborate Dhrupad-Dhamar or Khayal renditions and is sung in the afternoon, while Kafi is considered apt for genres like Thumri, Tappa and other lighter forms and is sung at night, usually as a shorter piece.

References:

1. Rao, S. (2015, June 12), Music of India – a brief outline – Part Nineteen – 14. Venkatmakhin – Chatur-dandi-prakashika – Mela and Melakarta. Sreenivasarao's blogs. https://sreenivasaraos.com/tag/chatur-dandi-prakashika/
2. Narayanaswami, P.P. (n.d.). Musicological Literature of India – Part III. Srishti's Carnatica – Feature Articles. http://carnatica.net/special/features.htm
3. Bhatkhande, V.N. (n.d.) *Hindustani Sangeet Paddhati: Part 1* (V.Bhatt and S.Dubey, Trans.). Hathras, Uttar Pradesh: Sangeet Karyalay. (n.d.). pg. 21.
4. Bhatkhande, V.N. (n.d.) *Hindustani Sangeet Paddhati: Part 1* (V.Bhatt and S.Dubey, Trans.). Hathras, Uttar Pradesh: Sangeet Karyalay. (n.d.). pg. 17.
5. Bhatkhande, V.N. (n.d.) *Hindustani Sangeet Paddhati: Part 1* (V.Bhatt and S.Dubey, Trans.). Hathras, Uttar Pradesh: Sangeet Karyalay. (n.d.). pg. 18-19-20.
6. Dhandapani, M.N. and Pattammal, D. (1991), *Raga Pravaham – Index to Carnatic Ragas*, Madras, Tamil Nadu: The Karnatic Music Book Centre, pg.54.
7. Dhandapani, M.N. and Pattammal, D. (1991), *Raga Pravaham – Index to Carnatic Ragas*, Madras, Tamil Nadu: The Karnatic Music Book Centre, pg.55-64.

Bharatanatyam Conventions V/S Liberty to Think out of Box

Minal S. Merai
Dr.Ami Pandya**

Abstract

In present time Bharatanatyam form being a classic and cultural ambassador, demands diverse dimensions to suit the interest of multi ethnic and multi racial audiences of the globe. There is a huge scope and immense space to explore the creative side of Bharatanatyam. But most of the times the strict measures observed in the training period of classical dance forms does not allow the practitioner to cultivate the impulse of creativity. This article aims to bring awareness among the Bharatanatyam dancers and teachers to restructure the training method by using the attitude to appreciate, give liberty and promote new ideas and encourage the application of the Bharatanatyam technique for more relevant and contemporary themes maintaining the aesthetic standards. Besides the fact of taking utmost care to be within the frame of classical, the dancer should be given freedom to think out of box without the fear of negative criticism or failure of an idea.

Key Words

Out of box, global platform, restructuring, liberty to think, creative urge, suit the changing time

Material and Methodology

The research scholar has referred relevant books, watched interviews and documentaries of eminent dancers and choreographers on YouTube, searched and read articles, papers, and reviews online, and discussed with Ph.D guide Dr. Ami Pandya.

Study Area

The research article is in area of Classical Indian Dance style Bharatanatyam. The article meant to explore the creative area in Bharatanatyam and the limitations or conservations of the tradition and practitioners. The new world, changing norms, present generation, creative urge and scope to fit the Bharatanatyam tradition in the contemporary time, are the principle concerns addressed in this article.

Article

As we see the history of Bharatanatyam and it's present form, it is been observed that the more strictly measures used for the dancers compelling them to follow the traditional way of thinking, learning and executing, more liberty has been

**Department of Dance, Faculty of Performing Arts, The Maharaja Sayajirao University of Baroda

taken to explore and modify. And it has given rise to more prominent and solid structure of Bharatanatyam. It is natural tendency of a human to break the limits and expand beyond. As the intelligence grew, the civilization grew, the culture grew and the traditions grew in leaps and bounds. The human always seeks for the betterment in all the areas. The arts have been an indispensible part of Indian civilization from the very ancient times. The path had already been laid down by our Gurus, Rishi Munis or scholarly people and common men were meant to follow them. It was followed with lot of faith and sincerity as it was considered the best way of doing the things. The changes took place whenever the set rules or disciplines were questioned. The changes happened when the established system did not suit the changing times, conditions and cultures. The reformation of Sadir was also a result of evolution in the society set up. The need for survival played a key role in reframing, re organising and representing Dasiattam as Bharatanatyam.

Accomplished in carnatic music and dance, the Tanjore Quartet brothers made huge effort to take Bharatanatyam to next level by introducing Margam. The Margam gave uniformed structure to Bharatanatyam Kacheri. Later on, the set of Adavus were introduced as an initial part of training by Smt. Rukminidevi Arudale. She was the first one to institutionalise the training of music and dance. Today Kalakshetra is considered very rigid in its conducts. But Rukmini Devi was the first Brahmin girl to go against the society beliefs and performed Bharatanatyam on stage in front of the audience. She recognised the beauty and the serenity of the Sadir and felt urgent need of rescue while Dasipratha was coming to end. Her traditional training under Guru Meenakshi Sundaram Pillai did not stop her to be innovative. Instead it gave her strong base on which she could later create a beautiful picture of Bharatanatyam. Rukminidevi is credited to have brought all our Puranas alive on stage by producing several dance dramas like Kumara Sambhavam, Geet Govind, Kurmavatara, Sita Swayamvaram, Mahapattabhisheka, Kutral Kurvanji and many more.

The typical Bharatanatyam training demands austere imitation of the technique. In all the well established and popular schools, a student is taught a traditional Margam and expected to do exactly the same way that he/she is been taught. There are hardly any schools which provides forum to help improve the creative or choreographic skills of a student. In Bharatanatyam, many years are invested in training a student in different aspects. The technique is taught accurately, and abhinaya is taught with minute details. The knowledge of shashtra is given to understand the gesture vocabulary, rasa prakarana and character portraying. The great attention is paid in achieving perfect araimandi and natyarambham, holding a posture and hasta mudras neatly, keeping in taalam, etc. It is all together a very challenging journey to achieve so called “perfection”. But in the process a dancer almost looses his/her inner voice. The outcome of the scrupulous attention paid during the training period of a Bharatanatyam student, actually puts on blinkers on their eyes, not letting them realise the wider picture. The rigid and conservative attitude on the name of tradition at times make the dancers narrow minded. They

are trained to see, think and do in a certain monotonous way. Even if a learner is willing to develop the choreographic skills, it is always difficult to get the approval from the Gurus who are in most cases dyed in the wool Gurus. The student always has a fear of negative criticism. Sometimes the choreographers or dance Gurus don't encourage or allow the students to delve into choreography in order to keep up their supremacy. Although the creativity is not a domain of every dance practitioner, the fact can't be denied that there are certainly many talented dancers who can excel in the creative field.

There are handful of schools which offers courses or subject of choreography based on classical dance techniques. Uday Shankar established "Udayan Kala Kendra "in 1923 in Almora, the first dance school in India, providing training in creative area and choreography. The students were given platform to showcase their own ideas and choreography. Uday Shankar opened up a gateway to Indian modern and contemporary Indian dance field.

Uday Shankar caught the attention of the world through his innovative choreographic work. He incorporated various elements of different Indian classical and folk dance styles for his choreographic works. He choreographed pieces which could appeal the world audience. He was not a trained dancer but he contributed immensely to popularise Indian Dance outside India. He chose the themes representing the social issues like Rhythm of life, Snake Charmer, Lady and the thief, Labour and Machinery etc. His daughter Mamta Shankar carried forward his legacy.

Traditions are like a flowing river and not like a stagnant water. It always makes a way from mountains, plains and bushes. The advantage of fresh waters is enjoyed by everyone. Therefore the efforts to intelligently and aesthetically create something different from the same age old repetitive presentations should be given chance. In the words of Ram Gopal [1]"the temple theatre and the ancient dance in India were created for another rhythm of another age, long since dead. Don't you think we should step forward and create something that is understandable in terms of today. "This is a very valid question which should be seriously thought upon. T. Balasaraswati notes that the tradition allows a dancer [2] (to) soar to the very skies of freedom...It is freedom through discipline, not freedom from discipline."

Another revolutionary dancer was Chandralekha. Her work was focused on geometry of body, space and time, struggles of women and power of women, and sensual and erotic components of body. She was not interested in producing same age old mythological and religious themes. She believed that the energy generated by body while dancing can be transferred to the spectators. Dancing for her was more of understanding inner self than touching the outer surface. She did not believe in 'Guru..ship'. She preferred to be connected with students, co-dancers or other people as a friend rather than a Guru. She would always welcome different opinions, criticism and positive arguments over the subject. Her creativity urged from deep contemplation of many years which brought greater coherence in her work. She thought of the body moves even before the time of Natyashastra when the martial forms were

in vogue, attack and defence techniques were taught and the method of using weapons was being practiced. In her dance dramas she majorly used Kalaripayatu martial art form along with Bharatanatyam. She introduced a new modern era in Indian Dance scene.

There are two types of pursuits, an artist works with- some wants to attain internal bliss and others woo the peripheral and instant gain. In most cases, many reputed choreographers of Bharatanatyam who have explored in creative area, has done so by following their own intuitions and self made techniques for choreographing. They have not attended any school or course for choreography. In fact how many schools or institutions offer the course to develop choreographic and creative skills. There are hardly few. There is a need for more such schools where proper understanding is provided in creative area.

Prof.Dr. M. Nagbhushan Sharma questions in his article [3] "Those creative artists, who would fall back upon our cultural treasure for their artistic purposes, should have an in-depth knowledge of the varied manifestations of it at different levels. Do we have such a component in our curriculum now?" He also raises his concern about lack of education provided in schools or colleges about our glorious culture. In olden times the cultural values were passed on from grandparents to grandchildren but now a days in nuclear families that is missing. He further caveats the risk of losing merits of our rich traditions due to over exposure of Bollywood on social media. Padma Vibhushan Sonal Mansingh in one of her interviews in Sansad TV program 'SHAKHSIYAT', advocates of adding education of classical dance styles in the schools as a part of curriculum.

Freedom of thought derives only from the freedom of self, and freedom of self depends on the philosophy of the society in which dancer is groomed, as the social beliefs and conventions affects the thought process of a dancer who is a part of the society. The core idea of presenting a new work is not only showcasing excellence in the set technique but also voicing out the social, economical and political issues through the art form. Apart from the entertainment, the role of an artist in the society is to put forward the mind of the present society for the welfare of people. So the dancer needs to be cognizant of the situations around, in order to make his/her presentation most relevant and creative. The creative process in Bharatanatyam involves not only the rigorous training in dance but it is also built upon the upbringing, the surrounding situations, the cultural and social customs, the knowledge of relative art forms and the individual responses to each of these constituents. On the other hand the dancer should not be abide by the conservative norms.

The stalwart Bharatanatyam dancer, choreographer, activist, and author, 'Mrinalini Sarabhai' brought awakening of the social issues like dowry violence, rape, discrimination of cast, maltreatment to adivasis and so on through her groundbreaking choreographic works. She was not happy performing same learnt pieces for which she could not find relevance. She decided to make use of Bharatanatyam idiom adding some meaningful and interesting changes for presenting the social issues more effectively in front of the audiences. She inspired younger generation to think in different manner. She was a feminist too and helped women realise their strength

to break the barrier of life ruining orthodox customs which sometimes even resulted in suicide. She gave a strong message to society to stop injustice and ill treatment to women. She was trained in Bharatanatyam, Kathhakali and Mohiniattam at Shanti Niketan under the guidance of Shri Ravindranath Tagore. Her works clearly exhibit the influence of Tagore and Gandhi. She contributed a lot in the preservation of environment. Mrinalini 'Amma' as she was fondly known, used her creativity extortionately to bring awareness in the society. It is an astounding fact that she choreographed more than three hundred dance dramas. From her dance career it is most evident to know how responsibly an artist can create the work which can leave everlasting impact on the society. There are two advantages of the new creation, one is the growth of an art form and another is the positive growth of a society.

There is no intelligence in taking proud of being hidebound as it puts full stop to the expansion. After getting trained under the great Gurus like Shri Meenakshi Sundaram Pillai in Bharatanatyam and Shri Kunchu Kurup in Kathakali, Mrinalini Sarabhai ventured in the world of creativity and choreography instead of biding herself with the rigid conventions. Although the kernel of her artistic work remained rooted in Indian traditions may it be classical or folk or theatre, she also made use of some of the western dance techniques, theatre and music.

Bharatanatyam crossed the boundaries of India long back and with the efforts of many internationally acclaimed dancers like Uday Shankar, T. Balasaraswati, Rukminidevi Arundale, Mrinalini Sarabhai, Chandralekha, Sonal Mansingh, Yamini Krishnamurthy, Sudharani Raghupathy, Padma Subramaniam, Vaijayantimala, Hema Malini, Leela Samson, V.P. Dhananjayan and Shantha Dhanajayan, Kalanidhi Narayan, C.V. Chandrashekhar, Alarmel Valli, etc., it become popular worldwide. While rapidly gaining popularity on the global platform, the need of redesigning the content was felt by choreographers to appeal the international audience. Due to international reach of Bharatanatyam, and to suit the multi ethnic audiences, Bharatanatyam is thought over again and again for more creative thematic productions or dance dramas or solos. A Toronto based choreographer Hari Krishnan's say on the definition of creativity is interesting to know [4] "I am always interested in infusing Bharatanatyam with a new life, creative energy that retains the aesthetic integrity of the form and allows it to speak to a new contemporary audience."Divya Devguptau rightly says [5] "Contemporising one's practice need not necessarily mean choosing contemporary themes, of abuse, drugs, or war. Contemporising can be in approach, training or presentation, but most importantly, in thought."

Talking about 'thinking out of box', one has to have thorough understanding and clarity of thoughts. The process of creativity begins with the stringent training in the particular dance style. There is no short cut. While pursuing the training, it is important for a learner to make an effort to understand the context and how it can be applicable. For an instance in Bharatanatyam a student is taught *Hasta Mudras,* but he/she needs to be curious about how it can be applied for different state of affairs, as the

gestures form the language for Bharatanatyam. And therefore any song, any lyrics can be interpreted through the language of hand gestures along with the body movements. But the interpretation of every individual varies and that's why the variety can be seen. Similarly there are numerous permutations and combinations possible in Tala patterns. Apart from the syllabus items, to observe how the Tala system is used for the other choreographies, is also an important learning to expand the knowledge. 'Thinking out of box' leads to the creative move based on the fundamental knowledge one acquires over the period of time. It also derives from the experience. Any new idea, new work noticeably gets evaluated by the connoisseurs. The choreographers bears in their mind the probability of receiving good or bad review. In some cases the pressure of negative criticism gets over the artistic intuition or vision and in some cases it inspires the choreographers to do their best.

Bharatanatyam, an age old classical art form has remained in the frame of traditions and conventions. The tradition has been passed on from Guru to shishya. The Gurus take authority and keeps a watchful eye as the guardian angles to safeguard the tradition. Sometimes these great Gurus of Bharatanatyam who consider themselves the saviours and torch barriers of the tradition, suffers *The Decline Bias.* Some of them think that innovative ideas and works may deviate the long survived tradition and result in wane. But the traditions are like a flowing river and not like a stagnant water. The river always makes a way through mountains, plains and bushes. The advantage of fresh waters is enjoyed by everyone. Therefore the efforts to intelligently and aesthetically create something relevant other than the same age old repetitive presentations should be given chance. In the words of Ram Gopal[6] "the temple theatre and the ancient dance in India were created for another rhythm of another age, long since dead. Don't you think we should step forward and create something that is understandable in terms of today." This is a very valid question which should be seriously thought upon. The young Odissi dancer Arushi Mudgal says [7] "One must first reach a certain level of competence in the chosen art form before trying to create/choreograph new work." She believes that there is immense scope of innovation within the tradition. But one should always be open to new ideas. Geeta Chandran in her article SEVENTY YEARS OF BHARATANATYAM says [8]"Serious dancers are attempting to break the structural routines that held so well for the past half century, to evolve new perspectives that reflect their individualized creativity. Given proper stewardship, Bharatanatyam can grow even more to become a truly innovative art form beyond being a mere footnote to the grandeur of Indian culture."

In the edge of technology, where ample material is easily available on the fingertip, one has tremendous scope and opportunity to explore in any area or any subject. The digitalisation has raised the bars of cultural exchange, global awareness, and easy approach. Bharatanatyam is a very versatile form to be able to survive among any diverse situation. Especially during the Covid pandemic, it's spread on the digital platform has been remarkable. We see many attempts by young individual Bharatanatyam dancers to present their

creative idea and choreography on the digital platform. Which is a sign of creative urge among the dancers who are willing to push the boundaries and execute something different through the medium of Bharatanatyam. However, it is a difficult to say whether they pass the test of qualitative work. If a practitioner is provided with open space to think differently and create aesthetically, dancer's capacity can be stretched to the next level. The world is moving ahead rapidly and all of us have come closer through the electronic gazettes and the travel facilities. Things can be made available in any part of the world so as Bharatanatyam has also reached many corners of the planet. Padmashree achiever Ramli Ibrahim, a Malaysian origin Bharatanatyam, Odissi and contemporary dancer, choreographer and teacher, perceives the aesthetic expression of Indian classical dances as a universal experience. Ramli pursues Indian classical dance in modern context. He says [9] "one has to know the rules before breaking them." One has to be grounded in a particular dance technique for working on innovative ideas.

Bharatanatyam has received global recognition. It has been explored globally in contemporary context by many well known choreographers. Most of them have kept their roots intact in Bharatanatyam tradition. The depth and complexity of the form gives immense scope to [10]"innovations within the tradition or the extensions of the tradition"_ notes a notable dance commentator Sunil Kothari.

Summary

The article opens up the discussion of Bharatanatyam conventions v/s Liberty to think out of box. The early twentieth century marked the major revolution of Dasiattam. The tradition took a new shape to regain the respectable place in the society. The hereditary dancers (devdasis) also had to get adjusted to the changes for the sake of survival. Therefore if we talk about the tradition which we follow today is not older than hundred years. Which clearly denotes that the innovations took place in the medieval form of Bharatanatyam. And medieval form was the result of innovation in the primeval form. . As the form has acquired global acclimation, worldwide many dancers have attempted to make use of Bharatanatyam style for more relevant purposes as per their geographic, social, political and economical conditions. To be rigid, ceases the opportunity of an advancement. There is a thin line between strict disciplinarian, (which is very much required during the training of Bharatanatyam) and being authoritarian. Master has to be firm but fair. The training should be structured in a way that it provides student with an extensive knowledge and liberty to think and create distinctly. But it is fundamental requirement for any choreographer to have competitive knowledge of dance technique before plunging into choreography. More courses can be introduced to promote creativity within the frame of Bharatanatyam. Not ignoring the fact that creativity comes from within, the training can certainly enhance the capacity of a dancer of being creative. Today Bharatanatyam is emphatically received by multi racial and multi ethnic communities of the world. It has gained exceptional popularity all over the world. The very reason of the same lies in the untiring efforts put in by Bharatanatyam

dancers, choreographers and practitioners to present the form in a most appealing way.

References

1. *Bharatanatyam Evolves From Temple to Theatre and back again* by ANNE-MARIE GASTON Published by Manohar Publishher and Distributors
2. *CONTEMPORARY INDIAN DANCE* New Creative Choreography in India and the Diaspora by Ketu H.Katrak, STUDIES IN INTERNATIONAL PERFORMANCE Series Editors: Janelle Reinelt and Brian Singleton, University of California, Irvine, USA. Published by PALGRAVE MACMILLAN (Page No. xix)
3. *INDIA A CULTURAL PERSPECTIVE* Edited by S, Varadan L.A.S (Retd.) Papers presented at the National Seminar On 'Culture – the Undercurrent' 3rd to 5th November 1995, New Delhi Published by Kalaikoodam (Komala Varadan Institute of Art) 888/890-V, Nai Sarak, Delhi-110006[11] *INDIA A CULTURAL PERSPECTIVE* (Page no. 118)
4. Ashish Mohan Khokar's *attendance* THE DANCE ANNUAL OF INDIA 2012-13 (Page no. 63) Have faith in tradition, be open to new ideas_ An article by Arushi Mudgal
5. Bharatanatyam today and beyond Divya Devaguptapu http://www.divyadevaguptapu.com/bharatanatyam-today-and-beyond/
6. Hari Krishnan: Dancing Out of Box https://timesofindia.indiatimes.com/city/chennai/hari-krishnan-dancing-outside-the-box/articleshow/11290378.cms
7. *Seventy years of Bharatanatyam*_ an article by Geeta Chandran https://narthaki.com/info/articles/article78.html
8. https://www.sutrafoundation.org.my/article-of-datuk-ramli-ibrahim-in-pune-mirror-local-news-paper-of-pune/
9. https://www.culturalindia.net/indian-dance/dancers/uday-shankar.htm
10. Chandralekha's experiments with the dancing body by Arayani https://www.thehindu.com/entertainment/dance/chandralekhas-experiments-with-the-dancing-body/article33299839.
11. 'For Chandralekha, the body was erotic, sensuous'_ by Shobha Warrier https://www.rediff.com/news/2007/jan/03inter.htm
12. Shakhsiyat with Sonal Mansingh - Sansad TV https://youtu.be/LlSXNcI0Qvo
13. Episode 1 of Cultural Talkies featuring Dr. Sonal Mansingh. Pride of India https://youtu.be/UqdySo-R4H0
14. Guftagoo with Mallika Sarabhai https://youtu.be/UqdySo-R4H0
15. Mrinalini Sarabhai : The Artist and Her Art https://youtu.be/PlRua7fPzp4
16. A short film on Mrinalini Sarabhai in Gujarati https://youtu.be/Fd72BkHbmeQ
17. https://www.thefamouspeople.com/profiles/mrinalini-sarabhai-5493.php
18. https://www.thebetterindia.com/141008/mrinalini-sarabhai-centenary-google-doodle/
19. Tribute to Mrinalini Sarabhai https://youtu.be/EHfae_TFdUw
20. Dancer, activist, author, pioneer: The legacy of Mrinalini Sarabhai https://www.hindustantimes.com/art-and-culture/dancer-activist-author-pioneer-the-legacy-of-mrinalini-sarabhai/story-m0ZyMr10Jx7fY5hFp2rhDO.html
21. CREATIVITY IN BHARATANATYAM (PERA) BY Vidya-Mitra Paper 6, Module 18, Content writer: Shri Ashish Khokar https://epgp.inflibnet.ac.in/epgpdata/uploads/epgp_content/S000451PA/P001553/M018145/ET/1481025036P6M18TEXT.pdf
22. Project of reform: Indian Classical Dance and Frictions of Generations and Genre by Sitara Thobani (Published 2018-02-28) MUSICULTURES – Journal of the Canadian society for traditional music Vol.44 no.1 https://journals.lib.unb.ca/index.php/MC/article/view/26083
23. Decoding the Modern Practice of Bharatanatyam by Aparna Keshaviah Published online by Cambridge University Press: 04 Jan 2013 https://www.cambridge.org/core/journals/congress-on-research-in-dance/article/abs/decoding-the-modern-practice-of-bharatanatyam/8DDB528CCEA655C41F3E4501AE93B659
24. Innovations in Contemporary India Dance : from Religious and Mythological Roots in Classical Bharatanatyam by Ketu H. Katrak (Published : 04 February 2013) http://newsletter.blogs.wesleyan.edu/files/2013/02/Ketu-Katrak-2013.pdf

25. Emerging Contemporary Bharatanatyam Choreoscope in Britain: the City, Hibridity, and Technoculture by Banerjee, Suparna (Doctoral thesis University of Roehampton, London) https://pure.roehampton.ac.uk/ws/portalfiles/portal/426451/Banerjee_Suparna_thesis.pdf
26. From Ekaharya Lasyanga to Bharatanatyam how form has evolved over the centuries by Rupa Srikanth https://www.thehindu.com/entertainment/dance/evolution-of-bharatanatyam/article32034579.ece
27. Sublime Creativity by Ambili Ramnath https://www.thehindu.com/features/friday-review/dance/sublime-creativity/article2737947.ece
28. Rethinking local Indian Dance through Local eyes by Shanti Pillai jstor https://www.jstor.org/stable/1478457
29. Natya Institute's course in choreography by V. V. Ramani https://www.thehindu.com/entertainment/dance/natya-institutes-course-in-choreography/article36118694.ece
30. Bharatanatyam in the new India by Anjana Rajan https://www.thehindu.com/entertainment/dance/bharatanatyam-in-the-new-india/article30817598.ece
31. Indian global dance now a global heritage by Madushree Chatterjee, IANS http://twocircles.net/2010aug07/indian_classical_dance_now_global_heritage.html
32. Interview # 81 – Anita Ratnam by Nithya Nagarajan https://wnww.liminalmag.com/interviews/anita-ratnam

(Footnotes)

[1] Bharatanatyam Evolves From Temple to Theatre and back again by ANNE-MARIE GASTON Published by Manohar Publishers and Distributors (Page no. 63)

[2] Contemporary Indian Dance New Creative Choreography in India and the Diaspora by Ketu H. Katrak, University of California, Irvine, USA. Published by PALGRAVE MACMILLAN (Page No. xix)

[3] INDIA A CULTURAL PERSPECTIVE Edited by S, Varadan L.A.S (Retd.) Papers presented at the National Seminar On 'Culture – the Undercurrent' 3rd to 5th November 1995, New Delhi Published by Kalaikoodam (Komala Varadan Institute of Art) 888/890-V, Nai Sarak, Delhi-110006

[3] INDIA A CULTURAL PERSPECTIVE Edited by S, Varadan L.A.S (Retd.) Papers presented at the National Seminar On 'Culture – the Undercurrent' 3rd to 5th November 1995, New Delhi Published by Kalaikoodam (Komala Varadan Institute of Art) 888/890-V, Nai Sarak, Delhi-110006] (Page no. 118)

[4] http://www.divyadevaguptapu.com/bharatanatyam-today-and-beyond/ Bharatanatyam today and beyond Divya Devaguptapu

[5] Hari Krishnan: Dancing Out of Box https://timesofindia.indiatimes.com/city/chennai/hari-krishnan-dancing-outside-the-box/articleshow/11290378.cms

[6] Bharatanatyam evolves from temple to theatre and back again by ANNIE-MARIE GASTON Published by Manohar Publishers and Distributors, (Page no. 63)

[7] Ashish Mohan Khokar's attendance THE DANCE ANNUAL OF INDIA 2012-13 Classical Dance and Modern Times, Guest Editors S.D. Desai Have faith in tradition, be open to new ideas_ An article by Arushi Mudgal (Page no. 63)

[8] Seventy years of Bharatanatyam_ an article by Geeta Chandran https://narthaki.com/info/articles/article78.html

[9] https://www.sutrafoundation.org.my/article-of-datuk-ramli-ibrahim-in-pune-mirror-local-news-paper-of-pune/

[10] CONTEMPORARY INDIAN DANCE, New Creative Choreography in India and the Diaspora by Ketu H. Katrak, STUDIES IN INTERNATIONAL PERFORMANCE Series Editors: Janelle Reinelt and Brian Singleton, Published by Palm Grave, Customer Services Department, Macmillan Distribution Ltd, Houndmills, Basinggstoke, Hampsshire RGG21 6XS, England (page no.10 introduction)

Tabla: Philosophical and Mathematical investigations

Shalini Saxena[+], Hariom Hari[#] and MS Godbole[*]

ABSTRACT:

The work done by scholars like Sudhir Kumar Saxena, Arvind Mulgaonkar, Suresh Talwalkar and Sudhir Mainkar was studied in order to add new insights to the art of Tabla in the light of Physics and Mathematics. The schematics diagram representation of taal aavartan was studied to find sukshm and ati-sukshm quantum aspects. The thought experiment and philosophy of sadhana, intuition, concentration, consciousness and trance state was researched. The optimum combination to develop the art of Tabla was found to be an addition of atman control and inner mathematics and inner physics and the emotions and the aesthetics.

Keywords:

Tabla, Quantum, Sukshm, Physics, Shruti, Bandish, Layakari, Atman

Introduction:

The Indian art of Tabla as a percussion instrument in form of solo playing and as an accompaniment has been enjoyed by the whole world for as close to as 300 years. It is very unlikely that during the olden days the teachers the gurus the pundits did document their innovations and improvisations and inventions of Bandish in this art due to the focus more on mouth-to-mouth teachings and more into performance and less into documentation. And as decades passed it is now very difficult to re-engineer and re-construct the methodology of how did the great teachers get into inventions of different parts of the art of Table playing. Many scholars and teachers have thought on these ideas and most of the research till now has ended in the conclusion that there is some intuition in the form of higher concentration levels and higher conscious levels reached by practice for years and years [1, 2, 3, 4, 5] and this 'tapascharya' gets the player into a trance state and by this process and by the minute thinking's regarding aesthetics and emotions can the experienced teacher invent or innovate new ideas in playing the Tabla. Agreeing with these defenses and researches, we have gone further ahead in trying to understand the physics and mathematics of how the human mind and brain thinks when a person does reach these 'spiritual levels'. We have investigated the role of the human soul that is 'the atman' and the role of physics

[+] Kendriya Vidyalaya, Bilaspur.

[#] Percussion Department, Indira Kala Sangeet Vishwavidyalaya, Khairagarh.

[*] Independent Researcher in Semiconductor Physics and Quantum Physics. (INDIA January 2022)

and mathematics behind all these mysteries. For this purpose we have used three thought experiments and also an example of layakari of Tabla. We have also put forward the theory of Newtonian Mathematics in order to explain the quantum sukshm and ati-sukshm levels.

Thought Experiment on Meditation 'Japa':

If a person is driving a car and going from place 'a' to place 'b' and if there comes nobody between his car or if he never has to horn or go left or right, then his whole travel is in a state of sleep. Only when there is change in direction or change in motion or change in brain system, is the human being alive. Same is true with a yogi in japa or naamsmaran. If his japa is for a sentence 'shree ram jai ram jai jai ram', for 1000 times, then if his brain is not active till the end then he will fall asleep after he reaches maybe 80 times his said japa. He would finish his 1000 times japa but that would be in a state of sleep as if he is not active every second then his brain will lose the meaning of the word 'ram' and hence will lose connectivity to god and hence all his effort and purpose is completely defeated. But what happens when a Rishi Muni is in a state of 20 years of meditation sadhana tapascharya? It seems it is not his brain which is in control after maybe say 2 years but maybe his atman is in control. This is the key to spirituality [7]. After some time the brain should shut-off so does the blood circulation and inhale exhale and body should go in 'stand by' zero energy mode and the atman should control everything. This can be achieved only by the rishis saints yogi and not by common people.

Thought Experiment on Seesaw:

Consider a seesaw which has got a pivot at centre which is stationary. Both the ends can move. The Human Control system is in form of a seesaw where the mind wants to move from one end of the seesaw to the other end. Now let this seesaw be placed on a river where the two ends of seesaw are resting on bank of the river. If a person wants to cross the river from one side to another then he steps on one side of the seesaw and starts walking towards the other side of the seesaw and ultimately crosses the river. In this walk of the person the seesaw is moving up and down. Now to increase complexity let us imagine the seesaw in form of a rotation motion. The axis of rotation is at the centre of the seesaw. If this process of complexity is continued further then the whole system reaches a point where it is a 'Model' of the Human Control System. Here the person crossing the see-saw is going in straight line always, but the seesaw is in rotation motion about many axes. The person is the analogy of the 'Atman' and the see-saw is analogy of the Human Control System. This overall thought experiment is an analogy that 'the Atman' and Human Control System 'the Brain' are different and not the same [6].

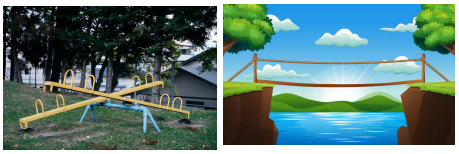

Fig. 1. A seesaw on land and a seesaw on a river crossing.

Thought experiment on Einstein's Relativity and how to live for 1000 years:

A Yogi who can breathe only once in 2 months and who has put bhasm on his skin to control body blood circulation flow and temperature and who has control

of mastery on holding concentration levels for more than 1 year can change the time scale and space scale and consciousness level scales. The time of 1000 years and the space of ati-sukshm micron levels for us common men is just a time of 2 days and a sthula space for the Yogi. This is from Einstein's Relativity [8]. By adding help from Vedic Yajna and Mantras the Yogi can get to more miracles and mysteries in Spirituality.

Results and Discussion:

The sukshm states mentioned by researchers in the art of Tabla are in the form of micro-notes 'shrutis' and the art forms from the Carnatic Music system in India. We have used the rules of Quantum Physics to relate to the art of Tabla and proposed an idea of ways to invent ahead of sukshm forms and go beyond towards ati-sukshm and even ati-ati-sukshm. These are going deeper in quantum form of physics. Our analogy to the already existing sukshm part of Tabla is that if a single bird is flying in a circular path or if a group of birds is flying in a circular path, then the activity of the whole group is the 'sthula' or bulk part and the activity of a single bird the whole group is the sukshm quantum part. As shown in figure below 'p' is a single pigeon flying and a group of pigeons 'p' flying together.

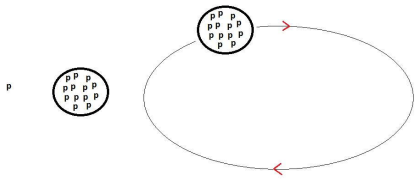

Fig. 2. Schematic of a single pigeon 'p' flying and a group of pigeons flying on a circular path.

This above schematic is the visual explanation of the sukshmta in Tabla. But as shown in figure below there is also many levels below the sukshm level. These quantum levels are the ati-sukshm and ati-ati sukshm levels and if we go on there are also even deeper sukshm levels in form of ati-ati-ati sukshm levels and this process goes on. Given in below figure 3 is the layakari steps in a tritaal of Tabla. This is the 'dugun', the 'tigun', the 'chaugun' etc as in figure 3 below.

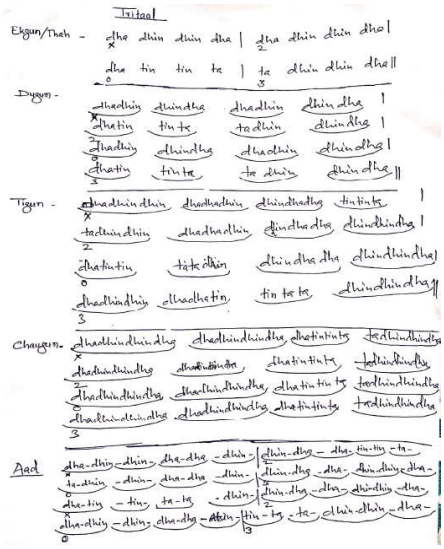

Fig. 3. Tritaal ekgun-dugun-tigun-chaugun-aad.

The pace or laya goes from step 'a' to step 'b' to step 'c' and it goes on as in figure 4. But on quantum levels we want to place a straight line on the step as shown in the figure such that we get any infinite number of levels. These are ratios which if we go in sukshm level are 2/4 or 4/4 or 5/4 or even to 17/16. But there are ati-sukshm and ati-ati-sukshm levels which can go even deeper to a ratio of 1004/1000. But because such deeper quantum states are not aesthetically pleasing or emotionally pleasing they are discarded by the performer. This is similar to using only a certain 'swara' from a

vast ocean formed by many combinations of swara among the 12 swara and in between shruti microtones.

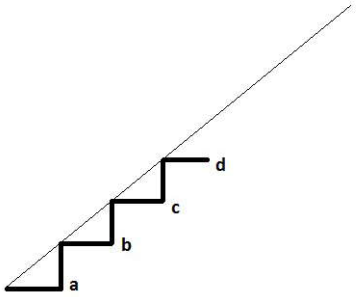

Fig. 4. Schematic of layakari steps and our proposed straight line ati-ati-sukshm layakari.

The quantum modes in Tabla or even vocal raga can be analogously explained by the Newtonian Physics and Mathematics laws of speed-distance-acceleration-jerk-snap-crackle-pop. These are levels of quantum sukshm going from speed-acceleration to jerk to snap to crackle to pop and that is similar to going from sthula to sukshm to ati-sukshm to ati-ati-sukshm to ati-ati-ati-sukshm and the process goes on. Below in figure 5 we have show this in curve form where each different colour curve is for speed or acceleration or jerk or snap or crackle or pop.

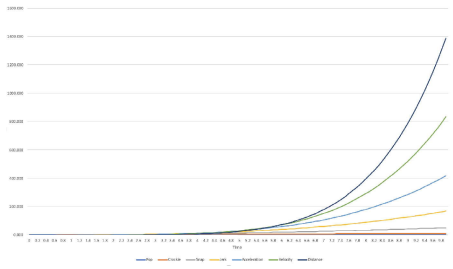

Fig. 5. Schematic graph of ati-sukshm modes in form of speed-acceleration-jerk-snap-crackle-pop.

Conclusion:

There is an inner mathematics and physics behind every thought intuition sadhana tapascharya concentration conscious level and genius. Even if emotions and aesthetics and many years of sadhana tapascharya is the most important part of development of Tabla playing, but there is also a dimension of mathematics and physics which makes the whole process a traditional beautiful experience. A combination of mathematics and physics and tradition and emotion and aesthetics and tapascharya is cause of Tabla evolution.

Future work:

To find the 'sukshm quantum' form of the circular motions and apply to tihaai peshkaar kayada chakardaar. To find the asymmetric and non-circular and non-repetitive motions in both Tabla and Katthak. To go ahead of circular schematic representations by scholars like Arvind Mulagaonkar and try to propose the concentric circular and ring-worm circular schematics of both the Tabla taal and the way our mind and brain thinks as shown below in figure 6.

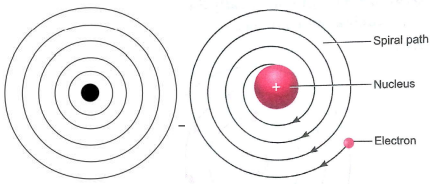

Fig. 6. Concentric circles and spiral circles motion of an electron or the mind in quantum physics.

These schematics and their inner mathematics will build more deep into the mysteries of ati-sukshm modes in Tabla and ati-sukshm modes in our minds and brains way of thinking. We would

also work on the linkage between physics concept of 'iterations' and layakari concept in Tabla [9].

Acknowledgements:

We would like to thank our gurus Pandit Kishan Maharaj, Pandit Pooran Maharaj and senior teachers from Kabir Chaurah Banaras and also all the researchers and artists who have given us great insights in the history and aesthetical philosophy of this art. This project is self funded.

References:

1. 'The Art of Tabla Rhythm', Sudhir Kumar Saxena, Sangeet Natak Academy [1995].
2. 'Aesthetics of Tabla', Sudhir Mainkar, Saraswati Prakashan [2010].
3. 'Aaavartan', Suresh Talwalkar, Rajhans Prakashan [2013].
4. 'Tabla', Arvind Mulgaonkar, Popular Prakashan [1975].
5. 'A detailed comparison between Lucknow and Farrukhabad Tabla playing styles' Saxena Shalini PhD thesis [2014].
6. 'On the Fourfold Root of the Principle of Sufficient Reason', Arthur Schopenhauer [1813].
7. 'Tractatus Logico Philosophicus', Ludwig Wittgenstein [1930].
8. Rules in Einstein's Relativity and Newtonian Mathematics.
9. Rules in Quantum Physics.

Note: Authors are practicing instrumental Percussion 'Tabla', classical dance 'Katthak' and Classical Raga Mandolin players.